दशवैकालिक-सूत्र

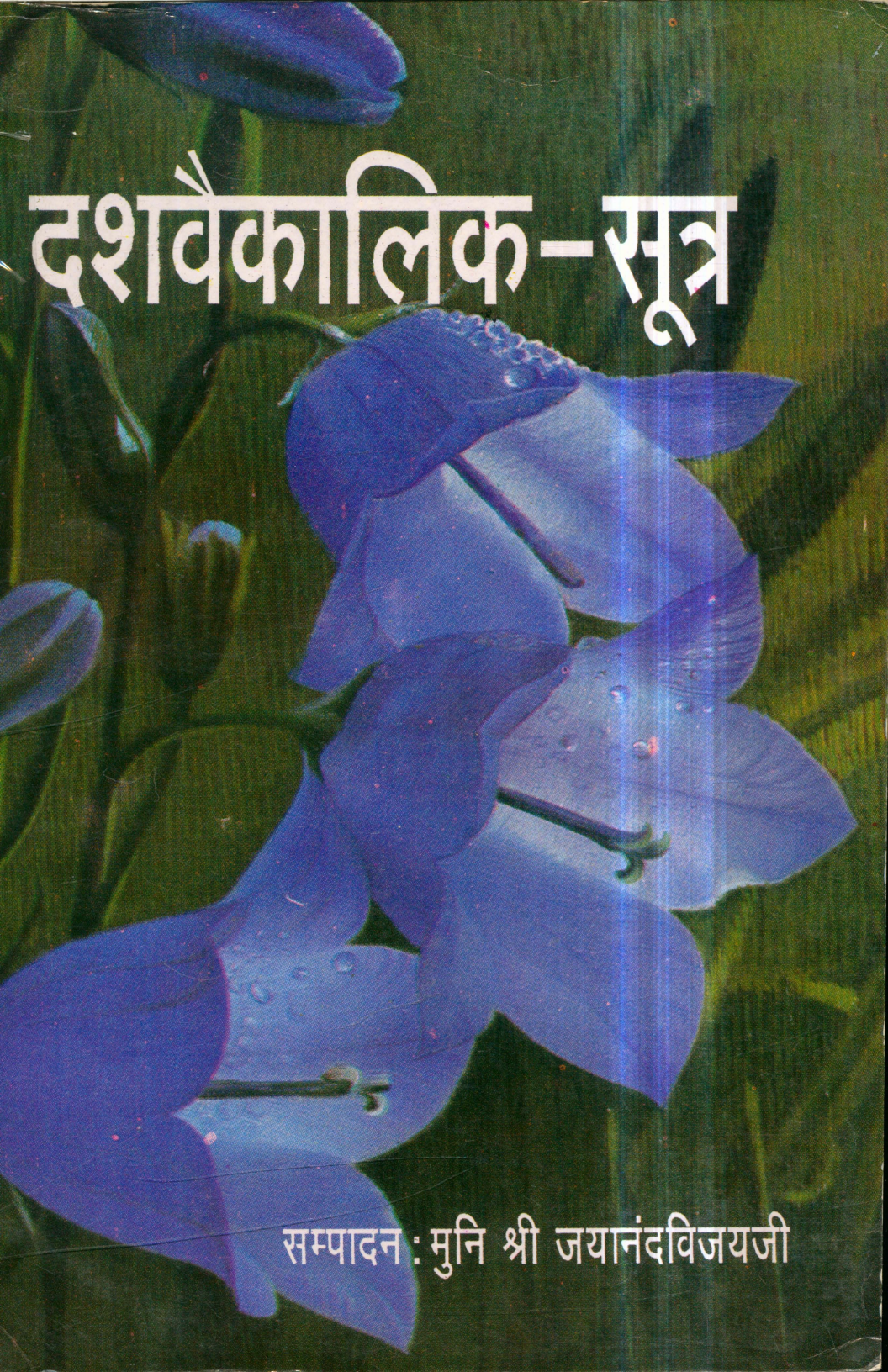

सम्पादन : मुनि श्री जयानंदविजयजी

॥ [illegible] ॥

॥ प्रभु श्रीमद् विजय [illegible] सूरीश्वरजी सद्गुरुभ्यो नमः ॥

पूज्यपाद श्री [illegible]नवसूरीश्वरजी संदब्ध

श्री दशवैकालिक - सूत्र

(हिन्दी शब्दार्थ भावार्थ सहित)

आशिर्वाद दाता

गांभीर्यादिगुणालंकृत वर्तमानाचार्यदेव

श्रीमद् विजय जयंतसेनसूरीश्वरजी म. सा.

सम्पादन - मुनि श्री [illegible]विजयजी म. सा.

पुस्तक का नाम : श्री दशवैकालिक - सूत्र

संदब्ध : पू. पा. श्री शय्यम्भवसूरीश्वरजी

संपादक : मुनि श्री जयानन्दविजयजी म. सा.

द्रव्य सहायक : श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ राजेन्द्र जैन ट्रस्ट - बम्बई

प्रकाशक श्री गुरु रामचंद्र प्रकाशन समिति
भीनमाल - ३४३ ०२९,
जिला - जालोर (राजस्थान)

प्राप्ति स्थान ❀ शा. देवीचंदजी छगनराज
सदर बाजार,
भीनमाल (जालोर) राज.

❀ जे. के. संघवी (सम्पादक)
शाश्वत धर्म कार्यालय,
जामली नाका, थाने - ४०० ६०१ (महा.)

❀ श्री गुरु रामचंद्र प्रकाशन समिति
भीनमाल - ३४३ ०२९
जिला - जालोर (राज.)

प्रस्तावना.

*ग्यारह[1] अंग, बारह[2] उपांग, छः[3] छेद, चार[4] मूल, दश[5] पयन्ना, नन्दी और अनुयोगद्वार ये पैंतालीस आगम जैनों को मान्य है, जो कि खास सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी प्ररूपित और गणधर, श्रुतकेवली, पूर्वधरबहुश्रुत गुम्फित[6] माने जाते हैं। **दशवैकालिकसूत्र** उन्हीं में से साध्वाचार विषयक[7] एक है।*

*इसके रचनेवाले महावीरस्वामी के चौथे पाट पर विराजमान **प्रभवस्वामी** के शिष्य युगप्रधानाचार्य श्रुतकेवली[8] भगवान् **श्री शय्यम्भवस्वामीजी**[9] महाराज हैं। इसीसे दशवैकालिक को सूत्र (आगम) की संज्ञा दी गई है। क्योंकि-*

सुत्तं गणहररइयं, तहेव पत्तेयबुद्धरइयं च।
सुअकेवलिणा रइयं, अभिन्नदसपुव्विणा रइयं॥ १॥

—गणधरों के बनाये हुए, प्रत्येक बुद्ध मुनिवरों के रचे हुए, श्रुतकेवली और संपूर्ण दश पूर्वधारियों के व्दारा लिखे हुए शास्त्र सूत्र (आगम) कहाते हैं।

यह सूत्र श्रीशय्यम्भवस्वामी ने अपने अल्पायुष्क-शिष्य मनक[10] के वास्ते बनाया है।

---

(१)-आचारांग १, सुयगडांग २, ठाणांग ३, समवायांग ४, भगवति ५, ज्ञाताधर्मकथा ६, उपासक दशा ७, अन्तकृ द्दशा ८, अनुत्तरोपपातिक ९, प्रश्नव्याकरण १०, और विपाकश्रुत ११।

(२)-औपपातिक, रायपसेणी, जीवाभिगम, पन्नवणा, जंबूदीपपन्नत्ति, चंदपन्नत्ति, सूरपन्नति, कप्पिया, कप्पवडिंसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदसा, वर्तमान में कप्पिया आदि पांचों का **'निरयावलिया'** नामक सूत्र है।

(३)-दशाश्रुतस्कंध, बृहत्कल्प, व्यवहारश्रुत, निशीथ, जीतकल्प, **पंचछेदकप्प**।

(४)-आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, पिंडनिर्युक्ति।

(५)-चउसरण, आउरपच्चक्खाण, भत्तपयन्ना, संथार पयन्ना, मरणविही, देवेन्द्रस्तव, तन्दुलक्याली, चंदाविज्झ, गणिविज्जा, जोइसकरंड।

(६)-बनाये हुए।

(७)-साधु और साध्वियों के आहार विहार आदि आचार-विचारों को दिखलाने वाला।

(८)-उत्पाद, आग्रायणीय, वीर्यप्रवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यानप्रवाद, विद्याप्रवाद, अबन्ध्यप्रवाद (कल्याणक), प्राणावायप्रवाद, क्रियाविशाल, और लोकबिन्दुसार, इन १४ पूर्वों की विद्या का धारक **'श्रुतकेवली'** कहलाता है।

(९)-१-जन्म राजगृही नगरी, गोत्र वात्स्य, यज्ञस्तंभ के नीचे शांतिनाथस्वामी की प्रतिमा को देखने से प्रतिबोध पाकर दीक्षा ली और २८ वर्ष गृहस्थ पर्याय, ११ वर्ष सामान्य साधु पर्याय तथा २३ वर्ष युगप्रधानपद पर्याय पालन करके श्रीवीर के निर्वाण से ६८ वर्ष बाद बासठ वर्ष का आयुष्य पूरा करके स्वर्गवासी हुए।

(१०)-श्री शय्यंभवस्वामी के दीक्षा ले लेने के बाद उनकी सगर्भा स्त्री से उत्पन्न पुत्र जिसने आठ वर्ष की आयु में दीक्षा ली और छः महिना संयम पालन करके स्वर्ग को प्राप्त किया।

इसको पढ़कर मनक ने अत्यल्प समय में ही स्वर्ग को प्राप्त किया था। इसीसे इस सूत्र की महत्ता का अनुमान भली प्रकार किया जा सकता है। इस सूत्र में दस अध्ययन हैं, उन्हीं का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है—

पहले अध्ययन में-धर्म प्रशंसा और माधुकरी वृत्ति का स्वरूप। दूसरे अध्ययन में-संयम में अधृति न रखने का और रहनेमि के दृष्टान्त से वान्तभोगों को छोड़ने का उपदेश। तीसरे अध्ययन में-अनाचारों को न आचरने का उपदेश,। **चौथे अध्ययन में**-षड्जीवनिकाय की जयणा, रात्रिभोजनविरमण सहित पंचमहाव्रत पालन करने का और जीवदया से उत्तरोत्तर फल मिलने का उपदेश। **पांचवें अध्ययन में**-गोचरी जाने की विधि, भिक्षाग्रहण में कल्पाऽकल्प विभाग और सदोष आहार आदि के लेने का निषेध। **छट्ठे अध्ययन में**-राजा, प्रधान, कोतवाल, ब्राह्मण, क्षत्रिय, सेठ, साहुकार आदि के पूछने पर साध्वाचार की प्ररूपणा, अठारह स्थानों के सेवन से साधुत्व की भ्रष्टता और साध्वाचार पालन का फल। **सातवें अध्ययन में**-सावद्य निर्वद्य भाषा का स्वरूप सावद्य भाषाओं के छोड़ने का उपदेश, निर्वद्य भाषा के आचरण का फल और वाक् शुद्धि रखने की आवश्यकता। **आठवें अध्ययन में**-साधुओं का आचार विचार, षट्कायिक जीवों की रक्षा धर्म का उपाय, कषायों को जीतने का तरीका, गुरु की आशातना न करने का उपदेश, निर्वद्य-भाषण और साध्वाचार पालन का फल। **नौवें अध्ययन में**-अबहुश्रुत (न्यूनगुणवाले) आचार्य की भी आशातना न करने का उपदेश, और विनयसमाधि, श्रुतसमाधि स्थानों का स्वरुप। **दशवें अध्ययन में**-तथारूप साधु का स्वरूप और भिक्षुभाव का फल दिखलाया गया है।

इनके अलावा दशवैकालिक सूत्र में दो चूलिकाएँ भी हैं; जो कि भगवान् श्रीसीमन्धर स्वामी से उपलब्ध हुई है ऐसा टीकाकार और निर्युक्तिकारों का कथन है। **पहली चूलिका में**-आत्मा को संयम में स्थिर रखने के लिये अठारह स्थानों से संसार की विचित्रता का वर्णन और साधु धर्म की उत्तमता का वर्णन किया गया है और **दूसरी चूलिका में**-आसक्ति रहित विहार का स्वरूप, अनियतवास रूप चर्या के गुण तथा साधुओं का उपदेश, विहार, काल, आदि दिखलाया गया है।

इस सूत्र के ऊपर श्रीहरिभद्राचार्यकृत-**शिष्यबोधिनी**, नामक बड़ी टीका व अवचूरी, समयसुन्दरकृत-**शब्दार्थवृत्ति** नामक दीपिका आदि संस्कृत टीकाएँ भी बनी हुई है। संस्कृत टीकाओं के सिवाय अनेक टब्बा और भाषान्तर भी उपलब्ध है परंतु वे सभी प्राचीन अर्वाचीन **गुजराती-भाषा** में हैं; इसलिये वे गुजराती भाषा जाननेवाले साधु साध्वियों के लिये ही उपयोगी हो सकते हैं, दूसरों के लिये नहीं।

इस त्रुटी को पूर्ण करने के लिये अब तक दशवैकालिक सूत्र का ऐसा कोई हिन्दी अनुवाद किसी की तरफ से प्रकाशित नहीं हुआ, जो सर्व-साधारण को समझने में और अध्ययन करने में सुगम, सरस तथा उपयुक्त हो। प्रस्तुत (अध्ययन-चतुष्टय नामक) पुस्तक में श्रीदशवैकालिक सूत्र के आदिम ***'दुमपुप्फिया १, सामणपुव्विया २, खुल्लयायारकहा ३, छज्जवणिया ४,*** *इन चार अध्ययनों का मूल, उनका शब्दार्थ और भावार्थ सुगम हिन्दी-भाषा में दर्ज किया गया है; जो कि संस्कृत-* ***टीका और टब्बा*** *आदि के आधार से इतना सरल बना दिया गया है कि अभ्यास करनेवाले साधु साध्वियों को इनका रहस्य समझ लेने में तनिक भी संदिग्धता नहीं रह सकती।*

यह सूत्र साध्वाचार मूलक है, अतएव साधु साध्वियों को इसका अभ्यास कर लेना आवश्यक है। क्योंकि-समस्त गच्छों की मर्यादा के अनुसार इस ग्रन्थ का अभ्यास किये बिना साधु साध्वी बड़ी दीक्षा के योग्य नहीं समझे जाते। अस्तु,

यदि इस अनुवाद को साधु साध्वियों ने अपनाया तो आगे के अध्ययनों का भी अनुवाद इसी प्रकार तैयार करके यथावकाश प्रकाशित करने का उद्योग किया जायगा। अन्त में भूल चूक का ***मिच्छामिदुक्कडं*** *देकर विराम लिया जाता है। इति शम्।*

वीर संवत् १९५१ **(आचार्य -देव श्री यतीन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.)।**
वसंत-पंचमी **राजगढ़** (मालवा)

❋ ❋ ❋ ❋

"विशेष"

पूज्य पाद आचार्य देव श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. की भावनानुसार दूसरे छह अध्ययन एवं दो चूलिका के शब्दार्थ, भावार्थ तैयार कर मुनिभगवंतों के करकमलों में समर्पित किया है। श्री हेमप्रभसूरिजी द्वारा संपादित एवं मुनि नथमलजी द्वारा संपादित श्री दशवैकालिक सूत्र के शब्दार्थ भावार्थ का सहयोग लिया है अतः उनका हार्दिक आभार मानता हूँ।

जिनाज्ञा विरूद्ध कुछ लिखा गया हो तो मिच्छामि दुक्कडं।

-मुनि जयानंद

हरिगीत-छंद.

अरिहंतना सिद्धांत ने बहुमानथी अवलोकता,
ते कथन ने अनुसार नित्ये प्रेमपूर्वक वर्त्तता;
ए समितिधारी सद्गुरु ने सुखद कारणे पामजो,
गुणियल गणि गुरुराज तेना चरणमां शिर नामजो. ॥ १ ॥

❋ ❋ ❋

करी नयन नीचा मार्गमां मग्न थइने चालता,
करुणारसे थइ रसिक जे निर्दोष जंतु पालता;
इर्या समिति युक्त ते गुरुने स्तवी दुःख वामजो,
गुणियल गणि गुरुराज तेना चरणमां शिर नामजो. ॥ २ ॥

❋ ❋ ❋

भाषा समीति साचवी जे मधुर वचनो बोलता,
निर्दोष लइने आहार जे शुभ एषणा गुण तोलता;
करी भक्ति ते गुरुरत्ननी कदि ते थकी न विरामजो,
गुणियल गणि गुरुराज तेना चरणमां शिर नामजो. ॥ ३ ॥

❋ ❋ ❋

निज सर्व साधन रत्नथी जे ग्रहण करता मूकता,
मल मूत्र भूमि परठवा उपयोग नहि कदि चूकता;
पांचे समीति साधता गुरुपास जइ विश्रामजो,
गुणियल गणि गुरुराज तेना चरणमां शिर नामजो. ॥ ४ ॥

❋ ❋ ❋

पापी विचारो ने हरी मनगुप्तिथी सुविचारता,
कर नयन चेष्टा संहरी जे वचनगुप्ति धारता;
परिषह खमी वपु गुप्तिधारक ते हृदे संक्रामजो,
गुणियल गणि गुरुराज तेना चरणमां शिर नामजो. ॥ ५ ॥

❋ ❋ ❋

विश्वपूज्य-श्रीविजयराजेन्द्रसूरीश्वरेभ्यो नमः।

श्री दशवैकालिक सूत्र शब्दार्थ-भावार्थ

प्रथम द्रुम पुष्पिका अध्ययनम्

'उत्कृष्ट मंगल एवं धर्मस्वरूप'

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥ १॥

शब्दार्थ—**अहिंसा** जीवदया **संजमो** संयम **तवो** तप रूप **धम्मो** सर्वज्ञभाषित धर्म **मंगलं** सर्व मंगल में **उक्किट्ठं** मंगल है **जस्स** जिस पुरुष का **मणो** मन **सया** निरन्तर **धम्मे** धर्म में लगा रहता है **तं** उसको **देवा वि** इन्द्र आदि देवता भी **नमंसंति** नमस्कार करते हैं।

—दया, संयम और तप रूप जिनेश्वर-प्ररूपित धर्म सभी मंगलों में उत्कृष्ट मंगल है। जो पुरुष धर्माराधन में लगे रहते हैं, उनको भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक इन चार निकाय के इन्द्रादि देवता भी वन्दन करते हैं।

प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह इन पांच आश्रवों का त्याग करना, पांचों इन्द्रियों का निग्रह करना, क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों को जीतना और मन, वचन, काया इन तीन दंडों को अशुभ व्यापारों में न लगाना; ये सतरह प्रकार का संयम है और अनशन,[१] ऊनोदरिका,[२] वृत्तिसंक्षेप,[३] रसत्याग,[४] कायक्लेश[५] संलीनता,[६] प्रायश्चित,[७] विनय[८] वैयावृत्य,[९] स्वाध्याय,[१०] ध्यान,[११] कार्योत्सर्ग;[१२] यह बारह प्रकार का तप है।

"आहार कैसे लेना ?"

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं।
न य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं॥ २॥
एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया॥ ३॥

शब्दार्थ—**जहा** जिस प्रकार **भमरो** भँवरा **दुमस्स** वृक्ष के **पुप्फेसु** फूलों के

---

१ आहार को छोड़ना, २ छोटा कवल लेना, ३ धीरे-धीरे आहार आदि को घटाना, ४ विगय को छोड़ना, ५ लोच, आतापना आदि करना, ६ पांचों इन्द्रियों को वश में रखना, ७ पापों की आलोयणा लेना, ८ निष्कपटरूप से अभ्युत्थान आदि बर्ताव रखना, ९ गुरुआदि की सेवा कारक, १० पढे हुए ग्रन्थों का पुनरावर्तन करना या सूत्रों को वांचना, ११ पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत आदि अवस्थाओं का चिन्तन करना, १२ नियमित समय के लिये काया को वोसिराना (शरीर की मूर्छा उतार देना)।

रसं रस को **आवियइ** थोड़ा पीता है **य** परन्तु **पुप्फं** फूल को **किलामेइ** पीड़ा **न** नहीं देता **य औरसो** वह भँवरा **अप्पयं** अपनी आत्मा को **पीणेइ** तृप्त कर लेता है। **एमेए** इसी प्रकार **मुत्ता** बाह्याभ्यन्तर[1] परिग्रह रहित **जे** जो **लोए** ढाई द्वीप-समुद्र प्रमाण मनुष्य क्षेत्र में विचरने वाले **समणा** महान् तपस्वी **साहुणो** साधु **संति** हैं, वे **पुप्फेसु** फूलों में **विहंगमा** भँवरा के **व** समान **दाणभत्तेसणे** गृहस्थों से दिये हुए आहार आदि की गवेषणा में **रया** खुश हैं।

—जिस प्रकार भँवरा वृक्षों के फूलों का थोड़ा-थोड़ा रस पीकर अपनी आत्मा को तृप्त कर लेता है. लेकिन् फूलों को किसी तरह की तकलीफ नहीं देता। इसी प्रकार ढाई[2] द्वीप समुद्र प्रमाण मनुष्य-क्षेत्र में विचरने वाले परिग्रह त्यागी-तपस्वी-साधु, लोग गृहस्थों के घरों से थोड़ा- थोड़ा आहार आदि ग्रहण कर अपनी आत्मा को तृप्त कर लेते हैं, परन्तु किसी को तकलीफ नहीं पहुंचाते। उक्त दृष्टान्त में विशेष यह है कि-भँवरा तो बिना दिये हुए ही सचित्त फूलों के रस को पीकर तृप्त होता है परन्तु साधु तो गृहस्थों के दिये हुए, अचित्त और निर्दोष आहार आदि को लेकर अपनी आत्मा को तृप्त करते हैं अतः भौंरे से भी अधिक साधुओं में इतनी विशेषता है। यहाँ वृक्ष-पुष्प के समान गृहस्थों को और भौंरे के समान साधुओं को समझना चाहिये।

वयं च वित्तिं लब्भामो, न य कोइ उवहम्मइ।
अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा॥४॥

शब्दार्थ—वयंच हम **वित्तिं** ऐसे आहार आदि **लब्भामो** ग्रहण करेंगे, जिनमें **कोई** कोई भी जीव **नय** नहीं **उवहम्मइ** मारा जाय, **जहा** जैसे **पुप्फेसु** फूलों में **भमरा** भँवरों का गमन होता है, वैसे ही **अहागडेसु** गृहस्थों ने खुद के निमित्त बनाये हुए आहार आदि को ग्रहण करने में भी **रीयंते** साधु ईर्या समिति पूर्वक गमन करते हैं।

—**'हम ऐसे आहार वगैरह ग्रहण करेंगे जिनमें स्थावर या त्रस जीवों में से किसी तरह के जीवों की हिंसा न हो'** ऐसी प्रतिज्ञा करके साधुओं को भ्रमर के समान, गृहस्थों ने जो खुद के निमित्त बनाया हुआ है उस आहार आदि में से थोड़ा थोड़ा ग्रहण करना चाहिये। जो आहार आदि साधु के निमित्त बनाये या लाये गये हैं. वे साधुओं के लेने लायक नहीं, किन्तु छोड़ देने लायक हैं।

---

१ धन, धान्य, क्षेत्र, वास्तु, रूप्य, सुवर्ण कूप्य, द्विपद, चतुष्पद; यह नौ प्रकार का बाह्य और मिथ्यात्व, पुंवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ; यह चौदह प्रकार का अभ्यंतर परिग्रह है।

२ जम्बुद्वीप, लवणसमुद्र धातकी खंड कालोदधि समुद्र और पुष्करद्वीप का आधा भाग इस ढ़ाई द्वीप समुद्र प्रमाण क्षेत्र को 'मनुष्य क्षेत्र' कहते है।

"साधु किसे कहें?"

महुगारसमा बुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया।
नाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो॥ ५॥ 'त्ति बेमि'॥

शब्दार्थ—**महुगारसमा** भँवरे के समान **नाणापिंडरया** गृहस्थों के घरों से नाना प्रकार के निर्दोष शुद्ध आहार आदि के ग्रहण करने में रक्त, **बुद्धा** जीव, अजीव आदि नव तत्त्वों के जाननेवाले **अणिस्सिया** कुल वगैरह के प्रतिबन्ध से रहित **दंता** इन्द्रियों को वश में रखनेवाले **जे** जो पुरुष **भवंति** होते हैं **तेण** पूर्वोक्त गुणों से वे **साहुणो** साधु **वुच्चंति** कहे जाते हैं **त्ति** ऐसा मैं **बेमि** अपनी बुद्धि से नहीं, किन्तु तीर्थंकरादि के उपदेश से कहता हूं॥ ५॥

—भ्रमर के समान गृहस्थों के प्रति घर से थोड़ा-थोड़ा निर्दोष प्रासुक आहारादि लेनेवाले, धर्म अधर्म या जीव अजीवादि तत्त्वों को जाननेवाले, अमुक कुल की ही गोचरी लेना ऐसे प्रतिबन्ध **रुकावट** से रहित और जितेन्द्रिय जो पुरुष होते हैं, वे **'साधु'** कहलाते हैं।

श्री शय्यंभवाचार्य अपने दीक्षित पुत्र 'मनक' को कहते हैं कि-हे मनक! ऐसा मैं अपनी बुद्धि से नहीं, किन्तु तीर्थंकर, गणधर आदि महर्षियों के उपदेश से कहता हूं।

इति प्रथमं द्रुमपुष्पिकमध्ययनं समाप्तम्।

"द्वितीय श्रामण्य पूर्विकाध्ययनम्"

संबन्ध—पहिले अध्ययन का प्रतिपाद्य विषय धर्म प्रशंसा है, साधुओं की सभी दिनचर्या धर्म-मूलक है। वह जिनेन्द्र-शासन सिवाय अन्यत्र नहीं पाई जाती। अतएव जिनेन्द्रशासन में नव-दीक्षित साधुओं को संयम पालन करते हुए नाना उपसर्गों के आने पर धैर्य रखना चाहिये, लेकिन घबरा कर संयम में शिथिल नहीं होना चाहिये। इससे सम्बन्धित आये हुए दूसरे अध्ययन में संयम को धैर्य से पालने का उपदेश दिया जाता है—

"साधु धर्म का पालन कौन नहीं कर सकता?"

कहं नु कुज्जा समणं, जो कामे न निवारए।
पए पए विसीयतो, संकप्पस्स वसंगओ॥ १॥

शब्दार्थ—**जो** जो साधु **कामे** काम भोगों का **न** नहीं **निवारए** त्याग करता है, वह **पए पए** स्थान-स्थान पर **विसीयंतो** दुःखी होता हुआ **संकप्पस्स** खोटे मानसिक विचारों के **वसंगओ** वश होता हुआ **सामणं** चारित्र को **कहं** किस प्रकार **कुज्जा** पालन करेगा? **नु**

किसी प्रकार पालन नहीं कर सकता।

—जो साधु विषयभोगों का त्याग नहीं करता, वह जगह-जगह दुःख देखता हुआ, और खोटे परिणामों के वश होता हुआ साधुवेश का किसी तरह पालन नहीं कर सकता।

साधु कब कहा जाता है?

वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य।
अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइ त्ति वुच्चइ॥ २॥

शब्दार्थ—**जे** जो पुरुष **अच्छंदा** अपने आधीन नहीं ऐसे **वत्थगंधं** वस्त्र, गंध **अलंकारं** अलंकार **इत्थीओ** स्त्रियाँ **य** और **सयणाणि** शयन, आसन आदि को **न** नहीं **भुंजंति** सेवन करते **से** वे पुरुष **चाइ त्ति** त्यागी **न** नहीं **वुच्चइ** कहे जाते।

—जो चीनांशुक आदि वस्त्र, चन्दन कल्क आदि गन्ध, मुकुट कुंडल आदि अलंकार, स्त्रियाँ, पल्यंक आदि शयन और आसन न मिलने पर उनका परिभोग नहीं करते वे त्यागी नहीं कहे जाते।

जे य कंते पिए भोए, लद्धे विपिट्ठिकुव्वई।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चइ॥ ३॥

शब्दार्थ—**जेय** जो पुरुष **कंते** मनोहर **पिए** मन गमते **लद्धे** मिले हुए **साहीणे** स्वाधीन **भोए** विषय-भोगों से **विपिट्ठिकुव्वइ** मुख फेर लेता है **य** और **चयइ** छोड़ देता है **से** वह **हु** निश्चय से **चाइ त्ति** त्यागी **वुच्चइ** कहा जाता है।

—विषय-भोगों को जो पुरुष छोड़ देता है, वही असली **त्यागी** कहा जाता है। यहाँ टीकाकार पूज्यपाद **श्रीहरिभद्रसूरिजी** महाराज फरमाते हैं कि———

"अत्थपरिहीणो वि संजमे ठिओ तिणि लोगसाराणि अग्गी उदगं महिलाओ य परिच्चयंतो चाइ त्ति।"

धन वस्त्र आदि सामग्री से रहित चारित्रवान् पुरुष यदि लोक में सारभूत अग्नि, जल और स्त्री इन तीनों को सर्वथा छोड़ दे तो वह त्यागी कहा जाता है। क्योंकि -संसार में अपरिमित धनराशी मिलने पर भी अग्नि, जल और स्त्री का त्याग नहीं हो सकता; अतएव तीनों चीजों को छोड़नेवाला धनहीन पुरुष भी त्यागी ही है।

सुख कैसे मिले?

आयावयाही चय सोगमल्लं, कामे कमाही कंमियं खु दुक्खं।
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं, एव सुही होहिसि संपराए॥ ५॥

शब्दार्थ—**आयावयाही** आतापना ले **सोगमल्लं** सुकुमारपने को **चय** छोड़ **कामे** विषय वासना को **कमाही** उल्लंघन कर **खु** निश्चय से **दुक्खं** दुःख का **कमियं** नाश हुआ

समझ **दोसं** द्वेष विकार को **छिंदाहि** नाश कर **रागं** प्रेमराग को **विणएज्ज** दूर कर **एवं** इस प्रकार से **संपराए** संसार में **सुही** सुखी **होहिसि** होवेगा।

—भगवान् फरमाते हैं कि-साधुओ! यदि तुम्हें संसार के दुःखों से छूट कर सुखी होने की इच्छा है, तो आतापना[1] लो, सुकुमारता[2] को छोड़ो, विषयवासनाओं को चित्त से हटा दो, वैर, विरोध और प्रेमराग को जलांजली दो। यदि ऐसा करोगे तो अवश्य दुःखों का अन्त होवेगा और अनन्त सुख **मोक्ष** मिलेगा।

मन कैसे मारे?

समाइ पेहाइ परिव्वयंतो, सिया मणो निस्सरइ बहिद्धा।
न सा महं नो वि अहंपि तीसे, इच्चेव ताओ विणइज्ज रागं॥४॥

शब्दार्थ—समाइ स्व पर को समान देखनेवाली **पेहाइ** दृष्टि से **परिव्वयंतो** संयम मार्ग में गमन करते हुए साधु का **मणो** मन **सिया** कदाचित् **बहिद्धा** संयमरूप घर से बाहर **निस्सरइ** निकले तो **सा** वह स्त्री **महं न** मेरी नहीं है **अहं पि** मैं भी **तीसे** उस स्त्री का **नो वि** नहीं हूँ **इच्चेव** इस प्रकार **ताओ** उन स्त्रियों के ऊपर से **रागं** प्रेमभाव को **विणइज्ज** दूर कर देवे।

—अपनी और दूसरों की आत्मा को समान देखनेवाली दृष्टि से संयमधर्म का पालन करनेवाले साधु का मन, पूर्व भुक्त-भोगों का स्मरण हो आने पर यदि संयमरूप घर से बाहर निकले तो **'वह स्त्री मेरी नहीं है और मैं उस स्त्री का नहीं हूं'** इत्यादि विचार करके स्त्री आदि मोहक वस्तुओं पर से अपने प्रेम-राग को हटा लेना चाहिये।

"व्रत भंग से मरना अच्छा"

पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं।
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे॥६॥

शब्दार्थ—अगंधणे अगन्धन नामक **कुले** कुल में **जाया** उत्पन्न हुए सर्प **दुरासयं** मुश्किल से भी सहन न हो सके ऐसी **जलियं** जलती हुई **धूमकेउं** धुआँ वाली **जोइं** अग्नि का **पक्खंदे** आश्रय लेते हैं, परन्तु **वंतयं** उगले हुए विष को **भोत्तुं** पीने की **नेच्छंति** इच्छा नहीं करते हैं।

—सर्पों की दो जाति हैं-गन्धन और अगन्धन। गन्धन जाति के सर्प मंत्र, जड़ी, बूटी आदि से खींचे जाने पर खुद दंश मारे हुए स्थान से वान्त-विष को चूस लेते हैं और अगन्धन जाति के सर्प सेंकड़ों मंत्र आदि प्रयोगों से आकृष्ट होने पर भी खुद दंश लगाये हुए स्थान

---

१ अत्यंत गर्म शिला या रेती में शयन करना, २ विविध तपस्याओं से शरीर की कोमलता को हटा देना.

से वान्त-विष को फिर चूस लेना ठीक न समझ कर, अग्नि में प्रवेश करना उत्तम समझते हैं।

इस दृष्टान्त से साधुओं को सोचना चाहिये कि-विवेक-विकल तिर्यंच विशेष सर्प भी जब अभिमान मात्र से अग्नि में जल मरना पसन्द करते हैं, परन्तु वमन किये हुए विष को पीना ठीक नहीं समझते। इसी तरह जिनप्रवचन के रहस्यों को जानने वाले साधुओं से जिनका आखिरी परिणाम ठीक नहीं ऐसे अनन्त बार भोग कर वमन किये हुए भोग किस प्रकार सेवन किये जायँ?

रहनेमि के प्रति राजिमति का उपदेश—

बाईसवें तीर्थंकर भगवान् **नेमनाथस्वामी ने** राज्य आदि समस्त परिभोगों का त्याग करके दीक्षा ले ली। तब रहनेमि ने राजिमति की मधुरसंलापन, योग्यवस्तु प्रदान आदि से परिचर्या करना शुरु की। इस गर्ज से कि यदि मैं राजिमति को हर तरह से प्रसन्न रक्खूंगा तो इससे मेरी भोगाभिलाषा पूर्ण होगी? राजिमति विषय विरक्त थी, उसके हृदय भवन में निरन्तर वैराग्य भावना निवास करती थी।

राजिमति को रहनेमि के दुष्ट अध्यवसाय का पता लग गया. उसने रहनेमि को समझाने की इच्छा से एक दिन शिखरिणी का पान किया। उसी अवसर पर रहनेमि राजिमति के साथ विषयालाप करने के लिये आया. राजिमति ने तत्काल मींडल के प्रयोग से वमन करके रहनेमि को कहा कि-इस वान्त शिखरिणी को तुम पी जाओ, रहनेमि ने कहा-भो सुलोचने! भला यह वान्त वस्तु कैसे पी जाय?

राजिमति ने कहा कि-यदि तुम वान्त वस्तु का पीना ठीक नहीं समझते तो भला भगवान नेमिनाथस्वामी व्दारा वमन किये हुए मेरे शरीर के उपभोग की वांछा क्यों करते हो? इस प्रकार की दुष्ट अभिलाषा करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? अतएव—

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा।
वंतं इच्छासि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे॥७॥

शब्दार्थ—अजसोकामी अपयश की इच्छा रखने वाले हे रहनेमिन्! **ते** तेरे पुरुषपन को **धिरत्थु** धिक्कार हो **जो** जो **तं** तुं **जीवियकारणा** पीने की **इच्छासि** इच्छा करता है, इससे **ते** तेरे को **मरणं** मरना **सेयं** अच्छा **भवे** होगा।

— हे रहनेमिन्! तूं वान्तभोगों को भोगने की वांछा रखता है इससे तेरे को धिक्कार है. अतएव तेरे को मर जाना अच्छा है, लेकिन अपयश से तुझे जीना अच्छा नहीं है। कहा भी है कि—

'वरं हि मृत्युः सुविशुद्धकर्मणा, न चापि शीलस्खलितस्य जीवितम्' उत्तम कर्म करके मर जाना अच्छा है, परन्तु शील रहित पुरुष का जीना ठीक नहीं है। क्योंकि-शीलरहित जीवन से पग-पग पर दुःख और निन्दा का पात्र बनना पड़ता है।

राजिमति के उक्त वचनों से बोध पाकर रहनेमि ने भगवान् श्रीनेमिनाथस्वामी के पास दीक्षा ले ली। रहनेमि के दीक्षित होने के बाद राजिमति ने भी भगवान् के पास दीक्षा ली। एक बार रहनेमि द्वारिका नगरी से गोचरी लेकर भगवान् के पास जा रहा था, लेकिन रास्ते में बारिश का उपद्रव देख कर वह रेवताचल की किसी गुफा में बैठ गया-जो रास्ते के नजदीक ही थी। भाग्यवश राजिमति उसी अवसर में भगवान् नेमिनाथ स्वामी को वन्दन कर वापिस आ रही थी, वह भी बारिश पड़ने के कारण उसी गुफा में आई, जहां की रहनेमि ठहरा हुआ था।

रास्ते मे बारिश से भीग जाने से साध्वी राजिमति ने अपने शरीर के सभी कपड़े गुफा में सुखा दिये। रहनेमि राजिमति के अंग प्रत्यंगों को देखकर कामातुर हुआ और लज्जा को छोड़ राजिमति से भोग करने की प्रार्थना करने लगा। राजिमति ने अपने अंगों को ढक कर शिक्षा देते हुए कहा कि—

हं च भोगरायस्स, तं चऽसि अंधगविण्हिणो।
मा कुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर॥८॥

शब्दार्थ—अहं च मैं **भोगरायस्स** उग्रसेन राजा की पुत्री हूं **च** और **तं** तुं **अंधगविण्हिणो** समुद्रविजय राजा का पुत्र **असि** है **कुले** अपने कुलों में **गंधण** हम दोनों को गन्धन जाति के सर्प समान **मा होमो** नहीं होना चाहिये **निहुओ** चित्त को स्थिर करके **संजमं** चारित्र को **चर** आचरण कर।

—भो रहनेमिन्! मैं राजा उग्रसेन की पुत्री हूं और तुम राजा समुद्रविजयजी के पुत्र हो। अपना विशाल और निष्कलंक कुल है। अतएव अपने को विषय भोग रूप वान्त रस का पान करके गन्धन जाति के सर्पों के समान नहीं होना चाहिये। इसलियें तुम अपने चित्त को स्थिर रखकर निर्दोष चारित्र का पालन करो।

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ।
वायाविद्धु व्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि॥९॥

शब्दार्थ—**जइ** यदि **तं** तुम **जा-जा** जिन-जिन **नारिओ** स्त्रियों को **दिच्छसि** देखोगे, और उनमें **भावं** रागभाव को **काहिसि** पैदा करोगे, तो **वाया बिद्धु** वायु से प्रेरित **हडो व्व** हड़ नामक वनस्पति के समान **अट्ठिअप्पा** तुम्हारी आत्मा चल-विचल **भविस्ससि** होवेगी।

—रहनेमिन्! जो तुम अनेक स्त्रियों को देख कर उनमें आसक्त होगे तो वायु से प्रेरित हड़ नामक वनस्पति की तरह तुम्हारी आत्मा डावाँडोल रहेगी। अर्थात् जिस प्रकार हड़ नामक वनस्पति हवा के लगने से इधर-उधर भ्रमण करती है, उसी प्रकार तुम्हारी आत्मा विषयरूप वायु से प्रेरित हो कर संसार में भ्रमण करेगी।

शब्दार्थ [illegible] को सोच्चा सु [illegible] संयम-धर्म में [illegible] ही [illegible]

— [illegible] के उत्तम वचन सुन कर, [illegible] ही रहनेमि संयम-धर्म में स्थिर हो गया।

[illegible] के उपदेश [illegible] कर [illegible] चारित्र पालन करने लगा, जिस [illegible] अन्त किया, अन्त में [illegible]

एवं करेंति संबुद्धा पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु जहा से पुरिसोत्तमो॥

शब्दार्थ—**एवं** पूर्वोक्त रीति से **संबुद्धा** बुद्धिमान् **पंडिया** वान्तभोगों के त्याग से उत्पन्न होने वाले **पवियक्खणा** पापकर्म से डरने वाले पुरुष **करेंति** आचरण करते हैं, और **भोगेसु** वान्त भोगों से **विणियट्टंति** अलग होते हैं **जहा** जैसे **से** वह **पुरिसोत्तमो** पुरुषोत्तम [illegible] वान्तभोगों से [illegible] **त्ति बेमि** ऐसा मैं मेरी बुद्धि से नहीं कहता हूं, किन्तु [illegible] आदि के कथनानुसार कहता हूं।

—जिस प्रकार पुरुषोत्तम रहनेमि ने अपनी आत्मा को वान्तभोगों से दूर कर संयम-धर्म में स्थापित किया और निर्वाणपद को प्राप्त किया उसी प्रकार जो साधु विषयभोगों की इच्छा गए हुए चित्त को रोक कर संयम-धर्म में स्थिर करेंगे, तो उनको भी रहनेमि के समान फलपद प्राप्त होगा।

शंका—अपने भाई की स्त्री के ऊपर विषयाभिलाषा से सराग दृष्टि रखनेवाले रहनेमि को **पुरुषोत्तम** क्यों कहा?

समाधान टीकाकार करते हैं कि-कर्मों की विचित्रता से रहनेमि को विषयाभिलाषा हुई परन्तु उसने दुष्ट पुरुषों के समान इच्छानुसार विषय भोग सेवन नहीं किया। प्रत्युत विषयाभिलाषा को रोक कर रहनेमि ने अपनी आत्मा को संयम, धर्म में स्थिर की-इसीसे सूत्रकार ने रहनेमि को पुरुषोत्तम कहा है।

आचार्य अपने पुत्र-शिष्य मनक को कहते हैं कि हे मनक! ऐसा मैं अपनी बुद्धि से नहीं कहता, किन्तु तीर्थंकर गणधर आदि के उपदेश से कहता हूँ।

इति श्रामण्यपूर्वकमध्ययनं द्वितीयं समाप्तम्।

सम्बन्ध—दूसरे अध्ययन में प्रतिपाद्य विषय सयंम में धैर्य रखना है, धैर्य सदाचार में ही रखना चाहिये, अनाचारों में नहीं। इस सम्बन्ध से आए हुए तीसरे अध्ययन में बावन अनाचारों का सामान्य स्वरूप और उनको छोड़ने का उपदेश दिखाया जाता है—

संजमे सुट्ठिअप्पाणं, विप्पमुक्काणं ताइणं।
तेसिमेयमणाइण्णं, निग्गंथाणं महेसिणं॥ १॥

शब्दार्थ—**संजमे** सतरह प्रकार के संयम में **सुट्ठिअप्पाणं** अच्छी तरह आत्मा को स्थिर रखनेवाले **विप्पमुक्काणं** बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से रहित **ताइणं** स्व पर रक्षक **निग्गंथाणं** बाह्याभ्यन्तर ग्रन्थी से शून्य **तेसिं** उन **महेसिणं** साधुओं को **एवं** आगे कहे जानेवाले बावन अनाचार **अणाइण्णं** आचरण करने योग्य नहीं है।

—संयम धर्म का निर्दोष पालन करनेवाले, अपनी और दूसरों की आत्मा को तारनेवाले, द्रव्य-भाव रूप गांठ और बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से रहित महर्षियों **साधुओं** को आगे कहे जानेवाले बावन अनाचार छोड़ देने योग्य हैं।

"बावन अनाचार"

उद्देसियं कीयगडं, नियागमभिहडाणि य।
राइभत्ते सिणाणे य, गंधमल्ले य बीयणे॥ २॥

शब्दार्थ—**उद्देसियं** साधुओं के उद्देश्य से बनाये गये आहार आदि लेना १, **कीयगडं** साधुओं के लिए खरीद कर लाये गये आहार आदि लेना २, **नियागं** निमंत्रण मिले हुए घरों से आहार आदि लेना ३, **अभिहडाणि** साधु को देने के लिए गृहस्थों ने स्व पर गाँव से मँगवाए हुए आहार आदि लेना ४, **राइभत्ते** दिवागृहित आदि रात्रिभोजन करना ५, **सिणाणे य** देशस्नान या सर्वस्नान करना ६, **गंधमल्ले** चूआ, चन्दन, इत्र आदि सुगंधित पदार्थ लगाना ७, पुष्पों की माला पहनना ८, **य** और **बीयणे** गर्मी हटाने के वास्ते ताड़, खजूर, पत्र, कागज, वस्त्र आदि के बने हुए पंखे रखना ९.

संनिही गिहिमत्ते य, रायपिंडे किमिच्छए।
संवाहणं दंतपहोयणा य, संपुच्छणं देहपलोयणा य॥ ३॥

शब्दार्थ—**संनिही** घी, गुड़, शक्कर, आदि को संग्रह करके रखना १०, **गिहिमत्ते य** भोजन आदि में गृहस्थों के भोजन काम में लेना ११, **रायपिंडे** राजा के दिये हुए आहार आदि लेना १२, **किमिच्छए** क्या चाहते हो ऐसा कहनेवाले के घर से या दानशाला आदि से आहार आदि लेना १३, **संवाहणं** हाड़, मांस, चाम, रोम आदि को सुख पहुंचाने वाले तेल आदि लगाना १४, **दंतपहोयणा**

य दाँतों को धोकर साफ रखना १५, **संपुच्छणे** गृहस्थों को शाता पूछना, या कुशल सबन्धी पत्र लिखना १६, **य** और **देहपलोयणा** काँच आदि में शरीर, मुख, आदि की शोभा देखना १७.

अट्ठावए य नालीए, छत्तस्स य धारणट्ठाए।
तेगिच्छं पाहणा पाए, समारंभं च जोइणो॥४॥

शब्दार्थ—**अट्ठावए य** क्लिायती चोपड़ खेलना १७, **नालीए** गंजीफा, शतरंज वगैरह जूआ खेलना १९, **छत्तस्सय धारणट्ठाए** रोगादि महान् कारण बिना भी छाता आदि लगाना २०, **तेगिच्छं** ज्वरादि रोग नाशक जीविका करना २१, **पाहणा पाए** पैरों में जूता, बूट, मौजा आदि पहनना २२ च और जोइणो समारंभ अग्नि का आरंभ समारंभ करना २३.

सिज्जायरपिंडं च, आसंदी पलियंकए।
गिहंतर निसिज्जाए, गायस्सुवट्टणाणि य॥५॥

शब्दार्थ—**सिज्जयरपिंडं च** उपाश्रय, धर्मशाला, मकान, आदि में उतरने की आज्ञा देनेवाले गृहस्थ के घर से आहार वगैरह लेना २४, **आसंदीपलियंकए** चटाई, गादी, जाजम, आदि पर बैठना २५, पलंग, खाट, मांची, डोली आदि पर बैठना २६, **गिहंतरनिसिज्जाए** दो घरों के बीच या उपाश्रय के बाहर दूसरों के घर में शयन करना २७, **य** और **गायस्सुवट्टणाणि** शरीर को कोमल या स्वच्छ बनाने के लिये पीठी आदि उबटन करना २८.

गिहिणो वेयावडियं, जा य आजीववत्तिया।
तत्तानिव्वुडभोइत्तं, आउरस्सरणाणि य॥६॥

शब्दार्थ—**गिहिणो** गृहस्थों की **वेयावडियं** काम काज आदि सेवा करना २९, **जा य आजीववत्तिया** और अपने जाति, कुल, शिल्प, कला आदि प्रकाशित करके आजीविका करना अर्थात आहार आदि लेना ३०, **तत्तानिव्वुडभोइत्तं** तीन उकाले बिना का मिश्र जल पीना ३१, **य** और **आउरस्सरणाणि** मनोनुकूल भोजन न मिलने से गृहस्थावस्था में खाए हुए भोजन को याद करना, या रोगादिसे पीड़ित लोगों को आश्रय देना ३२.

मूलए सिंगबेरे य, उच्छुखंडे अनिव्वुडे।
कंदे मूले य सच्चित्ते, फले बीए य आमए॥७॥

शब्दार्थ—**अनिव्वुडे** बिना अचित्त किया हुआ **मूलए** मूला लेना ३३, **सिंगबेरे य** कच्चा = सचित्त अदरख लेना ३४ **उच्छुखंडे** सभी जाति की सेलड़ी या उसके छीले हुए टुकड़े लेना ३५, **सच्चित्ते** सचित्त **कंदे मूले य** सकरकंद, गाजर, आलू, गोभी, आदि जमीकन्द लेना ३६, **आमए** सचित्त **फले** काकड़ी, आम, जामफल आदि फल लेना ३७, **य** और **बीए** तिल, ऊंबी, ज्वार, चना, आदि सचित्त बीज ग्रहण करना ३८.

सोवच्चले सिंधवे लोणे, रोमालोणे य आमए।
सामुद्दे पंसुखारे य, कालालोणे य आमए॥८॥

शब्दार्थ—**आमए** सचित्त **सोवच्चले** संचल नमक लेना ३९, **सिंधवे** सचित्त सेंधा नमक लेना ४०, **लोणे** सचित्त साँभर नमक लेना ४१, **रोमालोणे य** सचित्त रोमक नमक लेना ४२, **सामुद्दे** सचित्त समुद्रीनमक लेना ४३, **पंसुखारे य** सचित्त पांशुक्षार लेना ४४, **आमए** सचित्त **कालालोणे य** कालानमक लेना ४५.

धुवणेत्ति वमणे य, वत्थीकम्म विरेयणे।
अंजणे दंतवणे य, गाया भंगविभूसणे॥९॥

शब्दार्थ—**धुवणेत्ति** वस्त्रों को धूप से तपाना या रोग शान्ति के वास्ते धूम्रपान करना ४६, **वमणे** य मदनफल आदि औषधी से वमन करना ४७, **वत्थीकम्म** स्नेहगुटिका वगैरह की अधोद्वार में पिचकारी लगवाना ४८, **विरेयणे** बारंबार जुलाब लेना ४९, **अंजणे** बिना कारण नेत्रों में काजल, सुरमा आदि लगाना ५०, **दंतवणे य** बिना कारण दन्तमंजन, दाँतन वगैरह करना ५१, **गाया भंगविभूसणे** बिना कारण तैल आदि लगाना या शोभा के निमित्त शरीर पर अलंकार पहनना ५२.

सव्वमेयमणाइण्णं निग्गंथाण महेसिणं।
संजमम्मि य जुत्ताणं, लहुभूयविहारिणं॥१०॥

शब्दार्थ—**निग्गंथाण** द्रव्य-भाव रूप गांठ से रहित, **संजमम्मि** संयम-धर्म में **जुत्ताणं** उद्यमवान् **य** और **लहुभूयविहारिणं** वायु के समान अप्रतिबद्ध विहार करनेवाले **महेसिणं** साधुओं को **एयं** ऊपर कहे हुए **सव्वं** सभी अनाचार **अणाइण्णं** आचरण करने योग्य नहीं हैं।

—संयम को पालन करनेवाले अप्रतिबद्ध विहारी निर्ग्रन्थ महर्षियों को ऊपर बतलाये हुए बावन अनाचार त्याग करने योग्य हैं।

निर्ग्रंथ कौन ?

पंचासवपरिणाया, तिगुत्ता छसु संजया।
पंचनिग्गहणा धीरा, निग्गंथा उज्जुदंसिणो॥११॥

शब्दार्थ—**पंचासवपरिणाया** पांच आश्रवजन्य दोषों को जाननेवाले **तिगुत्ता** तीन गुप्तियों के पालनेवाले **छसु** षड्जीवनिकाय की **संजया** रक्षा करनेवाले **पंचनिग्गहणा** पांचों इन्द्रियों को जीतनेवाले **धीरा** भयों से नहीं डरनेवाले **उज्जुदंसिणो** निष्कपट भाव से सब को समान देखनेवाले **निग्गंथा** निर्ग्रन्थ साधु होते हैं।

—जीव हिंसा, झूठ बोलना,चोरी करना, मैथुन सेवना, परिग्रह रखना इन पांचों आश्रवों से उत्पन्न दोषों के जाननेवाले, मनोगुप्ति[१] वचनगुप्ति[२] कायगुप्ति[३] इन तीनों गुप्तियों को पालनेवाले, स्पर्शन,[४] रसन,[५] घ्राण,[६] चक्षु,[७] श्रोत्र[८] इन पांचों इन्द्रियों को दमनेवाले, सात[९] भयों से नहीं डरनेवाले और निष्कपट भाव से सब जीवों को आत्मवत् देखनेवाले या केवल मोक्षमार्ग में ही रहने वाले जो पुरुष होते हैं, वे निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं।

"ऋतु काल का वर्तन"

आयावयंति गिम्हेसु, हेमंतेसु अवाउडा।
वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया॥ १२॥

शब्दार्थ—गिम्हेसु गर्मी में **आयावयंति** आतापना लेते हैं **हेमंतेसु** सर्दी में **अवाउडा** उघाड़े शरीर से रहते हैं **वासासु** बारिश में **पडिसंलीणा** एक जगह रह कर संवरभाव में रहते हैं, वे साधु **संजया** संयम पालने वाले, और **सुसमाहिया** ज्ञानादि गुणों की रक्षा करने वाले हैं।

—वही साधु अपने संयमधर्म और ज्ञानादिगुणों की सुरक्षा कर सकते हैं, जो गर्मी में आतापना लेते, सर्दी में उघाड़े शरीर रहते, और बारिश में एक जगह मुकाम करके इन्द्रियों को अपने आधीन रखते हों।

"महर्षियों का कर्तव्य"

परीसहरिउदंता, धूअमोहा जिइंदिया।
सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो॥ १३॥

शब्दार्थ—परीसहरिउदंता परिषह रूप शत्रुओं को जीतने वाले **धूअमोहा** मोहकर्म को हटाने वाले **जिइंदिया** इन्द्रियों को जीतने वाले **महेसिणो** साधुलोग **सव्वदुक्खपहीणट्ठा** कर्मजन्य सभी दुःखों का नाश करने के लिए **पक्कमति** उद्यम करते हैं।

—कर्मजन्य दुःखों को निर्मूल (नाश) करने का उद्यम वे ही साधु-महर्षि कर सकते हैं, जो बाईस[१०] परिषह रुप शत्रुओं को, मोह और पांचों इन्द्रियों के तेईस[११] विषयों को जीतने वाले हों।

---

१ कषाय-विकारों में मन को न जाने देना. २ दोष रहित भाषा बोलना. ३ सपाप व्यापार शरीर से न करना. ४ शरीर. ५ जीभ. ६ नाक. ७ नेत्र. ८ कान, ९ इहलोक-मनुष्य को मनुष्य से होनेवाला i, परलोकभय-मनुष्य को तिर्यंच से होनेवाला ii, आदानभय-राजा से होनेवाला iii, अकस्मात् भय-बिजली आदि से होनेवाला iv, आजीविकाभय-दुकाल आदि से होनेवाला v, मरणभय vi, लोकापवाद भय vii

१०-क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, अचेल, दंशमशक, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ,रोग तृणस्पर्श, मल, सत्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, दर्शन; ये २२ परीषह है।

११-स्पर्शनेन्द्रिय के शीत, उष्ण, रूक्ष, चीकना, खरदरा, कोमल, हलका, भारी ये आठ; रसनेन्द्रिय के तीखा, कडुआ, कषायला, खट्टा, मीठा ये पांच; घ्राणेन्द्रिय के सुगंध, दुर्गंध ये दो, चक्षुरिन्द्रिय के श्वेत, नील, पीत, लाल, काला, ये पांच; श्रोत्रेन्द्रिय के सचितशब्द, अचितशब्द, मिश्रशब्द ये तीन; ये सब मिलकर पांचों इन्द्रियों के २३ विषय है।

दुक्कराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहेत्तु य।
केइऽत्थ देवलोएसु, केइ सिज्झंति नीरया॥ १४॥

शब्दार्थ— **दुक्कराइं** अनाचार त्याग रूप अत्यन्त कठिन साध्वाचार को **करित्ताणं** पालन करके **य** और **दुस्सहाइं** मुश्किल से सहन होने वाली आतापना आदि को **सहेत्तु** सहन करके **अत्थ** इस संसार में **केइ** कितने ही साधु **देवलोएसु** देवलोकों में जाते हैं. **केइ** कितने ही साधु **नीरया** कर्मरज से रहित हो **सिज्झंति** सिद्ध होते हैं।

—साध्वाचार का पालन करके और आतापना को सहन करके कितने ही साधु देवलोकों में और कितने ही कर्मरज को हटा कर मोक्ष जाते हैं।

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य।
सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिनिव्वुडे॥ १५॥ 'त्ति बेमि'॥

शब्दार्थ—संजमेण सतरह प्रकार के संयम से **य** और **तवेण य** बारह प्रकार के तप से **पुव्वकम्माइं** बाकी रहे पूर्व-कर्मों को **खवित्ता** क्षय करके **सिद्धिमग्गं** मोक्षमार्ग को **अणुप्पत्ता** प्राप्त होने वाले **ताइणो** स्व-पर को तारनेवाले साधु **परिनिव्वुडे** सिद्धिपद को प्राप्त होते हैं **त्ति** ऐसा **बेमि** मैं अपनी बुद्धि से नहीं, किंतु तीर्थंकर आदि के उपदेश से कहता हूं।

—जो साधु देवताओं[१] के लोकों में पैदा हुए हैं, वे वहाँ से देवसंबन्धी भवस्थिति और देवभोगों का क्षय होने के बाद चव करके आर्य-कुलों[२] में उत्पन्न होते हैं। फिर वे दीक्षा लेकर संयम पालन और विविध तपस्याओं से अवशिष्ट[३] कर्मों[४] को खपा करके मोक्ष चले जाते हैं।

आचार्य श्रीशय्यंभवस्वामी फरमाते हैं कि हे मनक! ऐसा मैं अपनी बुद्धि से नहीं, किन्तु तीर्थंकर गणधर आदि महर्षियों के उपदेश से कहता हूं।

इति क्षुल्लकाचार कथा नामकमध्ययनं तृतीयं समाप्तम्।

१-सुधर्म, ईशान, आदि बारह स्वर्ग, सुदर्शन, सुप्रतिबद्ध आदि नव ग्रैवेयक और विजयादि पांच अनुत्तर, २-उत्तम, ३-बाकी रहे हुए, ४ भवोपग्राही।

चतुर्थ

सम्बन्ध—तीसरे अध्ययन का प्रतिपाद्य विषय साध्वाचार का पालन और अनाचारों का त्याग करना है। सदाचारों का पालन-षड्जीवनिकाय का स्वरूप जानकर, उसकी रक्षा किए बिना नहीं होता। इस संबन्ध से आए हुए चौथे अध्ययन में षड्जीवनिकाय और उसकी जयणा रखने का स्वरूप दिखाया जाता है—

"छ जीव निकाय की प्ररुपणा किसने की "?

सुअं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खायं इह खलु छज्जीवणिया णामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपणत्ता सेयं मे अहिज्झिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती।

शब्दार्थ—**आउसंतेणं** हे आयुष्यमन्! जम्बू! **मे** मैंने **सुअं** सुना **भगवया** भगवान्[1] ने **एवं** इस प्रकार **अक्खायं** कहा, कि **इह** इस दशवैकालिक सूत्र में तथा जैनशासन में **खलु** निश्चय से **छज्जीवणिया णामज्झयणं** षड्जीवनिका नामक अध्ययन को **समणेणं** महातपस्वी **भगवया** भगवान् **कासवेणं** काश्यपगोत्री**महावीरेणं** महावीरस्वामी ने **पवेइया** केवलज्ञान से जान कर कहा **सुअक्खाया** बारह पर्षदा में बैठकर भली प्रकार से कहा **सुपणता** खुद आचरण करके कहा **मे** मेरी आत्मा को **अज्झयणं** यह अध्ययन **अहिज्झिउं** अभ्यास करने के लिये **सेयं** हितकर, और **धम्मपणत्ती** धर्मप्रज्ञप्ति रूप है।

—पंचम गणधर श्रीसुधर्मस्वामी अपने मुख्य शिष्य जम्बूस्वामी को फरमाते हैं कि हे आयुष्मन्! यह षड्जीवनिका नामक अध्ययन काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान् महावीरस्वामी ने समवरसण में बैठ कर बारह पर्षदा के सामने केवलज्ञान से समस्त वस्तुतत्त्व को अच्छी तरह देखकर प्ररूपण किया है। अतएव यह धर्मप्रज्ञप्ति रूप अध्ययन अभ्यास करने के लिये आत्म हित-कारक है।

शिष्य का प्रश्न

कयरा खलु सा छज्जीवणिया णामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपणत्ता सेयं मे अहिज्झिउं अज्झयणं धम्मपन्नती?

शब्दार्थ—**कयरा** कौन-सा **खलु** निश्चय करके **सा** वह **छज्जीवणिया णामज्झयणं** षड्जीवनिका नामक अध्ययन, जो **कोसवेणं** काश्यपगोत्रीय **समणेणं** श्रमण **भगवया** भगवान् **महावीरेणं** महावीरस्वामी ने **पवेइया** कहा **सुअक्खाया** खुद आचरण करके कहा

---

१ संपूर्ण ऐश्वर्य, संपूर्ण रूपराशि, संपूर्ण यशः कीर्त्ति, संपूर्ण शोभा, संपूर्ण ज्ञान, संपूर्ण वैराग्यः इन छः वस्तुओं के धारक पुरूष को 'भगवान्' कहते हैं।

सुपणत्ता बारह पर्षदा में भले प्रकार से कहा **मे** मेरी आत्मा को **अज्झयणं** वह अध्ययन **अहिज्झिउं** अभ्यास करने के लिये **सेयं** हितकारक, और **धम्मपणत्ती** धर्मप्रज्ञप्ति रूप है। —जम्बूस्वामी[१] पूछते हैं कि हे भगवन्! अध्ययन करने के लिये आत्महितकारक और धर्मप्रज्ञप्ति रूप वह कौन-सा षड्जीवनिका अध्ययन है, जो काश्यपगोत्रीय श्रमण[२] भगवान् महावीरस्वामी ने केवलज्ञान से जानकर, स्वयं आचरण करके और देवादि-सभा में बैठ कर प्ररूपण किया है?

"छ जीवनिकाय का स्वरूप"

इमा खलु सा छज्जीवणिया णामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपणत्ता सेयं मे अहिज्झिउं अज्झयणं धम्मपणत्ती। तं जहा—

शब्दार्थ—इमा आगे कहा जानेवाला **सा** वह **छज्जीवणिया णामज्झयणं** षड्जीवनिका नामक अध्ययन जो **खलु** निश्चय करके **कासवेणं** काश्यपगोत्रीय **समणेणं** श्रमण **भगवया** भगवान् **महावीरेणं** श्रीमहावीरस्वामी ने **पवेइया** अलौकिक प्रभाव से कहा **सुअक्खाया** बारह पर्षदा में बैठकर कहा **सुपणत्ता** खुद आचरण करके भले प्रकार से कहा है। **अहिज्झिउं** अभ्यास करने के लिये **धम्मपणत्ती** धर्मप्रज्ञप्ति रूप **अज्झयणं** वह अध्ययन **मे** मेरी आत्मा को **सेयं** हितकारक है **तं जहा** वह इस प्रकार है—

—सुधर्मास्वामी[३] फरमाते हैं कि हे जम्बू! धर्मप्रज्ञप्ति रूप और आत्म-हितकर आगे कहा जानेवाला यह षड्जीवनिका नामक अध्ययन, जो काश्यप-गोत्रीय श्रमण भगवान् श्री महावीरस्वामी ने अलौकिक[४] प्रभाव से देख, बारह[५] पर्षदा में बैठ और स्वयं आचरण करके प्ररूपण किया है। वह इस प्रकार है—

---

१. राजगृही नगरी के शेठ रिखभदत्त की स्त्री धारिणी के पुत्र, अन्तिम केवली, जिन्होंने निन्यानवे करोड़ सोनइया और नवपरिणीत आठ स्त्रियों को छोड़ कर सोलहवर्ष की उम्र में ५२७ के परिवार से सुधर्मस्वामी के पास दीक्षा ली। और जो १६ वर्ष का गृहस्थ, २० वर्ष का छद्मस्थ, ४४ वर्ष का केवल पर्याय पूर्ण कर के वीरनिर्वाण के बाद ६४ वर्ष पश्चात मोक्ष गये।

२ विविध प्रकार की तपस्या करनेवाले महान तपस्वी को 'श्रमण' कहते हैं।

३. कोल्लाग गाँव के धम्मिल ब्राह्मण की स्त्री भद्दिला के पुत्र, भगवान् के ग्यारह गणधरों में से पांचवे गणधर, जिन्होंने ५०० विद्यार्थीयों के परिवार से अपापानगरीमें वीरप्रभु के पास दीक्षा ली, और जो ५० वर्ष गृहस्थ, ४२ वर्ष चारित्र (छद्मस्थ) तथा ८ वर्ष केवली पर्याय पाल के वीरनिर्वाण से वीसवे वर्ष मोक्ष गये।

४. हाथ की हथेली पर रक्खी हुई वस्तु के समान लोकाऽलोक गज पदार्थों के सूक्ष्म बादर भावों को केवलज्ञान से देखनेवाले।

५. अग्नीकूण में गणधर आदि i, विमानवासी देवियां ii, साध्वियाँ iii, नैऋतकूण में भवनपतिदेवियाँ iv, ज्योतिष्कदेवियाँ v, व्यन्तरदेवियाँ vi, वायुकूण में भवनपतिदेव vii, ज्योतिष्कदेव viii, व्यन्तरदेव ix, ईशानकूण में वैमानिकदेव x, मनुष्य xi, मनुष्यस्त्रियाँ xii, इन बारह प्रकार की पर्षदा में जिनेश्वर उपदेश देते हैं।

पुढवीकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया।

शब्दार्थ—पुढवीकाइया पृथ्वी के जीव **आउकाइया** जल के जीव **तेउकाइया** अग्नि के जीव **वाउकाइया** हवा के जीव **वणस्सइकाइया** फल, फूल, पत्र, बीज, लता, कन्द, आदि वनस्पति के जीव **तसकाइया** द्विन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेंन्द्रिय जीव।

पुढवी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। आउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। तेउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। वाउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएणं।

शब्दार्थ—सत्थपरिणएणं शस्त्र-परिणत पृथ्वी को छोड़ कर **अन्नत्थ** दूसरी **पुढवी** पृथ्वी **चित्तमंतं** जीव सहित **पुढोसत्ता** अंगुलाऽसंख्येय भाग प्रमाण अवगाहना में अलग-अलग **अणेगजीवा** अनेक जीववाली **अक्खाया** तीर्थकरों के द्वारा कही गई है. **सत्थपरिणएणं** शस्त्र-परिणत जल को छोड़कर **अन्नत्थ** दूसरा **आउ** जल **चित्तमंतं** जीव सहित **पुढोसत्ता** अंगुलाऽसंख्येय भाग प्रमाण अवगाहना में अलग- अलग **अणेगजीवा** अनेक जीववाला **अक्खाया** कहा गया है. **सत्थपरिणएणं** शस्त्र-परिणत अग्नि को छोड़कर **अन्नत्थ** दूसरा **तेउ** अग्नि**चित्तमंतं** जीव सहित **पुढोसत्ता** अंगुलाऽसंख्येय भाग प्रमाण अवगाहना में अलग-अलग **अणेगजीवा** अनेक जीववाली **अक्खाया** कही गई है. **सत्थपरिणएणं** शस्त्र-परिणत वायु को छोड़कर **अन्नत्थ** दूसरा **वाउ** वायु **चित्तमंतं** जीव सहित **पुढोसत्ता** आंगुलाऽसंख्येय भाग प्रमाण अवगाहना में अलग-अलग **अणेगजीवा** अनेक जीववाला **अक्खाया** कहा गया है।

वणस्सइ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। तं जहा-अग्गबीया मूलबीया पोरबीया खंधबीया बीयरूहा संमुच्छिमा तणलया वणस्सइकाइया सबीया चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं।

शब्दार्थ—सत्थपरिणएणं शस्त्र-परिणत वनस्पति को छोड़ कर **अन्नत्थ** दूसरी **वणस्सइ** वनस्पति **चित्तमंतं** जीव सहित **पुढोसत्ता** अंगुलाऽसंख्येय भाग प्रमाण अवगाहना में अलग-अलग **अणेगजीवा** अनेक जीववाली **अक्खाया** कही गई है. **तं जहा** वह इस प्रकार है— **अग्गबीया** अग्रभाग में बीज वाली कोरंट आदि, **मूलबीया** मूल में बीजवाली जमीकन्द. कमल आदि **पोरबीया** गाँठ में बीजवाली साँटे आदि **खंधबीया** वृक्ष शाखा प्रशाखा में बीजवाली बड़ (बरगद) आदि **बीयरुहा** बीज के बोने से ऊगने वाली शाल, गेहूं आदि **संमुच्छिमा** सूक्ष्म बीज वाली **तणलया** तृण, लता आदि **वणस्सइकाइया**

वनस्पतिकायिक **सबीया** बीजों सहित **चित्तमंतं** सजीव **पुढोसत्ता** अंगुलाऽसंख्येय भाग प्रमाण अवगाहना में अलग-अलग **अणेगजीवा** अनेक जीवोंवाले **अक्खाया** कहे गये हैं **सत्थपरिणएणं** शस्त्र परिणत वनस्पति के बिना **अन्नत्थ** दुसरी सभी वनस्पति सचित्त है।

—सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिनेश्वर भगवान् महावीरस्वामी ने पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु, इन चारों स्थावरों में अंगुल की असंख्यातवें भाग की अवगाहना में अलग-अलग असंख्याता जीव और वनस्पतिकाय में असंख्याता तथा अनन्ता जीव प्ररुपण किये हैं। जो शस्त्रों से परिणत हो चुके हैं उनमें एक भी जीव नहीं है, अर्थात् वे अचित्त (जीव रहित) हैं, ऐसा कहा है।

से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा। तं जहाअंडया पोयया जराउया रसया संसेइमा संमुच्छिमा उब्भिया उववाइया। जेसिं केसिं चि पाणाणं अभिक्कंतं पडिक्कतं संकुचियं पसारियं रुयं भंतंतसियं पलाइयं आगइ गइ विणाया।

शब्दार्थ—से अब **पुण** फिर **जे** जो **इमे** प्रत्यक्ष **अणेगे** द्विन्द्रिय आदि भेदों में अनेक **बहवे** एक-एक जाति में नाना भेदवाले **तसापाणा** त्रस जीव हैं **तं जहा** वे इस प्रकार हैं—**अंडया** अंड से पैदा हुए पक्षी आदि **पोयया** पोत से पैदा हुए हाथी आदि **जराउया** गर्भ वेष्टन से पैदा हुए मनुष्य, गौ आदि **रसया** चलितरस में पैदा हुए जीव, **संसेइमा** जूं, लीख आदि **संमुच्छिमा** पुरुष-स्त्री के संयोग बिना पैदा हुए पतंग आदि **उब्भिया** भूमि को फोड़ कर पैदा होनेवाले तीड़ आदि **उववाइया** देव, नारकी आदि **जेंसि** जिनमें **केसिं चि** कितने ही **पाणाणं त्रसजीवों का अभिक्कंतं** सामने आना **पडिक्कंतं** पीछे लोटना **संकुचियं** शरीर को संकुचित करना **पसारियं** शरीर को फैलाना **रुयं** बोलना **भंत** भय से इधर-उधर भागना **तसियं** दुःखी होना **पलाइयं** भागना **आगइ** आना **गइ** जाना इत्यादि क्रियाओं को **विणाया** जानने का स्वभाव है।

—अंडज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, समूर्छिम उद्भिज्ज और औपपातिक ये सभी त्रस जीव हैं और ये सामने आना, पीछा फिरना, शरीर को संकोच करना, शरीर का फैलाना, शब्द करना, भय से त्रसित हो इधर-उधर घूमना। दुःखी होना, भागना, आना, जाना आदि क्रियाओं को जाननेवाले हैं।

जे य कीडपयंगा जा य कुंथुपिपीलिया सव्वे बेइंदिया सव्वे तेइंदिया सव्वे चउरिंदिया सव्वे पंचिंदिया सव्वे तिरिक्खजोणिया सव्वे नेरइया सव्वे मणुआ सव्वे देवा सव्वे पाणा परमाहम्मिया। एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाउ त्ति पवुच्चइ।

शब्दार्थ—जे य और जो **कीडपयंगा** कीट, पतंग आदि **जाय** और जो **कुंथुपिपीलया** कुन्थु, कीड़ी आदि **सव्वे बेइंदिया** सभी द्विन्द्रिय जीव **सव्वे तेइंदिया** सभी त्रिन्दिय जीव **सव्वे चउरिंदिया** सभी चतुरिन्द्रिय जीव **सव्वे पंचिंदिया** सभी पंचेन्द्रिय जीव

सव्वे तिरिक्खजोणिया सभी तिर्यंचयोनिक जीव **सव्वे नेरइया** सभी नारक जीव **सव्वे मणुआ** सभी मनुष्य **सव्वे देवा** सभी देवता **सव्वे पाणा** ये सभी प्राणी **परमाहम्मिया** परम सुख की इच्छा रखनेवाले हैं. **एसो** यह **खलु** निश्चय से **छट्ठो** छठवां **जीवनिकाओ** जीवों का समुदाय **तसकाउ त्ति** त्रसकाय इस नाम से **पवुच्चइ** कहा जाता है।

—द्विन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय इन सभी जीवों का समुदाय **'त्रसकाय'**[1] कहलाता है और ये सभी जीव सुखपूर्वक जीने की इच्छा रखते हैं, ऐसा जिनेश्वर भगवन्तों ने फरमाया है।

''छ जीव निकाय की रक्षा हेतु प्रतिज्ञा''

इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभिज्जा नेवऽन्नेहिं दंडं समारंभाविज्जा दंडं समारंभंतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

शब्दार्थ—इच्चेसिं ऊपर कहे हुए **छण्हं** छठवें **जीवनिकायाणं** त्रसकाय का **दंडं** संघट्टन, आतापन आदि हिंसा रूप दंड का **सयं** खुद **नेव समारंभिज्जा** आरंभ नहीं करे **अन्नेहिं** दूसरों के पास **दंडं** संघट्टन आदि **नेव समारंभाविज्जा** आरंभ नहीं करावे **दंडं** संघट्टन आदि **समारंभंते** आरंभ करते हुए **अन्ने वि** दूसरों को भी **न समणुजाणेज्जा** अच्छा नहीं समझे. ऐसा जिनेश्वरों ने कहा, इसलिये मैं **जावज्जीवाए** जीवन पर्यन्त **तिविहं** कृत, कारित, अनुमोदित रूप आरंभ को **मणेणं** मन **तिविहं** कृत, कारित, अनुमोदित रूप आरंभ को **मणेणं** मन **वायाए** वचन **काएणं** काया रूप **तिविहेणं** तीन योग से **न करेमि** नहीं करूं **न कारवेमि** नहीं कराऊं **करंतं** करते हुए **अन्नं पि** दूसरों को भी **नसमणुजाणामि** अच्छा नहीं समझूं. **भंते** हे भगवन्। **तस्स** भूतकाल में किये गये आरंभ का **पडिक्कमामि** प्रतिक्रमण रूप आलोयण करूं **निंदामि** आत्म-साक्षी से निंदा करूं **गरिहामि** गुरु-साक्षी से गर्हा[2] करूं **अप्पाणं** पापकारी आत्मा का **वोसिरामि** त्याग करूं।

—जिनेश्वर फरमाते हैं कि साधु स्वयं त्रसकाय जीवों का संघट्टन आतापन आदि आरंभ नहीं करे, दूसरें से नहीं करावे और करनेवालों को अच्छा भी नहीं समझे। जीवन पर्यन्त साधु यह प्रतिज्ञा करे कि—

त्रसकाय का आरंभ मैं नहीं करूंगा, दूसरों से नहीं कराऊंगा और करनेवालों का अनुमोदन भी नहीं करूंगा। और जो आरंभ हो चूका है उसकी आलोचना, निन्दा व गर्हा कर आरंभकारी आत्मा का त्याग करता हूं।

१-त्रस और स्थावर जीवों के विशेष भेद अस्मल्लिखित **'जीवभेद-निरूपण'** नामक किताब से देख लेना चाहिये।

२) गर्हा - निंदा, घृणा जुगुप्सा ओघनिर्युक्तिटीकायाम्

प्रथम महाव्रत की प्रतिज्ञा

पढमे भंते! महव्वए पाणइवायाओ वेरमणं सव्वं भंते पाणाइवायं पच्चक्खामि। से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा नेव सयं पाणे आइवाएज्जा नेवऽन्नेहिं पाणे अइवायाविज्जा पाणे अइवायंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतं पि अन्न न समणुजाणामि तस्स भंते! पड़िक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पढमे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणइवायाओ वेरमणं!

शब्दार्थ—भंते! गुरुवर्य! **पढमे** पहले **महव्वए** महाव्रत में **पाणाइवायाओ** एकेन्द्रिय आदि जीवों की हिंसा से **वेरमणं** दूर होना, भगवान् ने फरमाया है, अतएव **भंते** हे गुरुवर! **सव्वं** समस्त **पाणाइवायं** जीवों की हिंसा करने का **पच्चक्खामि** प्रत्याख्यान लेता हूं. **से** उन **सुहुमां वा**[१] सूक्ष्म **बायरं वा** वादर **तसं वा** त्रस **थावरं वा** स्थावर **पाणे** जीवों का **सयं** खुद **अइवाएज्जा** विनाश करे **नेव** नहीं **अन्नेहिं** दूसरों के पास **पाणे** त्रस स्थावर जीवों का **अइवायाविज्जा** विनाश करावे **नेव** नहीं **अइवायंते** त्रस स्थावर जीवों का विनाश करते हुए **अन्ने वि** दूसरों को भी **न समणुजाणेज्जा** अच्छा समझे नहीं. ऐसा जिनेश्वरों ने कहा, इसलिये हे गुरुवर्य! **जावज्जीवाए** जीवन पर्यन्त मैं **तिविहं** कृत, कारित, अनुमोदित रूप त्रिविध हिंसा को **मणेणं** मन **वायाए** वचन **काएणं** काया रूप **तिविहेणं** त्रिविध योग से **न करेमि** नहीं करूं **न कारवेमि** नहीं कराऊं **करंतं** करते हुए **अन्न पि** दूसरे को भी **न समणुजाणामि** अच्छा नहीं समझूं **भंते** हे प्रभो! **तस्स** उस भूतकाल में की गई हिंसा की **पडिक्कमामि** प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करुं **निंदामि** आत्म-साक्षी से निंदा करूं **गरिहामि** गुरु-साक्षी से गर्हा करूं **अप्पाणं** हिंसाकारी आत्मा का **वोसिरामि** त्याग करूं **भंते** हे मुनिश! **पढमे** पहले **महव्वए** महाव्रत में **सव्वाओ** समस्त **पाणाइवायाओ** त्रस स्थावर प्राणियों की हिंसा से **वेरमणं** अलग होने को **उवट्ठिओमि** उपस्थित हुआ हूं।

दूसरे महाव्रत की प्रतिज्ञा

अहावरे दोच्चे भंते! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं सव्वं भंते! मुसावायं पच्चक्खामि। से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सयं मुसं वइज्जा नेवऽन्नेहिं मुसं वायाविज्जा मुसं वायंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। दोच्चे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं।

---

१) यहाँ पर 'वा' शब्द तज्जातीय ग्रहण करने के वास्ते है। जैसे त्रयकाय में सूक्ष्म-छोटे शरीरवाले कुन्थु आदि, बादर-मोटे शरीरवाले गो महिष हाथी आदि, और स्थावर जीवों में सूक्ष्म वनस्पति आदि, बादर पृथ्वी आदि, इसी प्रकार सुक्ष्म वनस्पति में भी सूक्ष्म, बादर और पृथ्वीआदि में भी सूक्ष्म, बादर की योजना स्वयं कर लेना चाहिये!

शब्दार्थ—**अह** इसके बाद **भंते**! हे मुनिन्द्र! **अवरे** आगे के **दोच्चे** दूसरे **महव्वए** महाव्रत में **मुसा वायाओ** असत्य भाषा से **विरमणं** दूर रहना भगवान ने फरमाया है, अतएव **भंते** हे प्रभो! **सव्वं** समस्त **मुसावायं** असत्य भाषण का **पच्चक्खामि** प्रत्याख्यान करता हूं **से** वह **कोहा वा**[1] क्रोध से **लोहा वा** लोभ से **भया वा** भय से **हासा वा** हास्य से **सयं** खुद **मुसं** असत्य **वइज्जा** बोले **नेव** नहीं **अन्नहिं** दूसरों के पास **मुसं** असत्य **वायाविज्जा** बोलावे **नेव** नहीं **मुसं** असत्य **वयंते** बोलते हुए **अन्ने वि** दूसरों को भी **न समणुजाणेज्जा** अच्छा समझे नहीं, ऐसा जिनेश्वरों ने कहा। इसलिये **जावज्जीवाए** जीवन पर्यन्त, मैं **तिविहं** कृत, कारित, अनुमोदित रूप त्रिविध असत्य-भाषण को **मणेणं** मन **वायाए** वचन **काएणं** काया रूप **तिविहेणं** तीन योग से **न करेमि** नहीं करूं **न कारवेमि** नहीं कराऊं **करंतं** करते हुए **अन्नं पि** दूसरे को भी **न समणुजाणामि** अच्छा समझूं नहीं **गुरु**! हे गुरु! **तस्स** भूतकाल में बोले गये असत्य की **पडिक्कमामि** प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करूं **निंदामि** आत्म-साक्षी से निन्दा करूं **गरिहामि** गुरु-साक्षी से गर्हा करूं **अप्पाणं** असत्य बोलने वाली आत्मा का **वोसिरामि** त्याग करूं **भंते** हे कृपानिधे! **दोच्चे** दूसरे **महव्वए** महाव्रत में **सव्वाओ** समस्त **मुसावायाओ** असत्य-भाषण से **वेरमणं** दूर रहने को **उवट्ठिओमि** उपस्थित हुआ हूं।

तिसरे महाव्रत की प्रतिज्ञा

अहावरे तच्चे भंते! महव्वए अदिणादाणाओ वेरमणं सव्वं भंते! अदिणादाणं पच्चक्खामि। से गामे वा नगरे वा रणे वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेवं सयं अदिणं गिणिहज्जा नेवऽन्नेहिं अदिणं गिण्हावेज्जा अदिणं गिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते। पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। तच्चे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिणादाणाओ वेरमणं।

शब्दार्थ—**अह** इसके बाद **भंते** हे ज्ञाननिधे! **अवरे** आगे के **तच्चे** तिसरे **मुहव्वए** महाव्रत में **अदिणादाणाओ** चोरी से **वेरमणं** दूर होना जिनेश्वरों ने कहा है, अतएव **सव्वं** सभी प्रकार की **अदिणा दाणं** चोरी का **भंते** हे गुरू! **पच्चक्खामि** मैं प्रत्याख्यान करता हूं

---

१ यहाँ पर 'वा' शब्द एक-एक के तज्जातीय भेदों को ग्रहण करने के वास्ते है। जैसे- **सद्भावप्रतिषेध**-आत्मा, पुन्य, पाप, स्वर्ग, मोक्ष नहीं है ऐसा बोलना I **असद्भावोद्भावन**-आत्मा श्यामाकतंदुल प्रमाण या सर्वगत है ऐसी आगम विरुद्ध कल्पना करना II **अर्थान्तर**-हाथी को अश्व और अश्व को हाथी कहना III **गर्हा**-काणे का काणा, अन्धे को अन्धा कहना IV **वे असत्य के चार भेद हैं। क्रोधादि चारों में इनकी योजना स्वयं कर लेना चाहिये।**

से वह **गामे वा**[1] गाँव में **नगरे वा** नगर में **रणे वा** जंगल में **अप्पं वा** अल्पमूल्यतृण आदि, **बहुं वा** बहुमूल्य स्वर्ण आदि **अणुं वा** हीरा, मणि, पुखराज, आदि **थूलं वा** काष्ठ आदि **चित्तमंतं वा** सजीव बालक, बालिका आदि **अचित्तमंतं वा** अजीव वस्त्र, आभूषण, आदि **अदिणं**[2] बिना दिये हुए **संयं** खुद **गिणिहज्जा** ग्रहण करे **नेव** नहीं, **अन्नेहिं** दूसरों के पास **अदिणं** बिना दिये हुए **गिण्हंते** ग्रहण करते हुए **अन्ने वि** दूसरों को भी **न समणुजाणेज्जा** अच्छा समझे नहीं, ऐसा जिनेश्वरों ने कहा. इसलिये **जावज्जीवाए** जीवन पर्यंत **तिविहं** कृत, कारित, अनुमोदन रूप त्रिविध अदत्तादान को **मणेणं** मन **वायाए** वचन **काएणं** काया रूप **तिविहेणं** तीन योग से **न करेमि** नहीं करूं **न कारवेमि** नहीं कराऊं **करंतं** करते हुए **अन्नं पि** दूसरों को भी **न समणुजाणामि** अच्छा नहीं समझूं **भंते** हे गुरू! **तस्स** भूतकाल में किये गये अदत्तादान की **पडिक्कमामि** प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करूं **निंदामि** आत्म-साक्षी से निंदा करूं **गरिहामि** गुरु-साक्षी से गर्हा करूं **अप्पाणं** अदत्त लेनेवाली आत्मा का **वोसिरामि** त्याग करूं **भंते** हे प्रभो! **तच्चे** तीसरे **महव्वए** महाव्रत में **सव्वाओ** समस्त **अदिणादाणाओ** अदत्तादान से **वेरमणं** अलग होने को **उवट्ठिओमि** उपस्थित हुआ हूं।

चतुर्थ महाव्रत की प्रतिज्ञा

अहावरे चउत्थे भंते! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं सव्वं भंते! मेहुणं पच्चक्खामि। से दिव्वं वा माणुसं वा तिरिक्खजोणियं वा नेव सयं मेहुणं सेविज्जा नेवऽन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा मेहुणं सेवंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। चउत्थे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं।

शब्दार्थ—**अह** इसके बाद **भंते** हे प्रभो! **अवरे** आगे के **चउत्थे** चौथे **महव्वए** महाव्रत में **मेहुणाओ** मैथुन सेवन से **वेरमणं** अलग होना जिनेश्वरों ने कहा है, अतएव **भंते** हे कृपानिधे! गुरु! **सव्वं** सभी प्रकार के **मेहुणं** मैथुन सेवन का **पचक्खामि** मैं प्रत्याख्यान करता हूं, **से** वह **दिव्वं वा**[3] देव संबन्धी **माणुसं वा** मनुष्य संबन्धी **तिरिक्खजोणियंवा** तिर्यंच योनि संबंधी **मेहुणं** मैथुन **सयं** खुद **सेविज्जा** सेवन करे **नेव** नहीं, **अन्नेहिं** दूसरों के पास **मेहुणं** मैथुन **सेवाविज्जा** सेवन करावे **नेव** नहीं, **मेहुणं** मैथुन **सेवते** सेवन करते हुए **अन्ने वि** दूसरों को भी **न समणुजाणेज्जा** अच्छा समझे नहीं, ऐसा जिनेश्वरों ने कहा,

---

१) 'वा' शब्द से गाँव, नगर और अल्पमूल्य, बहुमूल्य आदि वस्तुओं में तज्जातीय भेदों को ग्रहण करना चाहिये।

२) यहाँ अदिण्णं से साधुयोग्य वस्तुओं को बिना दी हुई न लेना यह मतलब है। स्वर्ण, रत्न आदि तो साधुओं के अग्राह्य ही है, जो आगे दिखाया जायगा।

३) 'वा' शब्द से देव, मनुष्य और तिर्यंचों के अवान्तर भेदों को भी स्वयं ग्रहण कर लेना चाहिये।

इसलिये जावज्जीवाए जीवन पर्यन्त **तिविहं** कृत, कारित, अनुमोदित रूप मैथुन सेवन को **मणेणं** मन **वायाए** वचन **काएणं** काया रुप **तिविहेणं** तीन योग से **न करेमि** नहीं करूं **न कारवेमि** नहीं कराऊं **करंतं** करते हुए **अन्नं पि** दूसरों को भी **न समणुजाणामि** अच्छा नहीं समझूं **भंते** हे ज्ञानसिन्धो! **तस्स** भूतकाल में किये गये मैथुन सेवन की **पडिक्कमामि** प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करूं **निंदामि** आत्म-साक्षी से निंदा करूं **गरिहामि** गुरु साक्षी से गर्हा करूं, **अप्पणं** मैथुनसेवी आत्मा का **वोसिरामि** त्याग करूं. **भंते**! हे प्रभो! **चउत्थे** चौथे **महव्वए** महाव्रत में **सव्वाओ** समस्त **मेहुणाओ** मैथुन सेवन से **वेरमणं** अलग होने को **उवट्ठिओमि** उपस्थित हुआ हूं।

पंचम महाव्रत की प्रतिज्ञा

अहावरे पंचमे भंते! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं सव्वं भंते! परिग्गहं पच्चक्खामि। से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव सयं परिग्गहं परिगिणिहज्जा नेवऽन्नेहिं परिग्गहं परिगिणहावेज्जा परिग्गहं परिगिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि पंचमे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं।

शब्दार्थ—**अह** इसके बाद **भंते** हे गुरू! **अवरे** आगे के **पंचमें** पांचवे **महव्वए** महाव्रत में **परिग्गहाओ** नवविध परिग्रह से **वेरमणं** अलग होना जिनेश्वरों ने फरमाया है, अतएव **भंते**! हे कृपासागर! **सव्वं** समस्त **परिग्गहं** परिग्रह का **पच्चक्खामि** मैं प्रत्याख्यान करता हूं **से** वह **अप्पं वा**[1] अल्पमूल्य एंड-काष्ठ आदि **बहुं वा** बहुमूल्य रत्न आदि **अणुं वा** आकार से छोटे हीरा आदि **थूलं वा** आकार से बड़े हाथी आदि **चित्तमंतं वा** सजीव बालक बालिका आदि **अचित्तमंतंवा** निर्जीव वस्त्र आभरण आदि **परिग्गहं** परिग्रह **सयं** खुद **परिगिण्हिज्जा** ग्रहण करे **नेव** नहीं **अन्नेहिं** दुसरों के पास **परिग्गहं** परिग्रह **परिगिण्हाविज्जा** ग्रहण करावें **नेव** नहीं **परिग्गहं** परिग्रह **परिगिण्हंते** ग्रहण करते हुए **अन्ने वि** दूसरों को भी **न समणुजाणेज्जा** अच्छा समझे नहीं, ऐसा जिनेश्वरों ने कहा। इसलिये **जावज्जीवाए** जीवन पर्यंत **तिविहं** कृत कारित अनुमोदित रूप त्रिविध परिग्रह का ग्रहण **मणेणं** मन **वायाए** वचन **काएणं** काया रुप **तिविहेणं** तीन योग से **न करेमि** नहीं करूं **न कारवेमि** कराऊं नहीं **करंतं** करते हुए **अन्नं पि** दूसरे को भी **न समणुजाणामि** अच्छा समझूं नहीं **भंते**! हे प्रभो! **तस्स** भूतकाल में ग्रहण किये गये परिग्रह की **पडिक्कमामि** प्रतिक्रमण रुप आलोयणा करूं **निंदामि** आत्म—साक्षी से निंदा करूं **गरिहामि** गुरु साक्षी से गर्हा करूं **अप्पाणं**! परिग्रहग्राही आत्मा का **वोसिरामि** त्याग करूं **भंते**! हे गुरो! **पंचमे** पांचवें **महव्वए** महाव्रत में **सव्वाओ** समस्त **परिग्गहाओ** परिग्रह से **वेरमणं** अलग होने को **उवट्ठिओमि** उपस्थित हुआ हूं।

---

१. 'वा' शब्द से एंडकाष्ठ, रत्न, सचित्त, अचित्त आदि के अलग – अलग तज्जातीय भेद भी ग्रहण करना चाहिये।

छट्ठे व्रत की प्रतिज्ञा

अहावरे छट्ठे भंते! वए राइभोयणाओ वेरमंण सव्वं भंते! राइभोयणं पच्चक्खामि। से असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा नेव सयं राइं भुंजेज्जा नेवऽन्नेहिं राइं भुंजावेज्जा राइं भुंजंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते! पडिक्कमामि निदांमि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामी छट्ठे भंते! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं।

शब्दार्थ-अह इसके बाद! **भंते**! हे गुरू! **अवरे** आगे के **छट्ठे** छठवें **वए** व्रत में **राईभोयणाओ** रात्री-भोजन से **वेरमणं** अलग होना जिनेश्वरों ने फरमाया है, अतएव **भंते** ! हे प्रभो ! **सव्वं** समस्त **राइभोयणं** रात्रि-भोजन का **पच्चक्खामि** मैं प्रत्याख्यान करता हूं **से** वह **असण वा**[1] पकाया हुआ अन्न, आदि **पाणं वा** आचारांगसूत्रोक्त उत्सेदिम आदि जल **खाइमंवा** खजूर आदि **साइमं वा** इलायची, लोंग, चूर्ण आदि **सयं** खुद **राइं** रात्रि में **भुंजिज्जा** खावे **नेव** नहीं **अन्नेहिं** दूसरों को **राइं** रात्रि में **भुंजाविज्जा** खवावे **नेव** नहीं **राइं** रात्रि में **भुंजंते** खाते हुए **अन्ने वि** दूसरों को भी **न समणुजाणेज्जा** अच्छा समझे नहीं, ऐसा जिनेश्वरों ने कहा। इसलिये **जावज्जीवाए** जीवन पर्यन्त **तिविहं** कृत कारित अनुमोदित रूप त्रिविध रात्रि-भोजन को **मणेणं** मन **वायाए** वचन **काएणं** काया रूप **तिविहेणं** तीन योग से **न करेमि** नहीं करूं **न कारवेमि** नहीं कराऊं **करंतं** करते हुए **अन्नं पि** दूसरों को भी **न समणुजाणामि** अच्छा नहीं समझूं **भंते**! हे भगवान्! **तस्स** भूतकाल में किये गये रात्रि-भोजन की **पडिक्कमामि** प्रतिक्रमण रुप आलोयणा करूं **निंदामि** आत्म-साक्षी से निंदा करूं **गरिहामि** गुरु-साक्षी से गर्हा करूं **अप्पाणं** रात्रि-भोजन करनेवाली आत्मा का **वोसिरामि** त्याग करूं **भंते** ! हे प्रभो ! **छट्ठे** छठवें **वए** व्रत में **सव्वाओ** समस्त **राइभोयणाओ** रात्रि भोजन से **वेरमणं** अलग होने को **उवट्ठिओमि** उपस्थित हुआ हूं **इच्चेयाइं पंचमहव्वयाइं राइभोयण वेरमण छठ्ठाइं अत्तहियट्ठयाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि।**

शब्दार्थ —**इच्चेयाइं** इत्यादि ऊपर कहे हुए **पंचमहव्वयाइं** पांच महाव्रतों **राइभोयणवेरमणछट्ठाइं** और छठवें रात्रि-भोजन विरमण व्रत को **अत्तहियट्ठवाए** आत्महित के लिये **उवसंपज्जित्ताणं** अंगीकार करके **विहरामि** संयमधर्म में विचरुं।

—श्रमण भगवान श्रीमहावीरस्वामी ने सभा के बीच में केवलज्ञान से समस्त वस्तु-तत्त्व को देख कर स्पष्ट रूप से कहा है कि साधु रात्रिभोजन सहित जीव हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह; इन पांच आश्रवों को दुर्गतिदायक जानकर स्वयं आचरण न

---

१ **वा** शब्द से अशन, पान, खादिम, स्वादिम के अवांतर तज्जातीय भेदों को भी ग्रहण करना चाहिये।

करे, दूसरों से आचरण न करावे और आचरण करनेवाले दूसरों को भी अच्छा नहीं समझे। इस प्रकार रात्रिभोजन विरमण सहित पांच महाव्रतों को आत्म- कल्याण के वास्ते अंगीकार करके संयम धर्म में विचरे। ऐसा सुधर्मस्वामी ने जम्बूस्वामी से कहा।

जम्बूस्वामी प्रतिज्ञा करते हैं कि हे भगवन्! जिनेश्वरों की आज्ञा के अनुसार मैं रात्रिभोजन सहित पांचों आश्रवों का, तीन करण, तीन योग से त्याग करता हूं और भूतकाल में आचरण किये गये आश्रवों की आलोयणा रूप आत्मसाक्षी से निंदा तथा गुरुसाक्षी से गर्हा और आश्रवसेवी आत्मा का त्याग करता हूं। इस प्रकार रात्रिभोजन विरमण व्रत सहित पांच महाव्रतों को भले प्रकार स्वीकार करके सयंमधर्म में विचरता हूं।

इसी तरह प्रतिज्ञा और रात्रिभोजनविरमणव्रत-सहित पांचों महाव्रत जिनका स्वरूप ऊपर दिखाया गया है उसे अंगीकार करके दूसरे साधु साध्वियों को भी संयमधर्म में सावधानी से विचरना चाहिये।

"जीवों की जयणा रखने का उपदेश—"

पृथ्वीकाय की रक्षा :-

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा; से पुढविं वा भित्तिं वा सिलं वा लेलुं वा ससरक्खं वा कायं ससरक्खं वा वत्थं हत्थेण वा पाएण वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा अंगुलियाए वा सिलागाए वा सिलागहत्थेण वा न आलिहिज्जा न विलिहिज्जा न घट्टिज्जा न भिंदिज्जा; अन्नं न आलिहावेज्जा न विलिहावेज्जा न घट्टाविज्जा न भिंदाविज्जा, अन्नं आलिहंतं वा विलिहंतं वा घट्टंतं वा भिंदंतं वा न समणुजाणामि। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

शब्दार्थ :- **से** पूर्वोक्त पंचमहाव्रतों के धारक **संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे** संयम युक्त, विविध तपस्याओं में लगे हुए और प्रत्याख्यान से पापकर्मों को नष्ट करनेवाले **भिक्खू वा** साधु अथवा **भिक्खुणी वा** साध्वी **दिआ वा** दिवस में, अथवा **राओ वा** रात्रि में, अथवा **एगओ वा** अकेले, अथवा **परिसागओ वा** सभा में, अथवा **सुत्ते वा** सोते हुए, अथवा **जागरमाणे** जागते हुए **वा** और भी कोई अवस्था में **से** पृथ्वीकायिक जीवों की जयणा इस प्रकार करे कि **पुढविं वा**[1] खान की मिट्टी **भित्तिं वा** नदीतट की मिट्टी **सिलं वा** बड़ा पाषाण **लेलुं वा** पाषाण के टुकड़े **ससरक्खं वा कायं** सचित्त रज से युक्त शरीर **ससरक्खं वा वत्थं** सचित्त रज से युक्त वस्त्र

१. वा शब्द से खान आदिमें तज्जातीय भेदों को भी ग्रहण करना। इसी तरह आगे के आलावाओं में भी अपकाय हेणस्काय, वायु और वनस्पतिकाय के तज्जातीय भेदों को भी ग्रहण करना।

पात्र इत्यादि पृथ्वीकायिक जीवों को हत्थेण वा हाथों से अथवा पाएण वा पैरों से अथवा कट्ठेण वा काष्ठ से अथवा किलिंचेण वा काष्ठ के टुकड़ों से अथवा अंगुलियाए वा अंगुलियों से अथवा सिलागाए वा लोहा आदि के खीले से अथवा सिलागहत्थेण खीलों आदि के समूह से वा दूसरी और भी कोई तज्जातीय वस्तुओं से न आलिहिज्जा एक बार खणे नहीं न विलिहिज्जा अनेक बार खणे नहीं न घट्टिज्जा चल-विचल करे नहीं न भिंदिज्जा छेदन-भेदन करे नहीं अन्नं दूसरों के पास न आलिहावेज्जा एक बार खणावे नहीं न विलिहावेज्जा अनेक बार खणावे नहीं न घट्टाविज्जा चल-विचल करावे नहीं न भिंदाविज्जा छेदन-भेदन करावे नहीं अन्नं दूसरों को आलिहंतं वा एक बार खणते हुए अथवा विलिहंतं वा अनेक बार खणते हुए अथवा घट्टंतं वा चल विचल करते हुए अथवा भिंदंतं वा छेदन भेदन करते हुए न समणुजाणेज्जा अच्छा समझे नहीं ऐसा भगवान ने कहा. अतएव जावज्जीवाए जीवन पर्यन्त तिविहं कृत, कारित अनुमोदित रूप पृथ्वीकाय संबन्धी त्रिविध हिंसा को मणेणं मन वायाए वचन काएणं काया रूप तिविहेणं तीन योग से न करेमि नहीं करूं न कारवेमि नहीं कराऊं करंतं करते हुए अन्नं पि दूसरों को भी न समणुजाणामि अच्छा नहीं समझूं भंते हे गुरू! तस्स भूतकाल में की गई हिंसा की पडिक्कमामि प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करूं निंदामि आत्म-साक्षी से निंदा करूं गरिहामि गुरुसाक्षी से गर्हा करूं अप्पाणं पृथ्वीकाय की हिंसा करनेवाली आत्मा का वोसिरामि त्याग करूं।

अप्काय की रक्षा

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से उदगं वा ओसं वा हिमं वा महियं वा करगं वा हरितणुगं वा सुद्धोदगं वा उदउल्लं वा कायं उदउल्लं वा वत्थं ससणिद्धं वा कायं ससणिद्धं वा वत्थं न आमुसिज्जा न संफुसिज्जा न आवीलिज्जा न पवीलिज्जा न अक्खोडिज्जा न पक्खोडिज्जा न आयाविज्जा न पयाविज्जा; अन्नं न आमुसाविज्जा न संफुसाविज्जा न आवीलाविज्जा न पवीलाविज्जा न अक्खोडाविज्जा न पक्खोडाविज्जा न आयाविज्जा न पयाविज्जा; अन्नं आमुसंतं वा संफुसंतं वा आवीलंतं वा पवीलंतं वा अक्खोडंतं वा पक्खोडंतं वा आयावंतं वा पयावंतं वा न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि!

शब्दार्थ :-से पूर्वोक्त पंचमहाव्रतों के धारक **संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे** संयम युक्त, विविध तपस्याओं में लगे हुए और प्रत्याख्यान से पापकर्म को नष्ट करने वाले भिक्खू वा साधु अथवा भिक्खुणी वा साध्वी दिआ वा दिवस में अथवा राओ वा रात्रि

में एगओ वा अकेले अथवा परिसागओ वा सभा में अथवा सुत्ते वा सोते हुए अथवा जागरमाणे जागते हुए वा दूसरी और भी कोई अवस्था में से अप्कायिक-जीवों की जयणा इस प्रकार करे कि उदगं वा वावडी, कुआ आदि के जल ओसं वा ओस का जल हिमं वा बर्फ का जल महियं वा धूंअर का जल करगं वा ओरा का जल हरितणुगं वा वनस्पति पर रहे हुए जल के कण सुद्धोदगं वा बारीश का जल उदउल्लं वा कायं जल से भींजी हुई काया उदउल्लं वा वत्थं जल से भींजे हुए वस्त्र आदि ससणिद्धं वा कायं जलबिन्दु रहित भींजी हुई काया ससणिद्धं वा वत्थं जल बिन्दु रहित भींजे हुए वस्त्र आदि अप्काय को न आमुसेज्जा पूंछे नहीं न संफुसेज्जा छूए नहीं न आवीलिज्जा एक बार पीड़ा देवे नहीं न पविलिज्जा बार – बार पीड़ा देवे नहीं न अक्खोडिज्जा एक बार झटके नहीं न पक्खोडिज्जा बार- बार झटके नहीं न आयाविज्जा एक बार तपावे नहीं न पयाविज्जा बार- बार तपावे नहीं अन्नं दूसरों के पास न आमुसाविज्जा पूंछावे नहीं न संफुसाविज्जा छुआवे नहीं न आवीलाविज्जा एक बार पीड़ा दिलवाऐं नहीं न पविलाविज्जा बार – बार पीड़ा दिलवाऐं नहीं न अक्खोडाविज्जा एक बार झटकवाऐं नहीं न पक्खोडाविज्जा बार- बार झटकवाऐं नहीं न आयाविज्जा एक बार तपवाऐं नहीं न पयाविज्जा बार- बार तपवाऐं नहीं अन्नं दूसरों को आमुसंतं वा पूंछते हुए अथवा संफुसंतं वा छूते हुए अथवा आवीलंतं वा एक बार पीड़ा देते हुए अथवा पवीलंतं वा बार – बार पीड़ा देते हुए अथवा अक्खोडंतं वा एक बार झटकते हुए अथवा पक्खोडंतं वा बार – बार झटकते हुए अथवा आयावंतं वा एक बार तपाते हुए अथवा पयावंतं वा बार- बार तपाते हुए न समणुजाणेज्जा अच्छा समझे नहीं ऐसा भगवान ने कहा, अतएव मैं जावज्जीवाए जीवन पर्यंत तिविहं कृत, कारित, अनुमोदित रूप अप्कायिक त्रिविध-हिंसा को मणेणं मन वायाए वचन काएणं काया रूप तिविहेणं तीन योग से न करेमि नहीं करूं न कारवेमि नहीं कराऊं करंतं करते हुए अन्न पि दूसरों को भी न समणुजाणामि अच्छा नहीं समझूं भंते! हे प्रभो! तस्स भूतकाल में की गई हिंसा की पडिक्कमामि प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करूं निंदामि आत्म-साक्षी से निंदा करूं गरिहामि गुरु-साक्षी से गर्हा करूं अप्पाणं अप्काय की हिंसा करनेवाली आत्मा का वोसिरामि त्याग करूं।

तेउकाय की रक्षा

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते जागरमाणे वा से अगणिं वा इंगालं वा मुम्मुरं वा अच्चिं वा जालं वा अलायं वा सुद्धागणिं वा उक्कं वा न उंजिज्जा न घट्टेज्जा न भिंदेज्जा न उज्जालेज्जा न पज्जालेज्जा न निव्वावेज्जा; अन्नं न उंजावेज्जा न घट्टावेज्जा न भिंदावेज्जा न उज्जालावेज्जा न पज्जालावेज्जा न निव्वाविज्जा; अन्नं उंजंतंपवि घट्टंतं वा भिंदंतं वा उज्जालंतं वा पज्जालंतं वा निव्वावंतं वा न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए

तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते ? पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

शब्दार्थ-से पूर्वोक्त पंच महाव्रतों के धारक **संजय विरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे** सयंम युक्त, विविध तपस्याओं में लगे हुए और प्रत्याख्यान से पापकर्म को नष्ट करने वाले **भिक्खू वा** साधू अथवा **भिक्खुणी वा** साध्वी **दिआ वा** दिवस में अथवा **राओ वा** रात्रि में अथवा **एगओ वा** अकेले अथवा **परिसागओ वा** सभा में अथवा **सुत्ते वा** सोते हुए अथवा **जागरमाणे** जागते हुए **वा** दूसरी और **भी** कोई अवस्था में **से** अग्निकायिक जीवों की जयणा इस प्रकार से करे कि **अगणिं वा** तपे हुए लोहे में स्थित अग्नि **इंगालं वा** अंगारों की अग्नि **मुम्मुरं वा** भोभर की अग्नि **अच्चिं वा** दीपक आदि की अग्नि **जालं वा** ज्वाला की अग्नि **अलायं वा** जलते हुए काष्ठ की अग्नि **सुद्धागणिं वा** काष्ठ रहित अग्नि **उक्कं वा** उल्कापात बिजली आदि अग्निकाय को **न उंजिज्जा** ईंधनादि से सींचे[1]नहीं **न घट्टेज्जा** चलविचल[2] करे नहीं **न भिंदेज्जा** छेदन-भेदन करे नहीं **न उज्जालेज्जा** एक बार पवन आदि से उजारे[3] नहीं **न पज्जालेज्जा** बारं बार पवन आदि से उजारे नहीं **न निव्वावेज्जा** बुझाए नहीं **अन्नं** दूसरों के पास **न उंजावेज्जा** ईंधनादि से सिंचे नहीं **न घट्टावेज्जा** चलविचल कराए नहीं **न भिंदावेज्जा** छेदन[4] भेदन करे नहीं **न उज्जालावेज्जा** एक बार उजरवाऐं नहीं **न पज्जालावेज्जा** बारंबार पवन आदि से उजरवाऐं नहीं **न निव्वाविज्जा** बुझवाऐ नहीं **अन्नं** दूसरों को **उंजंतं वा** ईन्धनादिक सेसींचते हुए अथवा **घट्टंतं वा** चलविचल करते हुए अथवा **भिंदंतं वा** छेदन भेदन करते हुए अथवा **उज्जालंतं वा** पवन आदि से बार बार उजारते हुए अथवा **पज्जालंतं वा** पवन आदि से बार-बार उजारते हुए अथवा **निव्वावंतं वा** बुझाते हुए **न समणुजाणेज्जा** अच्छा समझे नहीं ऐसा भगवान ने कहा, अतएव मैं **जावज्जीवाए** जीवन पर्यंत **तिविहं** कृत कारित अनुमोदित रूप अग्निकायिक त्रिविध हिंसा को **मणेणं** मन **वायाए** वचन **काएणं** कायारूप **तिविहेणं** तीन योग से **न करेमि** नहीं करूं **न कारवेमि** नहीं कराऊं **करंतं** करते हुए **अन्नं पि** दूसरों को भी **न समणुजाणामि** अच्छा नहीं समझूं **भंते!** हे गुरू! **तस्स** भूतकाल में की गई हिंसा की **पडिक्कमामि** प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करूं **निंदामि** आत्मसाक्षी से निंदा करूं **गरिहामि** गुरू-साक्षी से गर्हा करूं **अप्पाणं** अग्निकाय की हिंसा करनेवाली आत्मा का **वोसिरामि** त्याग करूं!

वाउकाय की रक्षा

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से सिएण वा विहुणेण वा तालियंटेण वा

---

१. आग में लकड़ी वगेरह डाले नहीं। २. हिलाए नहीं। ३. वायु या फूंक देकर जलाए नहीं। ४. आग के बड़े खंडो को तोड़कर छोटे – छोटे टुकडे करे नहीं।

पत्तेण वा पत्त-भंगेण वा, साहाए वा साहा भंगेण वा पिहुणेण वा पिहुणहत्थेण वा चेलेण वा चेलकन्नेण वा हत्थेण वा मुहेण वा अप्पणो वा कायं बाहिरं वा वि पुग्गलं न फुमेज्जा न वीएज्जा; अन्नं न फुमावेजा न वीआवेज्जा; अन्नं फुमंतं वा वीयंतं वा न! समणुजाणेज्जा! तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि!

शब्दार्थ- से पूर्वोक्त पंच महाव्रतों के धारक **संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे** संयम युक्त,विविध तपस्याओं में लगे हुए और प्रत्याख्यान से पापकर्म को नष्ट करनेवाले **भिक्खू वा** साधु अथवा **भिक्खुणी वा** साध्वी **दिआ वा** दिवस में अथवा **राओ वा** रात्रि में अथवा **एगओ वा** अकेले अथवा **परिसागओ वा** सभा में अथवा **सुत्ते वा** सोते हुए अथवा **जागरमाणे** जागते हुए **वा** दूसरी **और भी** कोई अवस्था में **से** वायुकायिक जीवों की जयणा इस प्रकार करें कि **सिएण वा** सफेद चामरों से **विहुणेण वा** बींजना से **तालियंटेण वा** तालपत्र से **पत्तेण वा** कमल आदि के पत्तों से **पत्तभंगे**ण **वा** कमल आदि के पत्र समूह से **सहाए वा** वृक्ष की डाली से **साहाभंगेण वा** डालियों के समूह से **पिहुणेण वा** मयूर पींछ से **पिहुणहत्थेण वा** मोर पींछ की पुंजनी से **चलेण वा** वस्त्र से **चेलकन्नेण वा** वस्त्र के छेड़ा से **हत्थेणं वा** हाथों से **मुहेण वा** मुख से **अप्पणोवा कायं** खुद के शरीर को बाहिरं **वा वि पुग्गलं** गर्म जल, दूध आदि के उष्ण पुद्गलो को भी **न फुमेज्जा** फूंक देवे नहीं **न वीएज्जा हवा देवे नहीं** अन्नं दूसरों के पास **न फुमाविज्जा** फूंक दिलवाएं नहीं **न वीएज्जा** हवा दिलवाएं नहीं **अन्नं** दूसरों को **फुमंतं वा** फूंक देते हुए अथवा **वीयंतं** हवा डालते हुए **वा** और तरह से भी वायुकाय का विनाश करते हुए **न समणुजाणेज्जा** अच्छा समझे नहीं ऐसा भगवान ने कहा; अतएव मैं **जावज्जीवाए** जीवन पर्यन्त **तिविहं** कृत, कारित, अनुमोदित रुप वायुकायिक त्रिविध हिंसा को **मणेणं** मन **वायाए** वचन **काएणं** काया रूप **तिविहेणं** तीन योग से **न करेमि** नहीं करुं **न कारवेमि** नहीं कराऊं **करंतं** करते हुए **अन्नं पि** दूसरों को भी **न समणुजाणामि** अच्छा नही समझूं **भंते**! हे भगवन्! **तस्स** भूतकाल में की गई हिंसा की **पडिक्कमामि** प्रतिक्रमण रुप आलोयणा करूं **निंदामि** आत्म-साक्षी से निंदा करूं **गरिहामि** गुरु- साक्षी से गर्हा करूं **अप्पाणं** वायुकाय की हिंसा करने वाली आत्मा का **वोसिरामि** त्याग करूं।

"वनस्पति काय की रक्षा"

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से बीएसु वा वीयपइट्ठेसु वा रुढेसु वा रुढेपइट्ठेसु वा जाएसु वा जायपइट्ठेसु वा हरिएसु वा हरियपइट्ठेसु वा छिन्नेसु वा छिन्नपइट्ठेसु वा सच्चित्तेसु वा सच्चित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा न गच्छेज्जा न चिट्ठेज्जा न निसीएज्जा न तुअट्टेज्जा;अन्नं न गच्छावेजा न चिट्ठावेजा न निसीयावेजा न तुअट्टावेजा;अन्नं गच्छंत्तं वा चिट्ठंतं वा निसीयंतं वा तुअट्टंतं वा न समणुजाणेज्जा। जावजीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरोमि।

शब्दार्थ-से पूर्वोक्त पंच महाव्रतों के धारक **संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे** संयम युक्त, विविध तपस्याओं में लगे हुए और प्रत्याख्यान से पापकर्म को नष्ट करनेवाले **भिक्खू वा** साधु अथवा **भिक्खुणी वा** साध्वी **दिआ वा** दिवस में अथवा **राओ वा** रात्रि में अथवा **एगओ वा** अकेले अथवा **परिसागओ वा** सभा में अथवा **सुत्ते वा** सोते हुए अथवा **जागरमाणे** जागते हुए **वा** दूसरी और भी कोई अवस्था में **से** वनस्पति कायिक जीवों की जयणा इस प्रकार करे कि **बीएसु वा** शाली आदि बीजों के ऊपर **बीयपइट्ठेसु वा** बीजों पर रहे आसन ऊपर **रूढेसु वा** अंकुरों के ऊपर **रूढपइट्ठेसु वा** अंकुरों पर रहे आसन आदि वस्तुओं के ऊपर **जाएसु वा** धान्य के खेतों में **जायपइट्ठेसु वा** धान्य के खेतों में रहे आसन आदि वस्तुओं के ऊपर **हरिएसु वा** हरे घास के ऊपर **हरियपइट्ठेसु वा** हरे घास पर रहे आसन आदि वस्तुओं के ऊपर **छिन्नेसु वा** कटी हुई वृक्ष की डाली के ऊपर **छिन्नपइट्ठेसु वा** कटी हुई वृक्ष-डाली पर रहे आसन आदि के ऊपर **सच्चित्तेसु वा** अंडा आदि के ऊपर **सच्चित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा** घुण आदि जन्तुयुक्त आसन आदि वस्तुओं के ऊपर **न गच्छेज्जा** गमन करे नहीं **न चिट्ठेज्जा** खड़ा रहे नहीं **न निसीएज्जा** बैठे नहीं **न तुअट्टाविज्जा** सोएं नहीं **अन्नं** दूसरों को **न गच्छावेज्जा** गमन कराएं नहीं **न चिट्ठावेज्जा** खड़ा कराएं नहीं **न निसीयावेज्जा** बैठाएं नहीं **न तुअट्टाविज्जा** सुलाएं नहीं **अन्नं** दूसरों को **गच्छंतं वा** गमन करते हुए अथवा **चिट्ठंतं वा** खड़ा रहते हुए अथवा **निसीयंतं वा** बैठते हुए अथवा **तुअट्टंतं वा** सोते हुए और तरह से भी वनस्पतिकाय की हिंसा करते हुए **न समणुजाणेज्जा** अच्छा नहीं समझे ऐसा भगवान ने कहा; अतएव मैं **जावज्जीवाए** जीवन पर्यन्त **तिविहं** कृत, कारित, अनुमोदित रूप वनस्पतिकायिक त्रिविध हिंसा को **मणेणं** मन **वायाए** वचन **काएणं** काया रूप **तिविहेणं** तीन योग से **न करेमि** नहीं करूं **न कारवेमि** नहीं कराऊं **करंतं** करते हुए **अन्नं पि** दूसरों को भी **न समणुजाणामि** अच्छा नहीं समझू **भंते** हे प्रभो! **तस्स** भूतकाल में की गई हिंसा की **पडिक्कमामि** प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करूं **निंदामि** आत्म-साक्षी से निंदा करूं **गरिहामि** गुरू-साक्षी से गर्हा करूं **अप्पाणं** वनस्पतिकाय की हिंसा करनेवाली आत्मा का **वोसिरामि** त्याग करूं।

"त्रसकाय की रक्षा"

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयंगं वा कुंथुं वा पिपीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा ऊरूंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलंसि वा पायपुच्छणंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उंडगंसि वा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जगंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेवपडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय एगंतमवणेज्जा नोण संघायमावज्जेज्जा।

शब्दार्थ-से पूर्वोक्त पांच महाव्रतों के धारक **संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे** संयम युक्त ,विविध तपस्याओं में लगे हुए और प्रत्याख्यान से पापकर्म को नष्ट करने वाले **भिक्खू वा** साधु

अथवा **भिक्खुणी वा**[1]साध्वी **दिआ वा** दिवस में अथवा **राओ वा** रात्रि में अथवा **एगओ वा** अकेले अथवा **परिसागओ वा** सभा में अथवा **सुत्ते वा** सोते हुए अथवा **जागरमाणे** जागते हुए **वा** दूसरी और भी कोई अवस्था में **से** त्रसकायिक जीवों की रक्षा इस प्रकार करे कि **कीडं वा**[2] कीट **पयंगं वा** पतंग **कुंथं वा** कुन्थु **पिपीलियं वा** कीड़ी आदि द्विन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों को **हत्थंसि वा** हाथों पर अथवा **पायंसि वा** पैरों पर अथवा **बाहुंसि वा** भुजाओं पर अथवा **ऊरूंसि वा** जंघाओं पर अथवा **उदरंसि वा** पेट पर अथवा **सीसंसि वा** मस्तक पर अथवा **वत्थंसि वा** वस्त्रों में अथवा **पडिग्गहंसि वा** पात्रों में अथवा **कंबलंसि वा** कंबलियों में अथवा **पायपुच्छणंसि वा** पैरों के पूंछने के कंबल खंड में या दंडासन में अथवा **रयहरणंसि वा** ओघाओं में अथवा **गोच्छगंसि वा** गुच्छाओं में अथवा **उंडगंसि वा** मातरिया,या स्थंडिल में अथवा **दंडगंसि वा** दंडाओं पर अथवा **पीढगंसि वा** बाजोंटों में अथवा **फलगंसि वा** पाटों में अथवा **सेज्जगंसि वा** शय्या, वसति आदि में अथवा **संथारगंसि वा** संथारा में **अन्नयरंसि वा** दूसरे और भी **तहप्पगारे** साधु साध्वी योग्य **उवगरणजाए** उपकरण समुदाय में रहे हुए **तओ** हाथ आदि स्थानों से **संजयामेव** जयणा पूर्वक ही **पडिलेहिय पडिलेहिय** वारं वार देख, और **पमज्जिय पमज्जिय** पूंज-पूंज करके **एगंतं** एकान्त स्थान पर **अवणेज्जा** छोड़ देवे, परन्तु **नो णं संघायमावज्जेज्जा** त्रसकायिक जीवों को पीड़ा देवे नहीं।

हे आयुष्मन्! जम्बू! भगवान् श्रीमहावीरस्वामी ने बारह प्रकार की सभा में बैठ कर फरमाया है कि पांच महाव्रतों के पालक, सप्तदशविध-संयम के धारक, विविध तपस्याओं के करने और प्रत्याख्यान मे पापकर्मों को हटाने वाले साधु अथवा साध्वी दिन में या रात्रि में, अकेले या सभा में, सोते या जागते हुए, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय इन जीवों की जयणा खुद करे, दुसरों को जयणा रखने का उपदेश देवे और जयणा रखने वाले को अच्छा समझें।

षट्कायिक जीवों की हिंसा खुद न करें, दूसरों के पास हिंसा न करावे और हिंसा करनवालों को अच्छा न समझें। भूतकाल में जो षट्कायिक जीवों की हिंसा की गई है उसकी आलोयणा करे, निन्दा करे और पापकारक आत्मा का त्याग करे। इस प्रकार ज्ञपरिज्ञा से प्रतिज्ञा करके संयमधर्म का अच्छी **तरह** पालन करे।

जम्बूस्वामी कहते हैं कि हे भगवन्! षड्कायिक जीवों की जयणा (रक्षा) करने का स्वरूप जो आपने ऊपर दिखलाया है उस मुताबिक मैं खुद पालन करूंगा, दूसरों से पालन कराऊंगा और पालन करनेवालों को अच्छा समझूंगा। षट्कायिकजीवों की हिंसा खुद नहीं करूंगा, दूसरों के पास नहीं कराऊंगा और हिंसा करनवालों को अच्छा नहीं समझूंगा।

---

१. 'वा' शब्द से सामान्य विशेष साधु साध्वी का ग्रहण करना। २. 'वा' शब्द से कीट, पतंग कुन्थु कीड़ी आदि में सभी जातियों को ग्रहण करना चाहिये।

भूत[1]काल में बिना उपयोग से जो हिंसा हो चुकी है उसकी आत्मा और गुरू की साख से निन्दा करता हूं और उस पाप करनेवाले आ[2]त्म-परिणाम को हमेशा[3] के लिये छोड़ता हूँ। यह प्रतिज्ञा एक दो दिन के लिये ही नहीं, किन्तु जीवन[4] पर्यन्त के लिये करता हूं।

दूसरे आ[5]त्मार्थी मोक्षा[6]भिलाषुक साधु साध्वियों को भी उपरोक्त प्रकार से षट्कायिक जीवो की जयणा करते हुए ही संयम-धर्म में वरतना चाहिये। क्योंकि हर एक जीवों पर दया रखना यही पार[7]मार्थिक मार्ग है।

जयणा और विहार आदि करने का उपदेश

अजयं चरमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुअं फलं॥ १॥

शब्दार्थ-अजयं ईर्यासमिति का उ[8]ल्लंघन करके **चरमाणो** गमन करता हुआ साधु **पाणभूयाइं** एकेन्द्रिय आदि जीवों की **हिंसइ** हिंसा करता है **य** और **पावयं कम्मं** ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को **बंधइ** बांधता है **से** उस **तं** पापकर्म का **कडुअं फलं** कडुआ फल **होइ** होता है।

अजयं चिट्ठमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुअं फलं॥ २॥

शब्दार्थ-अजयं ईर्यासमिति का उल्लंघन करके **चिट्ठमाणो** खड़ा रहता हुआ साधु **पाणभूयाइं** एकेन्द्रिय आदि जीवों की **हिंसइ** हिंसा करता है **य** और **पावयं कम्मं** ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को **बंधइ** बांधता है **से** उस **तं** पापकर्म का **कडुअं फलं** कडुआ फल **होइ** होता है।

अजयं आसमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुअं फलं॥ ३॥

शब्दार्थ-अजयं ईर्यासमिति का उल्लंघन करके **आसमाणो** बैठता हुआ साधु **पाणभूयाइं** एकेन्द्रिय आदि जीवों की **हिंसइ** हिंसा करता है **य** और **पावयं कम्मं** ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को **बंधइ** बांधता है **से** उस **तं** पापकर्म का **कडुअं फलं** कडुआ फल **होइ** होता है।

अजयं सयमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पायवं कम्मं, तं से होइ कडुअं फलं॥ ४॥

शब्दार्थ-अजयं ईर्यासमिति का उल्लंघन करके **सयमाणो** शयन करता हुआ साधु

---

१. दीक्षा लेने के पहले के समय में। २. जीव स्वभाव ३. सदा के लिये ४. जीता रहूं तब तक ५ संयम को खप करनेवाले ६. मोक्ष की इच्छा रखने वाले ७. असली मोक्षमार्ग ८. नाश

पाणभूयाइं एकेन्द्रिय आदि जीवों की **हिंसइ** हिंसा करता है **य** और **पावयं कम्मं** ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को **बंधइ** बांधता है **से** उस **तं** पापकर्म का **कडुअं फलं** कडुआ फल **होइ** होता है।

अजयं भुंजमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुअं फलं॥५॥

शब्दार्थ-अजयं एषणा समिति का उल्लंघन करके **भुंजमाणो** भोजन करता हुआ साधु **पाणभूयाइं** एकेन्द्रिय आदि जीवों की **हिंसइ** हिंसा करता है **य** और **पावयं कम्मं** ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को **बंधइ** बांधता है **से** उस **तं** पापकर्म का **कडुअं फलं** कडुआ फल **होइ** होता है।

अजयं भासमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुअं फलं॥६॥

शब्दार्थ-अजयं भाषासमिति का उल्लंघन करके **भासमाणो** बोलता हुआ साधु **पाणभूयाइं** एकेन्द्रिय आदि जीवों की **हिंसइ** हिंसा करता है **य** और **पावयं कम्मं** ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को **बंधइ** बांधता है **से** उस **तं** पापकर्म का **कडुअं फलं** कडुआ फल **होइ** होता है।

साधु अथवा साध्वी ईर्यासमिति का उल्लंघन करके अजयणा से गमन करते, खड़े रहते, बैठते, शयन करते, एषणा समिति का उल्लंघन करके अयत्ना से भोजन करते, और भाषासमिति का उल्लंघन करके अयत्ना से बोलते हुए एकेन्द्रिय आदि जीवों की हिंसा करते हैं और ज्ञानावरणीय आदि आठ[2] कर्मों को बांधते हैं, और उन पापकर्मों का संसार में परिभ्रमण रूप कडुआ फल मिलता है।

कहं चरे? कहं चिट्ठे? कहमासे? कहं सए?
कहं भुंजंतो भासंतो? पावकम्मं न बंधइ?॥७॥

शब्दार्थ-कहं किस प्रकार **चरे** गमन करे? **कहं** किस प्रकार **चिट्ठे** खड़ा रहे? **कहं आसे** किस प्रकार बैठे? **कहं** किस प्रकार **सए** शयन करे? **कहं** किस प्रकार **भुंजंतो** भोजन करते, और **भासंतो** बोलते हुए **पावकम्मं** पापकर्म को **न बंधइ** नहीं बांधता?

जम्बूस्वामी पूछते हैं कि हे भगवन्! किस प्रकार चलते, बैठते, खड़े रहते, सोते, भोजन करते और बोलते हुए साधु-साध्वी पाप-कर्म को नहीं बांधते हैं?

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधइ॥८॥

---

१. नाश २. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नामकर्म, गोत्रकर्म, अन्तरायकर्म और आयुष्यकर्म ये आठ कर्म है। इनमें नाम, गोत्र, वेदनीय, आयु ये चार भवोपग्राही कर्म कहाते हैं।

शब्दार्थ-जयं जयणा से **चरे** गमन करते **जयं** जयणा से **चिट्ठे** खड़े रहते **जयमासे** जयणा से बैठते जयं जयणा से **सए** सोते **जयं** जयणा से **भुंजंतो** भोजन करते और जयणा से **भासंतो** बोलते हुए **पावकम्मं** पापकर्म को **न बंधइ** नहीं बाँधते हैं।

सुधर्मास्वामी फरमाते हैं कि हे जम्बू! ईर्यासमिति सहित जयणा से गमन करते, खड़े रहते, बैठते, सोते हुए, एषणासमिति सहित जयणा से भोजन करते हुए और भाषासमिति सहित जयणा से परिमित बोलते हुए पाप-कर्म का बन्ध नहीं होता।

"सभी आत्मा को स्वात्म सम मानना"

सव्वभूयप्पभूअस्स, सम्मं भूयाइं पासओ।
पिहिआसवस्स दंतस्स पावकम्मं न बंधइ॥ ९॥

शब्दार्थ-सव्वभूयप्पभूअस्स सभी जीवों को आत्मा के समान समझने वाले **सम्मं** अच्छे प्रकार से **भूयाइं** समस्त प्राणियों को **पासओ देखने वाले पिहिआसवस्स** आश्रव द्वारों को रोकनेवाले **दंतस्स** इन्द्रियों को दमने वाले साधु साध्वियों को **पावकम्मं** पापकर्म का **न बंधइ** बन्ध नहीं होता है।

जो साधु साध्वी आश्रवद्वारों को रोकने, इन्द्रियों को दमने, सभी जीवों को आत्मा के समान समझने और देखने वाले हैं उनको पापकर्म का बंध नहीं होता।

ज्ञान की महत्ता

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाही सेयपावगं॥ १०॥

शब्दार्थ-पढमं पहले **नाणं** जीव, अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञान **तओ** उसके बाद **दया** संयम रूप क्रिया है **एवं** इस प्रकार ज्ञान और क्रिया से चिट्ठए रहता हुआ साधु **सव्वसंजए** सर्व प्रकार से संयत होता है **अन्नाणी** जीव अजीव आदि तत्त्वज्ञान से रहित साधु **किं काही** क्या करेगा **वा** अथवा **सेयपावगं** पुण्य और पाप को **किं नाही** क्या समझेगा?

पहले ज्ञान और बाद में दया याने संयम रूप क्रिया से युक्त साधु सभी प्रकार से संयत कहलाता है। ज्ञानक्रिया से रहित साधु पुण्य और पाप के स्वरूप को नहीं जान सकता।

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयंपि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे॥ ११॥

*शब्दार्थ-**सोच्चा** आगमों को सुन करके **कल्लाणं** संयम के स्वरूप को **जाणइ** जानता है **सोच्चा** आगमों को सुन करके **उभयं पि** संयम और असंयम को **जाणए** जानते हुए साधु **जं** जो **सेयं** आत्म हितकारी हो **तं** उसको **समायरे** आचरण करे।*

जिनेश्वर प्ररूपित आगमों के सुनने से कल्याणकारी और पापकारी मार्ग का ज्ञान होता है और दोनों मार्गों का ज्ञान होने के बाद जो मार्ग अच्छा मालूम पड़े उसको स्वीकार कर लेना चाहिये।

जो जीवे वि न याणेइ, अजीवे वि न याणइ।
जीवाऽजीवे अयाणंतो, कहं सो नाहीइ संजमं॥ १२॥

शब्दार्थ-जो जो पुरूष **जीवे वि** एकेन्द्रिय आदि जीवों को भी **न याणेइ** नहीं जानता है **अजीवे वि** अजीव पदार्थों को भी **न याणइ** नहीं जानता है **सो** वह पुरूष **जीवाऽजीवे** जीव अजीव को **अयाणंतो** नहीं जानता हुआ **संयमं** सप्तदशविध संयम को **कहं** किस प्रकार **नाहीइ** जानेगा ?

जो जीवे वि वियाणेइ, अजीवे वि वियाणइ।
जीवाऽजीवे वियाणंतो, सो हु नाहीइ संजमं॥ १३॥

शब्दार्थ-जो जो पुरूष **जीवे वि** एकेन्द्रिय आदि जीवों को भी **वियाणेइ** विशेषरूप से जानता है **अजीवे वि** अजीव पदार्थों को भी **वियाणइ** विशेष रूप से जानता है **सो** वह पुरूष **जीवाऽजीवे** जीव अजीव के स्वरूप को **वियाणंतो** अच्छी तरह से जानता हुआ **संजमं** सप्तदशविध संयम को **हु** निश्चय से **नाहीइ** जानेगा।

जो पुरूष जीव और अजीव द्रव्य के स्वरूप को नहीं जानता वह संयम के स्वरूप को भी किसी प्रकार से नहीं जान सकता और जो जीव तथा अजीव द्रव्य को अच्छी रीति से जानता है वही संयम के स्वरूप को जान सकता है। मतलब यह कि जीव अजीव द्रव्यों के रहस्य को समझने वाला पुरूष ही संयम की वास्तविकता को भले प्रकार समझ सकता है।

जया जीवमजीवे य, दोवि एए वियाणइ।
तया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ॥ १४॥
जया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ।
तया पुणं च पावं च, बंधं मोक्खं च जाणइ॥ १५॥

शब्दार्थ-जया जब **जीवं** जीव **य** और **अजीवे** अजीव **एए** इन **दोवि** दोनों को ही **वियाणइ** जानता है **तया** तब **सव्वजीवाण** समस्त जीवों की **बहुविहं** नाना प्रकार की **गइं** गति को **जाणइ** जानता है।

जया जब **सव्वजीवाण** समस्तजीवों की **बहुविहं** नाना प्रकार की **गइं** गति को

---

१. धर्मास्तिकाय-जो चलने में सहायक है, **अधर्मास्तिकाय-**जो स्थिर रहने में सहायक है, **आकाशास्तिकाय-**जो अवकाशदायक है, **पुद्गलास्तिकाय-**जो सडन पडन विध्वंसनयुक्त है, **काल-**जो नये को जूना व जूने को नया करने वाला है, ये पांच द्रव्य अजीव हैं।

जाणइ जानता है, **तया** तब पुणं च पुण्य और **पावं च** पाप **बंधं** बन्ध **च** और **मोक्खं** मोक्ष को **जाणइ** जानता है।

-जीव, अजीव के स्वरूप को भले प्रकार जान लेने से उनकी नाना प्रकार की गतियों का ज्ञान होता है और उनसे पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष आदि तत्त्वों की जानकारी होती है।

जया पुणं च पावं च, बंधं मोक्खं च जाणइ।
तया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे॥ १६॥
जया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे।
तया चयइ संजोगं, सब्भिंतरं च बाहिरं॥ १७॥

शब्दार्थ-जया जब **पुणं च** पुण्य और **पावंच** पाप **च** और **बंधंमोक्खं** बन्ध, मोक्ष आदि तत्त्वों को **जाणइ** जानता है **तया** तब **जे** जो **दिव्वे** देवसंबन्धी **जे** जो **माणुसे** मनुष्य संबन्धी **य** और तिर्यंच संबन्धी **भोए** भोग हैं, उनको **निव्विंदए** असार जानता है।

जया जब **जे** जो **दिव्वे** देवसंबन्धी **जे** जो **माणुसे मनुष्य संबन्धी य** और तिर्यंच संबन्धी **भोए** भोग हैं, उनको **निव्विंदए** असार जानता है **तया** तब **सब्भिंतरं च** राग, द्वेष आदि अभ्यन्तर सहित **बाहिरं** पुत्र, कलत्र आदि बाह्य **संजोगं** संयोगों को **चयइ** छोड़ता है।

-पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष आदि तत्त्वों का ज्ञान हासिल होने से मनुष्य, देव, मानव और तिर्यंच संबन्धी भोगविलासों को तुच्छ समझता है। ऐसी समझ हो जानें से बाह्य और अभ्यन्तर संयोगों का त्याग करता है।

''ज्ञान का फल''

जया चयइ संजोगं, सब्भिंतरं च बाहिरं।
तया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं॥ १८॥
जया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं।
तया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं॥ १९॥

शब्दार्थ-जया जब **सब्भिंतरं च** अभ्यन्तार सहित **बाहिरं** बाह्य **संजोगं** संयोगों को **चयइ** छोड़ता है **तया** तब **मुंडे** द्रव्य भाव से मुंडित दीक्षित **भवित्ताणं** हो करके **अणगारियं** साधुपन को **पव्वइए** अंगीकार करता है।

जया जब **मुंडे** द्रव्य भाव से मुंडित **भवित्ताणं** हो करके **अणगारियं** साधुपन को **पव्वइए** अंगीकार करता है **तया** तब **संवरमुक्किट्ठं** उत्तम संवरभाव और अणुत्तरं सर्वोत्तम **धम्मं** जिनेन्द्रोक्त धर्म को **फासे** फरसता है।

अभ्यन्तर और बाह्य संयोगों का त्याग करने से मनुष्य, द्रव्य भाव से मुंडित हो कर यानी दीक्षा लेकर साधु होता है और साधु होकर उत्तम संवर और सर्वोत्तम जिनेन्द्रोक्तक धर्म को फरसता है। मतलब यह कि साधु होने बाद ही मनुष्य, उत्तम संवरभाव और धर्म को प्राप्त करता है।

जया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं ।
तया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं॥ २०॥
जया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं।
तया सव्वत्तंग नाणं, दंसण चाभिगच्छइ॥ २१॥

शब्दार्थ- जया जब **संवरमुक्किट्ठं** उत्तम संवर भाव और **अणुत्तरं** सर्वोत्तम **धम्मं** जिनेन्द्रोक्त धर्म को **फासे** फरसता है **तया** तब **अबोहिकलुसं कडं** मिथ्यात्व आदि से किये हुए **कम्मरयं** कर्म-रज को **धुणई** साफ करता है।

जया जब **अबोहिकलुसं कडं** मिथ्यात्व आदि से किये हुए **कम्मरयं** कर्म-रज को **धुणई** साफ करता है **तया** तब **सव्वत्तगं** लोकाऽलोकव्यापी **नाणं** ज्ञान **च** और **दंसणं** दर्शन को **अभिगच्छइ** प्राप्त करता है।

उत्तम संवरभाव और जिनेन्द्रोक्त धर्म की स्पर्शना होने से मनुष्य, मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग आदि से संचित की हुई कर्म रुप धूली को साफ करता है और बाद में उसको केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्राप्त होता है।

जया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली॥ २२॥
जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली।
तया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ॥ २३॥

शब्दार्थ- जया जब **सव्वत्तगं** लोकाऽलोकव्यापी **नाणं** ज्ञान **च** और **दंसणं** दर्शन को **अभिगच्छइ** प्राप्त करता है **तया** तब **जिणो** रागद्वेष को जीतनेवाला **केवली** केवलज्ञानी पुरुष **लोगं** चउदह राज प्रमाण लोक को **च** और **अलोगं** अलोकाकाश को **जाणइ** जानता है।
जया जब **जिणो** राग द्वेष को जीतनेवाला **केवली** केवलज्ञानी पुरुष **लोगं** लोक **च** और **अलोगं** अलोक को **जाणइ** जानता है **तया** तब **जोगे** मन-वचन-काय इन तीन योगों को **निरुंभित्ता** रोक करके भवोपग्राही कर्मांशों के विनाशार्थ **सेलेसिं** शैलेशी अवस्था को **पडिवज्जइ** स्वीकार करता है।

लोकालोक व्यापी केवलज्ञान और केवलदर्शन पैदा होने से मनुष्य चउदह राज प्रमाण लोक और अलोकाकाश को और उसमें रहे हुए समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत् जानता और देखता है। चउदह राज प्रमाण लोक और अलोकाकाश को जानने, देखने के बाद भवोपग्राही कर्मांशों

का नाश करने के लिये केवलज्ञानी पुरुष मानसिक वाचिक और कायिक योगों को रोक कर शैलेशी (निष्प्रकम्प) अवस्था को धारण करता है।

जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ।
तया कम्मं खवित्ताणं, सिध्दिं गच्छइ नीरओ॥ २४॥
जया कम्मं खवित्ताणं, सिध्दिं गच्छइ नीरओ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिध्दो हवइ सासओ॥ २५॥

शब्दार्थ- जया जब **जोगे** मन-वचन-काया इन तीन योगों **को निरुंभित्ता** रोक करके **सेलेसिं** शैलेशी अवस्था को **पडिवज्जइ** स्वीकार करता है **तया** तब **कम्मं** भवोपग्राही कर्मों को **खवित्ताणं** खपा करके **नीरओ** कर्मरज से रहित पुरुष **सिद्धिं** मोक्ष में **गच्छइ** जाता है
जया जब **कम्मं** कर्मों को **खवित्ताणं** खपा करके **नीरओ** कर्मरज से रहित **पुरुष सिध्दिं** मोक्ष में **गच्छइ** जाता है **तया** तब **लोगमत्थयत्थो** लोक के ऊपर स्थित **सासओ** सदा शाश्वत **सिध्दो** सिध्द **हवइ** होता है।

—योगों को रोक कर शैलेशी अवस्था को प्राप्त करने से मनुष्य, भवोपग्राही कर्मरज से रहित होकर, मोक्ष में विराजमान होता है और लोक के उपर रहा हुआ सदा शाश्वत सिध्द बन जाता है।

"सुगति दुर्लभ"

सुहसायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स निगामसाइस्स।
उच्छोलणापहोअस्स, दुल्लहा सुगइ तारिसगस्स॥२६॥

शब्दार्थ-सुहसायगस्स शब्दादि विषयों के सुख का स्वाद लेनेवाले **सायाउलगस्स** भावि-सुखों के लिये आकुल **निगामसाइस्स** खा पीकर रात दिन पडे रहनेवाले **उच्छोलणापहोअस्स** विना कारण हाथ, पैर, मुख, दांत आदि अंगोपांगो को धो कर साफ रखने वाले **तारिसगस्स** इस प्रकार जिज्ञासा लोपी **समणस्स** साधु को **सुगइ** सिध्दि गति **दुल्लहा** मिलना कठिन है।

जो साधु साध्वी शब्दादि विषयों के सुखास्वाद में लगे हुए हैं, भावि सुखों के वास्ते आकुल हो रहे हैं, खा-पीकर रात-दिन पडे रहते या फिजूल बातें करके अपने अमूल्य समय को बरबाद कर रहे हैं और विना कारण शोभा के निमित्त हाथ-पैर आदि अंगोपांगों को धो कर साफ रखते हैं उनको सिध्दिगति मिलना अत्यन्त कठिन है।

"सुगति सुलभ"

तवोगुणप्पहाणस्स, उज्जुमइ खंति संजमरयस्स।
परिसहे जिणंतस्स, सुलहा सुगइ तारिसगस्स॥२७॥

शब्दार्थ-तवोगुणप्पहाणस्स छट्ठ, अठ्ठम आदि तपस्याओं के गुण से श्रेष्ठ **उज्जुमइ** मोक्षमार्ग में बुध्दि को लगाने वाले **खंतिसंजमरयस्स** शांति और संयम क्रिया में रक्त **परीसहे** बाईस परिषहों को **जिणंतस्स** जीतने वाले **तारिसगस्स** इस प्रकार जिनाज्ञा के पालन करने वाले साधु को **सुगइ** सिध्दिगति **सुलहा** मिलना सहज है।

जो साधु-साध्वी नाना प्रकार की तपस्याओं को करने में, निष्कपट शान्तिभाव से संयम क्रिया पालन करने में, बाईस परिषहों को जीतने में और जिनेश्वरों की आज्ञा के अनुसार चलने में कटिबध्द हैं उनको सदा शाश्वत सिध्द अवस्था मिलना सहज है।

पच्छा वि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं।
जेसिं पिओ तवो संजमो अ खंति अ बंभचेरं च॥ २८॥

शब्दार्थ-जेसिं जिन पुरुषों के **तवो** बारह प्रकार का तप **अ** और **संजमो** सतरह प्रकार का संयम **अ** तथा **खंति** क्षमा **च** और **बंभचेरं** ब्रह्मचर्य **पिओ** प्रिय है **ते** वे **पच्छा वि** अन्तिम अवस्था में भी **पयाया** संयम-मार्ग में चलते हुए **अमरभवणाइं** देवविमानों को **खिप्पं** जल्दी से **गच्छंति** पाते है।

आखिरी (वृध्द) अवस्था में भी जिन पुरुषों को तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय है, वे संयममार्ग में रहते हुए देवविमानों को अवश्य प्राप्त करते हैं। मतलब यह कि वृध्दावस्था में दीक्षा लें कर उसको अच्छी रीति से पालन करनेवाला पुरुष देवगति में जरूर जाता है।

इच्चेयं छज्जीवणियं, सम्मद्दिट्ठि सया जए।
दुल्लहं लभित्तु सामणं, कम्मुणा न विराहिज्जासि॥ २९॥त्ति बेमि

शब्दार्थ- सया निरन्तर **जए** जयणा रखते हुए **सम्मद्दिट्ठि** सम्यग्दृष्टि पुरुष **दुल्लहं** कठिनता से मिलने वाले **सामणं** चारित्र को **लभित्तु** पा करके **इच्चेयं** इस प्रकार चौथे अध्ययन में कही गई **छज्जीवणियं** षट्कायिक जीवों की **कम्मुणा** मन, वचन, काय इन योग संबन्धी अशुभ क्रिया से **न विराहिज्जासि** विराधना नहीं करे **त्ति** ऐसा **बेमि** मैं अपनी बुध्दि से नहीं, किन्तु तीर्थंकर आदि के उपदेश से कहता हूं।

हमेशा जयणा से रहने वाले सम्यग्दृष्टि पुरुष अत्यन्त दुर्लभ चारित्र-रत्न को पाकर चौथे अध्ययन में बतलाई हुई षड्जीवनिकाय संबन्धी जयणा की मन, वचन, काय से विराधना नहीं करें।

आशय यह है कि- साधु अथवा साध्वी चौथे अध्ययन में कहे अनुसार पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय,वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय इन षड्जीवनिकाय की जयणा खुद रक्खे, दूसरों के पास जयणा रखावे और जयणा रखने वालों को मन-वचन-काय इन तीन योगों से अच्छा समझे, लेकिन षड्जीवनिकाय की किसी प्रकार से विराधना नहीं करें।

आचार्य श्रीशय्यंभवस्वामी फरमाते हैं कि हे मनक ! षड्जीवनिकाय का स्वरुप और उसकी जयणा रखने का उपदेश जैसा भगवान् श्रीमहावीरस्वामी ने सुधर्मास्वामी को और सुधर्मस्वामी ने अन्तिम केवली जम्बूस्वामी को कहा, उसी प्रकार मैं तुझको कहता हूं।

इति षड्जीवनिका नामकचतुर्थमध्ययनं समाप्तम्।

" पंचम अध्ययन उपयोगी शब्दार्थ "

भिक्खकालंमि गोचरी का समय **संपत्ते** हो जाने पर **असंभंतो** असंभ्रान्त **अमुच्छिओ** अमूर्च्छित, **इमेण** इस **कमजोगेण** क्रमशः कही जानेवाली विधि से **गवेसअे** गवेसणा करें ॥१॥ **गोअरग्ग गओ** गोचरी गया हुआ **मंदं** धीमे-धीमे **अणुव्विग्गो** अनुद्विग्न **अव्विक्खित्तेण** अव्याक्षिप्त **चेअसा** मनयुक्त॥२॥ **पुरओ** आगे **जुगमायाअे** साढे तीन हाथ प्रमाण **पेहमाणे** देखता हुआ॥३॥ **ओवायं** खड्डे को **विषम** ऊँची-नीची **खाणूं** स्तंभ **विजलं** पानी रहित **परिवज्जअे** त्याग करें **संकमेण** पानी पर पत्थर या काष्ठ के पटिये पर से **गच्छिज्जा** जाय **विज्जमाणे** विद्यमान हो तो **परक्कमे** दूसरे मार्ग पर जावे ॥४॥ **से** ते **पक्खलंते** स्खलना होने से **हिंसेज्ज** हिंसा करे ॥५॥ **तम्हा** इसलिए **सुसमाहिअे** जिनाज्ञानुसार चलनेवाला **अन्नेण** दूसरे **जयमेव** जयणायुक्त **परक्कमे** चले॥६॥ **इंगालं** अंगारे के, **छारिअं** राख के **राशि** ढेर के **तुस** छिलके **गोमयं** छाण **नइक्कम्मे** उल्लंघन न करे ॥७॥ **वासे** वर्षा **वासंते** बरसते हुए **महियाए** धूम्मस **पडंतिअे** गिरते हुए **संपाइमेसु** संपातिम जीव उड़ते हो तब ॥८॥ **वेस सामंते** वेश्या के घर के आस-पास **अवसाणअे** विनाश की संभावना **विसुत्तिआ** मनोविकार पतन॥९॥ **अणायणे** गोचरी के लिए निषेध घर **अभिक्खणं** बार-बार **वयाणं** व्रतों को **पीला** पीड़ा **संसओ** संशय **सामन्नंमि** श्रमणरुप में॥१०॥ **अस्सिए** जिसने आश्रय किया है॥११॥ **साणं** कुत्ता **सूइयं** प्रसुता **गाविं** गाय को **दित्तं** मदोन्मत्त **गोणं** वृषभ को॥१२॥ **अणुन्नअे** ऊँचे न देखते हुए **नावणए** नीचे न देखते हुए **अप्पडिट्ठे** हर्षित न होते हुए **अणाउले** अनुकुल **जहाभागं** जिस इंद्रिय का जो विषय हो वह॥१३॥ **दवदवस्स** शीघ्रतापूर्वक **उच्चावयं** ऊँच-नीच॥१४॥ **आलोअं** गवाक्ष **थिग्गलं** बारी आदि **दारं** द्वार **संधि** चोर द्वारा बनाया गया छिद्र **दगभवणाणि** पानी का स्थान **विनिज्जाअे** देखें **संकट्ठाणं** शंका के स्थान को॥१५॥ **रण्णो** राजा की **गिहवइणं** गृहपति की **रहस्स** गुप्त बात **आरक्खिआण** कोटवाल की **संकिलेसकरं** अतिक्लेश का स्थान॥१६॥ **पडिकुट्ठं** प्रतिबंध **मामगं** मेरे घर में मत आओ **अचिअत्तं** अप्रीतिकर॥१७॥ **साणी** शण के पर्दे **पावार** कांबल **नाव पंगुरे** खोले नहीं **नोपणुलिज्जा** धक्का न दें॥१८॥ **ओगासं** स्थान **नच्चा** जानकर **अणुन्नविय** आज्ञा लेकर॥१९॥ **णीअ** नीचे द्वार **कुट्ठगं** कोष्ठागार, भंडार भोंयरादि॥२०॥ **अहुणा** अभी **उवलित्तं** लिपा हुआ **उल्लं** लीला, आद्र/भीना **दट्ठुणं** देखकर॥२१॥ **एलगं** बकरा **दारगं** बालक **वच्छगं** बच्चा **उल्लंघिआ** उल्लंघन कर **विउहित्ताण** निकालकर॥२२॥ **असंसत्तं** स्त्री की आंखों से आंखें न मिलाना **पलोइज्जा** अवलोकन करना **नाइदूरावलोअअे** अति दूर न देखना **उप्फुल्लं** विकसित नेत्रों से **न विनिन्झाअे** न देखें **निअट्टिज्ज** पीछे लौट जाय **अयंपिरो** बिना बोले॥२३॥ **मिअं** मर्यादा वाली॥२४॥ **संलोगं** देखना॥२५॥ **आयाणे** लाने का मार्ग॥२६॥ **आहरंती** भिक्षा लानेवाली **सिआ** कदाचित् **परिसाडिज्ज** नीचे गिरा देती **तारिसं** वैसा॥२७॥ **संमद्माणी** मर्दन करती **असंजमकरिं** साधु के लिए जीव हिंसा करने वाली॥२९॥ **साहट्टु** एकत्रित कर **निक्खिवित्ताणं** रखकर **संपणुल्लिआ** अेकत्रित हिलाकर॥३०॥ **ओगाहइत्ता** जलादि में चलना **चलइत्ता** इधर-उधर करके॥३१॥ **पुरेकम्मेण** साधु के लिए पूर्व में धोया हुआ **दव्वीअे** कड़छी से॥३२॥ **कुक्कुस कअे** तुरंत के छोड़े हुए क्रौंच बीज **मट्टिआउसे** मट्टी तथा क्षार से **उक्किट्ठ** बड़े फल **संसट्ठ** खरंटित **लोणे** नमक से **गेरूअ** सोनागेरू **सोरट्ठिअ** फटकड़ी॥३३-३५॥

संसट्ठेण खरंटित **असणीयं** निर्दोष॥३६॥ **छंदं** अभिप्राय **पडिलेहअे** विचार करे॥३७॥ **कालमासिणी** पूर्ण मासवाली **निसन्ना** बैठी हुई **पुणट्ठअे** पुनः उठे॥४०॥ **थणगं** स्तन **पिज्जमाणी** पान करानेवाली **निक्खिवित्तु** रखकर **रोअंतो** रोता हुआ **आहरे** लेकर आये॥४३॥ **उव्वण्णत्थं** तैयार किया हुआ॥४४॥ **निसाअे** दलने के पत्थर से **पीढअेण** काष्ठपीठ से **लोढेण** छोटा पत्थर **विलेवेण** मिट्टी का लेप **सिलेसेण** लाक्षादि पदार्थ से **उब्भिदिउ** लेप आदि दूरकर **दावअे** दाता॥४५-४६॥ **दाणट्ठा** दानार्थ॥४७॥ पुण्णट्ठा पुण्यार्थ॥४९॥ **वणिमट्ठा** भिक्षाचर हेतु॥५१॥ **समणट्ठा** साधु के लिए॥५३॥ **उस्सक्किआ** चूल्हे में काष्ठ डालकर **ओसक्किया** काष्ठ निकालकर **उज्जलिआ** एकबार काष्ठ डालकर **पज्जालिआ** बार-बार काष्ठ डालकर **निव्वाविआ** बुझाकर **उस्सिंचिआ** उभरा आने के भय से थोड़ा अन्न निकालकर **निस्सिंचिआ** पानी का छिटकाव कर **उव्वत्तिआ** दूसरे बर्तन में डालकर **ओयारिया** नीचे उतार कर॥६३-६४॥ **हुज्ज** काष्ठ **संकमट्ठाअे** चलने हेतु **चलाचलं** चलविचल॥६५॥ **निस्सेणिं** निसरणी **पीढं** बाजोट **उस्सवित्ताणं** ऊँचे करके **मंचं** पलंग **कीलं** खीला **पासायं** प्रासाद पर **दुरूहमाणी** दुःखपूर्वक चढती हुई **पवडिज्जा** गिर जाय **लुसअे** टुट जाय **जगे** प्राणी **अेआरिसे** ऐसा॥६७-६९॥ **पलंबं** ताड़ के फल **सन्निरे** पत्र शाक **तुंबागं** तुंबा **सिंगबेरं** अद्रक॥७०॥ **सत्तुचुण्णाइं** सत्तु का चूर्ण **कोल चुण्णाइं** बोर का चूर्ण **आवणे** दुकान **फाणिओ** पतला गुड़ **पूयं** पुडले **विक्कायमाणं** बेचा जाने वाला **पसढं** अधिक दिन का **रअेण** सचित्त रज से **परिफासिअं** खरंटित॥७१-७२॥ **बहुअट्ठिअं** अधिक कठिन बीज वाला **पुग्गलं** सीताफल **अणिमिसं** अनानास **बहुकंटयं** कांटे युक्त **अच्छियं** अस्तिक वृक्ष का फल **तिंदुअं** तिंदुक वृक्ष का फल **बिल्लं** बिल्व **सिंबलिं** शीमला फल **सिया** होवे **उज्जियधम्मिये** त्याज्य॥७३-७४॥ **वारधोअणं** गुड़ के घड़े को धोया हुआ पानी **अदुवा** अथवा, **या संसेइमं** आटे का धोया हुआ पानी **अहुणाधोअं** तुरंत का धोया हुआ पानी, मिश्रण॥७५॥ **चिराधोयं** दीर्घ काल का धोया हुआ पानी **मइअे** सूत्रानुसारी बुद्धि से **भवे** होवे॥७६॥ **अह** अब **भविज्जा** होवे **आसाइत्ताण** चखकर

शेअए निश्चय करे॥७७॥ **आसायणट्ठाअे** चखने के लिए **दलाहि** दो **अच्चंबिलं** अतिखट्टा **पूइं** खराब **नालं** समर्थ नहीं है **विणित्तअे** निवारण हेतु॥७८॥ **अकामेण** बिना इच्छा से **विमणेणं** वैमनस्कता से **पडिच्छियं** ग्रहण किया **अप्पणा** स्वयं **पिबे** पीअे **दावअे** दे, दिरावे॥८०॥ **एगंतं** अेकांत में **अवक्कमित्ता** जाकर **परिठप्प** परठकर॥८१॥ **कुट्टगं** शून्य घर, मठ, **भित्तिमूलं** भींत के पास **अणुन्नवित्तु** गृहस्थ की आज्ञा लेकर **पडिच्छन्नंमि** तृणादि से आच्छादित **संवुडे** उपयोग सहित **संपमज्जिता** अच्छी प्रकार पूंजकर॥८२-८३॥ **अट्ठिओ** कठिन बीज **सक्कर** कंकर **उक्खिवित्तु** उठाकर **निक्खिवे** दूर फेंके **आसअेण** मुख से **न छड्डुअे** न फेंके **गहेऊण** लेकर **अवक्कमे** जावे॥८४-८५॥ **सिज्जमागम्म** उपाश्रय में आकर **सपिंडपायं** शुद्ध भिक्षा लेकर **उंडुअं** भोजन करने के स्थल को॥८७॥ **आयाय** बोलकर॥८८॥ **आभोइत्ता** जानकर **नीसेसं** सभी॥८९॥ **वीसमेज्ज** विश्रांति ले॥९३॥ **हियमट्ठं** हितार्थ **लाभमट्ठिओ** लाभार्थी **अणुग्गहं** प्रसाद, उपकार **तारिओ** तारा हुआ ॥९४॥ **सद्धिं** साथ में॥९५॥ **आलोए भायणे** प्रकाशवाले पात्र में॥९६॥ **अन्नत्थ पउत्तं** देह निर्वाहार्थ॥९७॥ **सूइअं** शाकादि सहित **उल्लं** हरा **सुक्कं** शुष्क **मंथु** बोर चूर्ण **कुम्मास** उड़द के बाकले

उप्पन्नं प्राप्त **नाइ** अधिक नहीं **हीलिज्जा** निंदा **मुहालद्धं** मुधाग्राही **मुहाजीवी** मुधाजीवी॥९९॥ **मुहादाइं** मुधादाता प्रत्युपकार की इच्छा बिना॥१००॥

उद्देश्य दूसरा

पडिग्गहं पात्र को **संलिहित्ताणं** अच्छी प्रकार साफ कर॥१॥ **समावन्नो** रहा हुआ **अयावयट्ठा** संयम के निवीहार्थ **भूच्चाणं** आहार करके **संथरे** निर्वाह होता हो॥२॥ **पुव्वउत्तेणं** पूर्वोक्त **उत्तरेण** आगे कहे अनुसार॥३॥ **सनिवेसं** ग्रामादि **गरिहसि** निंदा करता है॥५॥ **सइकाले** समय होने पर **कुज्जा** करे **सोइज्जा** शोक करे **अहिआसअे** तप हुआ ऐसा चिंतन करे॥६॥ **पाणा** प्राणि **उज्जुअं** सन्मुख॥७॥ **कत्थई** कहीं भी **पबंधिज्जा** करे **कहं** कथा **चिट्ठित्ताण** बैठकर॥८॥ **फलिह** फलक **अवलंबिआ** अवलंबन लेकर॥९॥ **किविणं** कृपण **वणीमगं** दरिद्र **उवसंकमंतं** जाते हुए॥१०-१३॥ **उप्पलं** नीलकमल **पउमं** रक्तकमल **कुमुअं** कुमुद **मगदंतिअं** मोगरा **संलुंचिया** छेदकर **संमद्दिआ** मर्दन कर॥१४-१७॥ **सालुअं** कमलकंद **विरालिअं** पलाशकंद **नालिअं** नाल **मुणालिअं** कमल के तंतु **सासव** सरसव **तरूणगं** तरूण, नये **अनिव्वुडं** अपरिणत **पवालं** प्रवाल **रूक्खस्स** वृक्ष का॥१९॥**तरूणिअं** बिना दाने का **छिवाडिं** मुंग की फली **भज्जिअं** पकाई हुई मिश्र॥२०॥ **कोलं** बोर **अणुसिन्नं** न पकाया हो **वेलुअं** वंसकोरेला **कासवनालिअं** सीवणवृक्ष का फल **पप्पडगं** पापड़ी॥२१॥ **विअडं** कच्चा जल **तत्तनिव्वुडं** तीन उकाले बिना का जल **पूइ पिन्नागं** सरसव का खोल॥२२॥ **कविट्ठं** कोठफल, **माउलिंगं** बीजोरा फल, **मूलगं** मूला के अंग **मूलगत्तिअं** मूला का कंद **न पत्थअे** न मांगे **फलमंथूणि** बोर चूर्ण **बिअ मंथूणि** जवादि का आटा **बिहेलगं** बहेड़ा का फल **पियालं** चारोली के फल। २४। **समुआणं** शुध्दभिक्षा हेतु **उसढं** धनाढ्य **नाभिधारअे** जावे नहीं॥२५॥ **अेसिज्जा** गवेषणा करे **विसीइज्ज** खेद करना **मायण्णे** मात्रज्ञ॥२६॥ **पच्चक्खे** प्रत्यक्ष॥२८॥ **डहरं** युवान **महल्लगं** बड़े **वंदमाणं** वंदनकर्ता को **जाइज्जा** याचना **अणं** उसको **फरूसं** कठोर ॥२९॥ **समुक्कसे** गर्व न करे **अन्नेसमाणस्स** जिनाज्ञा पालक **अणुचिट्ठइ** पाला जाना॥३०॥ **विणिगुहइ** छुपाना **मामेयं** मेरा यह **दाइअं** बताया **आयअे** ग्रहण करेगा **अत्तट्ठा** स्वयं का स्वार्थ **गुरूओ** बड़ा **दुत्तोसओ** जैसे-तैसे आहार से संतोषित न होने वाला॥३२॥ **भद्दगं** अच्छा **विवन्नं** वर्णरहित **आहरे** लावे॥३३॥ **जाणंतुं** जाने **ता** प्रथम **इमे** यह **आययट्ठी** आत्मार्थी **अयं** यह **लहुवित्ती**-रूक्ष वृत्ति युक्त **सुतोसओ** अति संतोषी॥३४॥ **पसवई** उत्पन्न करे॥३५॥ **सुरं** मदिरा **मेरगं** महुए का दारू **मज्जगं** मादक **ससक्खं** साक्षी सहित **सारक्खं** संरक्षण॥३६॥ **पीयअे** पीता है **तेणो** चोर **पस्सह** देखो **निअडिं** माया को॥३७॥ **सुंडिआ** आसक्ति **अनिव्वाणं** अशांति **असाहुआ** असाधुता॥३८॥ **निच्चुविग्गो** नित्य उव्दिग्न **अत्तकम्मेहिं** स्वकर्म से॥३९॥ **आवि भी ण** इसकी॥४०॥ **अगुणप्पे ही** अवगुण के स्थान को देखनेवाला॥४१॥ **अत्थ संजुत्तं** मोक्षार्थ युक्त॥४३॥ **वयतेणे** वचन चोर॥४४॥ **अेल** बकरा **मूअगं** मूकपना॥४८॥ **अणुमायं** अणुमात्र॥४९॥ **भिक्खेसण सोहिं** आहार गवेषणा की शुद्धि **सुप्पणिहिइंदिअे** समता भाव से पांच इन्द्रियों को विषय विकार से रोक दी है **तिव्व लज्ज** अनाचार करने में तीव्र लज्जायुक्त **गुणवं** गुणवान् **विहरिज्जासि** तुम विचरना॥५०॥

पिंडेसणा नामक पंचम अध्ययन प्रथम उद्देश्य

संबंध

चतुर्थ अध्ययन में षट्जीवनिकाय का स्वरुप बताया है। षट्जीवनिकाय की रक्षा करने का उपदेश दिया है। षट्जीवनिकाय की रक्षा में मुख्य साधन देह है। देह की सुरक्षा का मुख्य साधन निर्दोष गोचरी है। सदोष गोचरी से देह की सुरक्षा होगी तो षड्जीवनिकाय की विराधना होगी। अतः निर्दोष गोचरी हेतु पिण्डैषणा अध्ययन तीर्थंकरआदि भगवंतो ने प्ररुपित किया है। जिस में मुनि भगवंतों के एषणा समिति के पालन का विधान दर्शाया है।

"मुनि कैसे चलें?"

संपत्ते भिक्खकालंमि. असंभतो अमुच्छिओ।
इमेण कम्मजोगेण, भत्तपाणं-गवेसओ॥ १॥

मुनि भिक्षा का समय हो जाने पर असंभ्रात (अनाकुल) अमूर्च्छित अनासक्त रहते हुए आगे के श्लोकों में कहे जाने वाले क्रम योग से (विधि से) आहार पानी की गवेषणा करे॥ १॥

से गामे वा नगरे वा गोअरग्ग-गओ मुणी।
चरे मंदमणुव्विग्गो, अव्विक्खित्तेण चे असा॥ २॥

ग्राम या नगर में भिक्षाचर्या हेतु मुनि को धीरे-धीरे अव्यग्रतापूर्वक एवं अव्याक्षिप्त चित्त पूर्वक चलना चाहिये॥ २॥

पूरओ जगुमायाओ पेहमाणो महिं चरे।
वज्जंतो बीअहरिआइं पाणे अ दगमट्टिअं॥ ३॥

बीज, हरित्काय, जल, एवं सचित मिट्टी आदि जीवों को बचाते हुए साढ़े तीन हाथ प्रमाण आगे की भूमि को देखते हुए मुनि उपयोग पूर्वक चले॥ ३॥

ओवायं विसमं खाणु,विजलं परिवज्जओ।
संकमेण न गच्छेज्जा, विज्जमाणे परक्कमे॥ ४॥

चलते हुए मार्ग में खड्डे, स्तंभ, बिना पानी का किच्चड़ हो नदी आदि को पार करने के लिए पत्थर काष्ठ आदि रक्खा हो ऐसे प्रसंग पर दूसरा योग्य मार्ग मिल जाय तो उस मार्ग से साधु न जाय।४। कारण दर्शाते हुए आगे कहा है:

पवडंते व से तत्थ, पक्खलंते व संजओ।
हिंसेज्ज पाणभूआइं तसे अदुव थावरे॥ ५॥

ऐसे मार्ग पर चलते हुए साधु गिर जाय या स्खलित हो जाय तो त्रस स्थावर जीवों की विराधना हो जाती है, और स्वयं के अंगोपांगों को चोंट पहुँचने की संभावना है। इस प्रकार उभय विराधना है॥ ५॥

तम्हा तेण न गच्छिज्जा, संजओ सुसमाहिओ।
सइ अन्नेण मग्गेण, जयमेव परक्कमे॥ ६॥

इस कारण से समाधियुक्त जिनाज्ञा पालक साधु को जब तक शास्त्रोक्त मार्ग मिल रहा हो तब तक ऐसे मार्ग पर न चले, जो दूसरा मार्ग न मिले तो जयणा पूर्वक चले॥ ६॥

इंगालं छारिअं रासिं तुसरासिं च गोमयं,।
ससरक्खेहिं पाओहिं, संजओ तं नइक्कमे॥ ७॥

सुसाधु मार्ग में चलते हुए अंगारों के, राख के, छिलकों के, गोबर के समूह पर सचित रज युक्त पैर से न चले॥ ७॥

न चरेज्ज वासे वासंते, महिलाओ व पडंतिओ।
महावाओ व वायंते तिरिच्छ-संपाइमे सु वा॥ ८॥

वर्षा हो रही हो, धुम्मस हो, वेगयुक्त वायु हो, रज उड़ रही हो, एवं संपातिम त्रसजीव उड़ रहे हो तो साधु गोचरी न जाए, जाने के बाद ऐसा हुआ हो तो योग्य स्थल पर रुक जाए॥ ८॥

किस मार्ग से न जाए?

न चरेज्ज वेस-सामंते . बंभचेर -वसाणु (ण) ओ
बंभयारिस्स दंतस्स, हुज्जा तत्थ विसुत्तिआ॥ ९॥
अणायाणे चरंतस्स, संसग्गीओ अभिक्खणं।
हुज्ज वयाणं पीला, सामन्नंमि अ संसओ॥ १०॥
तम्हा ओ अं विआणित्ता, दोसं दुग्गइ-वड्ढणं।
वज्जओ वेस- सामंतं, मुणी ओगंत-मस्सिओ॥ ११॥

सर्वोत्तम व्रत की रक्षा के लिए सूचना करते हुए सूत्रकार श्री कह रहे हैं कि- जहां ब्रह्मचर्य के नाश का संभव है, ऐसे वेश्यादि के गृह की ओर साधु को गोचरी के लिए नहीं जाना चाहिए वहां जाने से उनके रुप-दर्शन के साथ उनकी कामोत्तेजक वेश भूषादि के कारण इंद्रियों का दमन करनेवाले ब्रह्मचारी के मन में विकार उत्पन्न हो सकता है॥ ९॥

बार-बार वेश्यादि के रहने के स्थानों की ओर गोचरी जाने से उनकी ओर बार-बार नजर जायगी, कभी उनसे वार्तालाप रुप संसर्ग होगा, उससे महाव्रत में अतिचार लगेगा (कभी महाव्रत का भंग भी हो जाता है), लोगों में उसके चारित्र के विषय में शंकाएँ उत्पन्न होंगी॥ १०॥

इस कारण मोक्ष की एकमेव आराधना करनेवाले मुनि भगवंत दुर्गति वर्धक इस दोष को समझकर वेश्यादि ऐसी स्त्रियाँ जहाँ रहती हो उस ओर गोचरी हेतु न जाए उन स्थानों का त्याग कर दे॥ ११॥

टी.वी. वीडियों, अंग प्रदर्शन एवं अर्द्धनग्नावस्था जैसे वस्त्र परिधान के युग में मुनि भगवंतों को गोचरी के लिए जाते समय अत्यंत अप्रमत्तावस्था की आवश्यकता का दिग्दर्शन ऊपर के तीन श्लोकों से हो रहा है ज्ञान-वय-एवं व्रत पर्याय से अपरिपक्व मुनियों को गोचरी जाते समय, गोचरी भेजते समय ऊपर के तीन श्लोकों के रहस्य को विचाराधीन रखना आवश्यक है।

इन तीन श्लोकों के शब्दार्थ को न देखकर उसके अंदर रहे हुए रहस्य को समझना आवश्यक है।

आज कितने ही मुनियों के भाव प्राणों का विनाश हो रहा है, अधःपतन हो रहा है एवं महाव्रतों

का सर्वनाश होकर संसारी अवस्था प्राप्त कर रहे हैं उसके पीछे मूल कारण है इन तीन श्लोकों के रहस्यार्थ की ओर दुर्लक्ष्य।

सद्गुरु भगवंतों से इन तीन श्लोकों के रहस्यार्थ को समझकर जीवन यापन करने वाला गोचरी जानेवाला मुनि शास्त्रोक्त/आगमोक्त रीति से चारित्र पालन कर सकेगा।

साणं सूयं गाविं, दित्तं गोणं हयं गयं।
संडिब्भं कलहं जुद्धं, दूरओ परिवज्जए॥ १२ ॥

गोचरी के लिए मार्ग में चलते समय श्वान, प्रसुता गौ (गाय), मदयुक्त वृषभ, अश्व, हस्ती, बालकों के क्रीड़ा का स्थान, इनको दूर से छोड़ देने चाहिये। अर्थात् ऐसे मार्ग पर से साधु को गोचरी नहीं जाना चाहिये। १२॥

" मुनि कैसे चलें"

अणुन्नए नावणए अप्पहिट्ठे अणाउले।
इंदिआइं जहाभागं दमइत्ता मुणी चरे॥ १३॥

मार्ग में जाते हुए साधुओं को ऊँचे, नीचे न देखना, स्निग्धादि गोचरी की प्राप्ति से हर्षित न बनना, न मिलने पर क्रोधादि से आकुल, व्याकुल न होना, स्वयं की इंद्रियों को अपने अधीन रखकर चलना॥ १३॥

दवदवस्स न गच्छेज्जा, भासमाणो अ गोअरे।
हसंतो नाभिगच्छिज्जा, कुलं उच्चावयं सया॥ १४॥

ऐश्वर्यादि की दृष्टि से ऊँच, नीच, मध्यम कुलों में गोचरी जाते समय शीघ्रतापूर्वक न चलना, भाषा का प्रयोग करते हुए न चलना, हंसते हुए भी नहीं चलना।

"क्या न देखें"

आलोअं थिग्गलं दारं, संधिं दगभवणाणि अ।
चरंतो न विनिज्झाए, संक-ट्ठाणं विवज्जए॥ १५॥

गोचरी हेतु गए हुए साधु को गृहस्थों के घर के वेंटीलेशन, बारी, द्वार (कमरे के द्वार आदि), चोर के द्वारा बनाए गए छेद, दीवार के भाग को , पानी रखने के स्थान को, इन स्थानों की ओर दृष्टि लगा कर नहीं देखना क्योंकि ये सब शंका के स्थान है। वर्तमान युग में बाथरुम, लेट्रीन,टी.वी.,वीडियो रखने के स्थान की ओर नजर न जाए इसका पूर्ण ध्यान रखना चाहिये।

रन्नो गिहवइणं च रहस्सा-रक्खिआण य।
संकिलेसकरं ठाणं दूर ओ परिवज्जए॥ १६॥

गोचरी गये हुए मुनि को राजा, गाथापति, ग्राम संरक्षक आदि नेताओं के गुप्त स्थल की ओर न देखना, न जाना एवं क्लेश कारक स्थानों का दूर से त्याग कर देना चाहिये। इस श्लोक में दर्शित स्थानों का दूर से त्याग न करे तो साधु विपत्तियों को आमंत्रण दे देता है। १६।

कैसे घरों में प्रवेश नहीं करें?

पडिकुट्ठकुलं न पविसे, मामग परिवज्जअे।
अचिअत्तं कुलं न पविसे चिअत्तं पविसे कुलं॥ १७॥

सूतक युक्त गृह, अस्पृश्य जाति के गृह, गृहपति द्वारा निषेध किये हुए घर, अप्रीति वाले घर इन घरों में गोचरी आदि के लिए मुनि प्रवेश न करें।

लोकनिंदा एवं शासन की अवहेलना के प्रसंग उपस्थित होने की संभावना के कारण ऐसे घरों में साधुगोचरी न जाए एवं इनके अलावा आगमोक्त सभी घरों में गोचरी जाय॥ १७॥

साणी-पावर-पिहिअं,अप्पणा नाव पंगुरे।
कवाडं नो पणोल्लेजा, ओग्गहंसि अजाइआ॥ १८॥

आगाढ कारण से गृहपति से अवग्रह की याचना किये बिना,अविधिपूर्वक, धर्म लाभ का शब्दोचार किये बिना,ताड़पत्री,कंतान,वस्त्र आदि से आच्छादित घर के द्वार, लकड़ी के द्वार,लोहे की जाली आदि से बंद द्वार खोलना नहीं,धक्का देकर खोलना नहीं॥ १८॥

इससे यह सिद्ध होता है कि गृहस्थ के घर में उनकी अनुमति प्राप्त किये बिना मुनि प्रवेश नहीं कर सकता।

"देह रक्षा हेतु उपयोगी विधान"

गोअरग्ग-पविट्ठो अ, वच्च मुत्त न धारअे।
ओगासं फासुअं नच्चा,अणुन्नविअ वोसिरे॥ १९॥

मूलमार्ग से तो गोचरी जाने के पूर्व लघुशंका बड़ीशंका का निवारण करना चाहिये।फिरभी शारीरिक कारणों से गोचरी जाने के बाद शंका हो जाय तो सूत्रकार कहते हैं कि=बड़ी नीति, लघुनीति की शंका को रोकना नहीं।गृहस्थ की आज्ञा लेकर निर्जीव भूमि पर शंका का निवारण करना, वोसिराना चाहिये। १९।

सूत्रकार श्री ने साधुओं के आरोग्य को सुरक्षित रखने की दृष्टि से यह आदेश दिया है।लघुनीति, बड़ीनीति की शंका को रोकने से अजीर्ण का रोग उद्भव होता है "अजीर्णे प्रभवा रोगा:" अजीर्ण अनेक रोगों का जन्मस्थान है।

प्रवेश कैसे करें?

नीअ-दुवारं तमसं,कोट्ठगं परिवज्जअे।
अचक्खुविसओ पाणा दुप्पडिलेहगा॥ २०॥

जहां जिस घर का द्वार अति नीचे हो,झुक कर जाना पड़ता हो,अंधकार युक्त कोठार,भूमिगत (भाग) स्थान, कमरा आदि हो, वहां साधु गोचरी न जाय, कारण बताते हुए कहा कि (आँख) चक्षु से पूर्णरुप से पदार्थ दिखाई न दे, त्रसादिजीवों की जयणा न हो सके, इर्यासमिति का पूर्ण पालन न हो सके द्वार नीचा होने से कहीं चोंट लगना भी संभव है॥ २०॥

जत्थ पुप्फाइं बीआइं, विप्पइन्नाइं कोट्ठ अे।
अहुणोवलित्तं उल्लं,दट्ठूणं परिवज्जए॥ २१॥

एलगं दारगं साणं, वच्चगं वा वि कुट्ठए।
उल्लंघिआ न पविसे,विउहित्ताणु व संज ए॥ २२॥

जिस घर के द्वार में पुष्प, बीजादि बिखरे हुए हो, धान्य के दाने हो, तुरंत का लीपन आदि किया हो तो उस घर में, एवं एलग, बालक, श्वान, बछड़ा आदि बैठा हुआ हो तो उसका उल्लंघन कर, उसको निकालकर या उसे उठाकर उस घर में प्रवेश न करें।गोचरी आदि हेतु न जाएं। २१/२२।

वर्त्तमान युग में अधिकांश से लींपन के स्थान पर फर्श धोने की प्रथा विशेष है अत: फर्श पानी से भिगी हुई हो तो प्रवेश न करें।तुरंत पोता किया हुआ हो तो अंदर न जाएं।

असंसत्तं पलोइज्जा, नाइदूरावलोअओ।
उप्फुल्लं न विनिज्झाओ,निअट्टिज्ज अयंपिरो॥ २३॥
अइभूमिं न गच्छेज्जा,गोअरग्ग-गओ मुणी।
कुलस्स भूमिं जाणित्ता, मिअं भूमिं परक्कमे॥ २४॥
तत्थेव पडिलेहिज्जा, भूमि. भागं विअक्खणो।
सिणाणस्स य वच्चस्स संलोगं परिवज्जओ ॥ २५॥

गृहस्थ के घर में गोचरी वहोरते समय साधु को किस प्रकार रहना चाहिये उसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि -स्त्री जाति पर आसक्ति भाव न लाकर स्वयं के कार्य का अवलोकन करना, घर में अति लम्बी नजर न करना, घर के लोगों को विकस्वर नजरों से न देखना,आहारादि न मिले तो दीन वचन नहीं बोलकर लौट जाना चाहिए॥ २३॥

मुनि को उत्तम कुल की नियमित भूमि की मर्यादा को जानकर गृहस्थ की अनुमति लेकर उतनी ही भूमि तक जाना। आगे जाना नहीं चाहिये॥ २४॥

मर्यादा युक्त भूमि तक गए हुए मुनि को भूमि का दृष्टि पडिलेहन के बाद खड़े रहते समय स्नानागार या बड़ीनीति का स्थान (बाथरुम या लेट्रीन) देखने में आते हो तो उस स्थान से शीघ्र दूर हो जाय।स्व पर भाव प्राणों की सुरक्षा हेतु इन नियमों का पालन अतीव आवश्यक है॥ २५॥

दग-मट्टिअ-आयाणे,बीयाणि हरिआणि अ।
परिवज्जंतो चिट्ठिज्जा,सव्विंदिअ-समाहिओ॥ २६॥

जल एवं मिट्टी लाने के मार्ग को एवं वनस्पति के स्थान को छोड़कर, सभी इंद्रियों को समभाव में रखकर खड़ा रहना चाहिये॥ २६॥

"कल्प्याकल्प्य विचार"

तत्थ से चिट्ठमाणस्स,आहारे पाण-भोअणं।
अकप्पिअं न गेण्हिज्जा,पडिगाहिज्ज कप्पिअं॥ २७॥
आहरंति सिअ तत्थ, परिसाडिज्ज भोयणं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥ २८॥
संमद्माणी पाणाणि,बीआणि हरिआणिअ।

असंजमकरिं नच्चा,तारिसिं परिवज्जअे॥ २९॥
साहट्टु निक्खिवित्ताणं,सचित्तं घट्टि आणि अ।
तहेव समणट्टणाअे, उदगं संपणुल्लिआ॥ ३०॥
ओगाहइत्ता चलइत्ता, आहरे पाण-भोअणं।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ ३१॥
पुरे कम्मेण हत्थेण, दव्वीअे भायणेण वा।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ ३२॥

गोचरी वहोरने की विधि का विधान करते हुए सूत्रकार श्री कह रहे हैं कि - उस-उस कुल मर्यादा के उचित स्थान पर खड़े रहे हुए साधु को, गृहस्थ द्वारा लाये हुए आहार पानी में से अकल्प्य ग्रहण न कर कल्प्य हो वही लेना ॥ २६॥

कल्प्य अकल्प्य की व्याख्या दर्शाते हुए कहा है कि

भूमि पर इधर-उधर दाने आदि गिराते हुए लाते हों तो, बीज, हरी वनस्पति आदि को दबाती हुई, मर्दन करती हुई लाती हो तो साधु के लिए असंयम का कारण होने से, अकल्पनीय है ऐसा कहकर ग्रहण न करना॥ २८-२९॥

दूसरे बर्तन में निकालकर दे, नहीं देने लायक बर्तन में रहे हुए पदार्थ को सचित्त पदार्थ में रखकर दें, सचित्त का संघटन कर दे, साधु के लिए पानी को इधर-उधर कर के दे॥ ३०॥

वर्षाकाल में गृहांगण में रहे हुए सचित्त पानी में से होकर आहार लाकर वहोरावे, सचित्त जल को बाहर निकालकर आहार वहोरावे, साधु को आहार वहोराने हेतु हस्त, चम्मच, बर्तन आदि धोने रूप पुरस्कर्म कर आहार वहोरावे, ऊपर दर्शित रीति से आहार वहोराने वाले को साधु स्पष्ट कहे कि इस प्रकार का आहार हमारे लिए अकल्प्य है।हमें लेना नही कल्पता ॥ ३१॥ ३२॥

(अेवं) उदउल्ले ससिणिद्धे, ससरक्खे मट्टिआ उसे ।
हरिआले हिंगुलअे, मणोसिला अंजणे लोणे॥ ३३॥
गेरूअ वन्निअ सेरिअ-सोट्टिअ पिट्ट कुक्कुसकअेअ।
उक्किट्ठ-मसंसट्ठे, संसट्ठे चेव बोद्धव्वे॥३४॥
असंसट्ठेण हत्थेण, दव्वीअे भायणेण वा।
दिज्जमाणं न इच्छिज्जा, पच्छाकम्मं जहिंभवे॥ ३५॥

इस प्रकार हाथ से जल झर रहा हो, जलार्द्र हो, सचित्त रज युक्त हो, किचड़ युक्त हो, क्षार युक्त हो एवं हरताल हींगलो/मणसिल, अंजन, नमक, गेरू, पीलीमिट्टी खड़ी, फटकड़ी, तुरंत का गेहुं आदि का लोट, क्रौंच बीज, कलींगर आदि फल, शाक आदि से खरंटित हाथ से, या न खरंटित हाथ, चम्मच आदि साधु के लिए सब्जी आदि में रखकर उससे आहार वहोरावे तो न ले। पश्चात् कर्म नामक दोष के कारण॥३३। ३४। ३५॥

संसट्ठेण य हत्थेण, दव्वीअे भायणेण वा।
दिज्जमाणं पडिच्छिज्जा, जं तत्थेसणिअं भवे॥ ३६॥

जो आहार पानी निर्दोष हो तो, अन्नादि से लिप्त हाथ, चम्मच या अन्य बर्तन में लेकर दे तो ग्रहण करना। पूर्वकर्म एवं पश्चात्कर्म न लगे इस प्रकार आहार ग्रहण करना।

दुण्हं तु भुंजमाणाणं, एगो तत्थ निमंतओ।
दिज्जमाणं न इच्छिज्जा, छंदंसे पडिलेहओ॥ ३७॥
दुण्हं तु भुंजमाणाणं, दोवितत्थ निमंतओ।
दिज्जमाणं पडिच्छिज्जा, जं तत्थेसणिअंभवे॥ ३८॥

पदार्थ के दो मालिक में से एक निमंत्रण करे और दूसरे के नेत्र विकारादि से वहोराने के भाव दिखाई न दे तो न ले। दोनों के वहोराने के भाव हो और आहार निर्दोष हो तो ग्रहण करें।

इन दो श्लोकों से यह स्पष्ट हो रहा है कि पदार्थ के मालिक भावपूर्वक वहोराने पर भी वह पदार्थ निर्दोष न हो तो ग्रहण नहीं करना चाहिये। केवल वहोराने वाले के भाव ही नहीं देखने हैं, पदार्थ की निर्दोषता भी देखना आवश्यक है।

गुव्विणी ओ उवण्णत्थं विविहं पाण भोअणं।
भुंजमाणं विवज्जिज्जा, भुत्तसेसं पडिच्छओ॥ ३९॥
सिआ य समणट्ठाओ, गुव्विणी कालमासीणी।
उट्ठि आ वा निसीइज्जा, निसन्ना वा पुणट्ठाओ॥ ४०॥
तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥ ४१॥

गर्भवती स्त्री के लिए विविध भोजन तैयार किये हुए हो वह आहार न ले पर उसके खाने के बाद अधिक हो तो ग्रहण कर सकता है॥ ३९॥

कभी पूर्ण मासवाली अर्थात नौंवे महिनेवाली गर्भवती स्त्री साधु को वहोराने के लिए खड़ी हो तो बैठ जाय या बैठी हो तो खड़ी हो जाय तो उसके हाथ से आहार लेना न कल्पे॥ ४०॥(परन्तु वह बैठी हो उसके पास आहार/पदार्थ हो और बैठी-बैठी वहोराये तो लेना कल्पे)

गर्भवती का भोजन एवं गर्भवती द्वारा दिये जाने वाले आहार के लिए साधु निषेध करे कि ऐसा आहार लेना हमें नहीं कल्पता॥ ४१॥

थणगं पिज्जेमाणी दारगं वा कुमारिअं।
तं निक्खिवितुं रोअतं, आहरे पाणभोअणं॥ ४२॥
तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥४३॥
जं भवे भत्तापाणं तु कप्पाकप्पंमि संकिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥४४॥
दगवारेण पिहिअं, नीसाओ पीढओण वा।
लोढेण वा वि लेवेण, सिलेसेण व केणइ॥ ४५॥
तं च उब्भिंदिउं दिज्जा समणट्ठाओ व दावओ।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ ४६॥

स्तन पान करवाती हुई माता बालक को छोड़ कर वहोराये तो, आहार पानी निर्दोष है या सदोष ऐसा शंकायुक्त आहारादि वहोरावे तो जो आहार पानी, पानी के घड़े से चटनी आदि जिस पत्थर पर लोढी जाती है, उस पत्थर से काष्ठ पीठ से, चटनी जिससे बनाई जाती है, उस शीला पुत्र केण अर्थात उस छोटे शीलाखंड से, मिट्टी, लाक्ष आदि के लेप से ढंके हुए, बंध किये हुये बर्तन से ढक्कन आदि दूर कर लेप आदि निकालकर वहोरावे तो मुनि मना करे कि मुझे ऐसा आहार नहीं कल्पता॥ ४२ से ४६॥

असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा।
जं जाणिज्ज सुणिज्जावा, दाणट्ठा पगडं इमं॥ ४७॥
तं भवे भत्त- पाणं तु, संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिस्सं॥ ४८॥
असणं पाणगं वा वि, खाइमं, साइमं तहा।
जं जाणिज सुणिज्जावा, पुण्णट्ठा पगडं इमं॥ ४९॥
तं भवे भत्त- पाणं तु, संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ ५०॥
असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा।
जं जाविज सुणिज्जा वा, वणिमट्ठा पगडं इमं॥ ५१॥
तं भवे भत्त- पाणं तु, संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ ५२॥
असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा।
जं जाणिज सुणिज्जा वा, समणट्ठा पगडं इमं॥ ५३॥
तं भवे भत्त- पाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ ५४॥

स्वयं ने जान लिया हो, सुन लिया हो कि गृहस्थ ने अशन, पान खादिम स्वादिम रुप चारों प्रकार का आहार दान देनेके लिए, पुण्य के लिए, भिक्षाचरों के लिए, या श्रमण भगवंतों के लिए बनाया है तो वहोराने वाले को कह दे कि यह आहार अकल्पनीय होने से हमे नहीं कल्पता॥ ४७ से ५४॥

उद्देसिअं की अगडं पुइकम्मं च आहडं।
अज्झोयर पामिच्चं, मीसजाय विविज्जअे॥ ५५॥

मुनिओं को वहोराने के उद्देश्य से बनाया हो, खरीद कर लाया हो, शुद्ध आहार में आधाकर्मादि आहार का संमिश्रण किया हो, सामने लाया हुआ हो, साधुओं को आये जानकर बनते हुए आहार में

वृद्धि की गई हो ऐसा आहार, एवं वहोराने के लिए मांग कर लाया हो, अदलबदल कर लाया हो उधार लाया हो, साधु श्रावक दोनों के लिए मिश्ररुप में बनाया हो तो ऐसा आहार मुनि को छोड़ देना चाहिये। ग्रहण न करना॥ ५५॥

उग्गमं से अ पुच्छिज्जा, कस्सट्ठा केण वा-कडं।
सुच्चा निस्संकिअं सुद्धं, पडिगाहिज्ज संज्जअे॥५६॥

आहार की निर्दोषता, सदोषता हेतु गृहस्थ से प्रश्न करे कि यह आहार किसके लिए और किसने बनाया है। उसका प्रत्युत्तर संतोषजनक हो एवं, निर्दोषता सिद्ध होती हो वह आहार ग्रहण करना।५६।

असणं पाणगं वा वि खाइमं साइमं तहा।
पुप्फेसु हुज्ज उम्मीसं, बीअेसु हरिअेसु वा॥५७॥
तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥५८॥
असणं पाणगं वा वि खाइमं साइमं तहा।
उदगंमि हुज्ज निक्खित्तं, उत्तिंग- पणगेसु वा॥५९॥
तं भवे भत्त- पाणं तु, संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥६०॥
असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा।
तेउम्मि हुज्ज निक्खित्तं, तं च संघट्टिआ दअे॥६१॥
तं भवे पत्त- पाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥६२॥
अे वं उस्सक्किआ ओसक्किआ उज्जालिआ पज्जालिआ निव्वाविआ।
उस्सिंचिआ निस्सिंचिआ, उव्वत्तिआ ओयारिआ दअे॥६३॥
तं भवे भत्त पाणं तु, संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥६४॥

चारों प्रकार का आहार पुष्प-बीज आदि हरी वनस्पति से मिश्र हो, सचित्त जल पर हो, चिंटिओं के दर पर हो, अग्नि पर , एवं अग्नि से संघट्टित हो, अग्नि में काष्ठ डालते हुए, निकालते हुए एक बार या बार-बार ऐसा करते हुए, बुझाते हुए, एक बार या बार-बार काष्ट आदि चूल्हे में डालते हुए, अग्नि पर से कुछ अनाज निकालते हुए, पानी आदि का छिटकाव करते हुए, अग्नि पर रहे हुए आहारादि को अन्य पात्र में लेकर वहोराये या वही बर्तन नीचे लेकर वहोराये अर्थात् सचित्त जल, अग्नि, त्रस काय एवं वनस्पति की किसी भी प्रकार से विराधना करते हुए वहोराये अथवा उपलक्षण से पृथ्वीकाय एवं

वाउकाय की विराधना कर वहोराये तो साधु, कह दे कि यह आहार हमें नहीं कल्पता॥ ५७से ६४॥

हुज्ज कट्ठं सिलं वा वि इट्टालं वा वि अेगया।
ठविअं संकमट्ठाअे तं च होज्ज चलाचलं॥ ६५॥

चातुर्मास में या अन्य दिनों में भी पानी भराव वाले स्थान पर चलने के लिए काष्ठ, पत्थर की शीला या ईट के टुकड़े आदि रक्खे हो, वे अस्थिर हो तो उस मार्ग पर साधु भगवंतो को चलना नहीं॥ ६५। कारण दर्शाते हुए कहा है कि :-

न तेण भिक्खु गच्छिज्जा, दिट्ठो तत्थ असंजमो।
गंभीरं झूसिरं चे व, सव्विंदिअ- समाहिअे॥ ६६॥

ऊपर दर्शित मार्ग पर चलने से चारित्र विराधना होती है ऐसा जिनेश्वरों ने देखा है। और शब्दादि विषयों में समाधि युक्त मुनि को अंधकार में रहे हुए और अंदर पोकल (खोखला) ऐसे काष्ठ आदि पर भी नहीं चलना॥ ६६॥

निस्सेणिं फलगं पीढं उस्सवित्ताण- मारुहे।
मं चं कीलं च पासायं समणट्ठा अेव दावअे॥ ६७॥
दुरुह माणी पवडिज्जा, हत्थं पायं व लूसअे।
पुढवि जीवे वि हिंसिज्जा, जे अ तन्निस्सिआ जगे॥ ६८॥
अेयारिसे महादोसे, जाणिऊण महेसिणो।
तम्हा मालोहडं भिक्खं, न पडिगिण्हंति संजया॥ ६९॥

साधु को दान देने हेतु दाता ऊपर चढने के लिए या ऊपर से पदार्थ लेने के लिए, नीसरणी, टेबल, पटीया, खूंटी आदि के सहारे से चढे और कभी गिर जाय हाथ, पैर टूट जाय, चोंट लग जाय उस स्थान पर रहे हुए पृथ्वीकायादि जीवों की विराधना होने का संभव होने से महापुरुष ऐसे महादोषों को बताकर मालापहृत आहार ग्रहण नहीं करते॥ ६७ से ६९॥

कंद मूलं पलंबं वा आमं छिन्नं व सन्निरं।
तुंबागं सिंगबेरं च, आमगं परिवज्जअे॥ ७०॥
तहे व सत्तु-चुण्णाइं, कोल-चूण्णाइं आवणे।
सक्कुलिं फालिअं पूअं, अन्नं वा वि तहाविहं॥ ७१॥
विक्कायमाणं पसढं रअेणं परिफासिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ ७२॥
बहुअट्ठिअं पुग्गलं, अणिमिसं वा बहुकंटयं।
अत्थियं तिंदुयं बिल्लं, उच्छुखंडं व सिंवलिं॥ ७३॥

अप्पेसिआ भोअणज्जाओ, बहुउज्झिय धम्मिओ।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तादिसं॥७४॥

सूरणादि कंद, मूल, ताल आदि फल, सचित छेदन किया हुआ पत्रादि सब्जी, तुंब (दुधी) अद्रक आदि सचित पदार्थ, उसी प्रकार साथवा का चूर्ण, बोर का चूर्ण, तिलपापड़ी, नरम गुड़, पुड़ले और दूसरा भी उसी प्रकार का बाजारु पदार्थ, अनेक दिनों का रक्खा हुआ, सचित रज से युक्त, जिसमें खाना थोड़ा फेंकना अधिक जैसे सीताफल आदि, अनानास नामक फल, अधिक कार्टेदार फल, अस्थिक फल, तिंदुक फल, बील्वफल, इक्षु के टुकडे, शल्मली के फल, आदि पदार्थ, दाता वहोरावे तो ऐसे सचित्त पदार्थ एवं अधिक भाग बाहर फेंकना पड़े ऐसा पदार्थ साधु को नहीं कल्पता। ऐसा देने वालों से कह दे।

तहेवुच्चावयं पाणं, अदुवा वार धोअणं।
संसेइमं चाउलोदयं, अहुणाधोअं विवज्जओ॥७५॥
जं जाणेज्ज चिराधोयं, मइओ दंसणेण वा।
पडिपूच्छिऊण सुच्चा वा, जं च निस्संकिअं भवे॥७६॥
अजिवं परिणयं नच्चा, पाडिगाहिज्ज संजओ।
अह संकिअं भविज्जा, आसाइत्ताण रोयओ॥७७॥
थोवमासायणट्ठाओ, हत्थगंमि दलाहि मे।
मा मे अच्चंबिलं पूइं, नालं तण्हं विणित्तओ॥७८॥
तं च अच्चबिलं पूइं, नालं तण्हं विणित्तओ।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥७९॥
तं ज होज्ज अकामेणं, विमणेण पडिच्छिअं।
तं अप्पणा न पिबे, नो वि अन्नस दावओ॥८०॥
एगंत- मवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिआ।
जयं परिट्ठविज्जा परिट्ठप्प पडिक्कमे॥८१॥

अशन के जैसा पानी भी वर्णादि गुण युक्त ऊँच अर्थात् पूर्ण निर्दोष हो, वर्णादि से ऊँच अर्थात् द्राक्षादि का जल, वर्णादि से हीन कांजी आदि का पानी, गुड़ के घड़े का धोया हुआ पानी, आटे का, चाँवल का धोया पानी, सचित्त हो वहां तक न लें;। दीर्घकाल का धोया हुआ देखने से एवं पूछने से शंकारहित श्रुतानुसार निर्दोष हो तो ग्रहण करें। उष्णादि जल अजीव अर्थात् अचित्त बना हुआ हो तो लेना एवं शंका हो तो उसकी परीक्षा कर लेने का निर्देश देते हुए कहा है कि "दाता से कहे मुझे उसका स्वाद परखने के लिए थोड़ा- सा जल दो, अतीव खट्टा दुर्गंध युक्त हो तो, तृषा छिपाने में समर्थ न होने से ऐसा अति खट्टा दुर्गंध युक्त पानी देनेवाले दाता से मना करे, ऐसा पानी हमें नहीं कल्पता। कभी

दाता के आग्रह से या भूल से (मन का पूर्ण उपयोग न रहने से) ऐसा जल आ गया हो तो, वह जल पीना नहीं, दूसरों को देना नहीं। एकान्तस्थल में जाकर अचित्त भूमि पर चक्षु से पडिलेहन कर जयणा पूर्वक परठना चाहिये उपाश्रय में आकर इरियावही करनी चाहिये॥ ७५ से ८१॥

"गोचरी कब कैसे करें?"

सिआअ गोयरग्गगओ इच्छिज्जा परिभुत्तुअं।
कुट्ठगं भित्तिमूलं वा, पडिलेहित्ताण फासुअं॥ ८२॥
अणुन्नवित्तु मेहावी, पडिच्छन्नंमि संवुडे।
हत्थगं संपमज्जित्ता, तत्थ भुंजिज्ज संजए॥ ८३॥
तत्थ से भूंजमाणस्स अट्ठिअं कंटओ सिआ।
तण कट्ठ सक्करं वा वि अन्नं वा वि तहाविहं॥ ८४॥
तं उक्खिवित्तु न निक्खिवे, आसएण न छड्डए।
हत्थेण तं गहेऊण, एगंतमवक्कमे॥ ८५॥
एगंतमवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिआ।
जयं परिट्ठविज्जा, परिठप्प पडिकम्मे॥ ८६॥

गोचरी के लिए अन्य ग्राम में गया हुआ साधु, मार्ग में क्षुधा तृषादि से पीड़ित होकर आहार करना चाहे तो किसी शून्य गृह, मठ, गृहस्थ के घर आदि में दीवारादि का एक भाग सचित्त पदार्थ से रहित पडिलेहन कर, अनुज्ञा लेकर आच्छादित स्थान में इरियावही पूर्वक आलोचना कर, मुहपत्ति से शरीर की प्रमार्जना कर, अनासक्त भाव से आहार करे। आहार करते समय दाता के प्रमाद से बीज, कंटक, तृण, काष्ठ का टुकड़ा, कंकर, या ऐसा कोई न खाने योग्य पदार्थ आ जाय तो हाथ से फेंकना नहीं, मुँह से थूंकना नहीं पर हाथ में लेकर एकान्त में जाना, वहां अचित्त भूमि की पडिलेहन कर, उसे परठना परठने के बाद इरियावही करना॥ ८२ से ८६॥

"उपाश्रय में गोचरी करने की विधि"

सिआ य भिक्खू इच्छिज्जा, सिज्जमागम्म भुत्तुअं।
सपिंडपायमागम्म, उंडुअं पडिलेहिआ॥ ८७॥
विणएणं पविसित्ता, सगासे गुरूणो मुणी।
इरियावहियमायाय, आगओ अ पडिक्कमे॥ ८८॥
आभोइत्ताण निसेसं, अईआरं जहक्कमं।
गमणागमणे चे व भत्तपाणे व संजए॥ ८९॥
उज्जुप्पन्नो अणुव्विग्गो अव्वक्खित्तेण चे असा।
आलोए गुरूसगासे जं जहा गहिअं भवे॥ ९०॥

न सम्म मालोइअं हुज्जा, पुव्विं पच्छा स जं कडं।
पुणो पडिक्कमे तस्स, वोसट्ठो चिंतए इमं॥ ९१॥
अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहण देसिआ।
मुक्खसाहणहेउस्स, साहुदेहस्स धारणा॥ ९२॥
णमुक्कारेण पारित्ता, करित्ता जिणसंथवं।
सज्झाय पट्ठवित्ताणं, वीसमेज्ज खणं मुणी॥ ९३॥

उपाश्रय में आने के बाद मुनि आहार करने की इच्छावाला हो तब लाया हुआ निर्दोष आहार करने के स्थान का प्रमार्जन करे "इसके पूर्व निसीहि" नमोखमासमणाणं कहते हुए विनयपूर्वक उपाश्रय में प्रवेश करें। गुरू भगवंत के पास आकर इरियावही प्रतिक्रमण करे, कायोत्सर्ग में गोचरी जाते आते, आहार पानी लेने में क्रमशः जो अतिचार लगे हों उसे याद करें, सरलमतियुक्त, अव्यग्रचित युक्त, अव्याक्षिप्त चित्तयुक्त, जैसा जिस प्रकार से आहार पानी ग्रहण किया हो वैसा गुरू भगवंत से कहें, अनुपयोग से पूर्वकर्म, पश्चात् कर्म आदि की जो-जो आलोचना सम्यक् प्रकार से न हुई हो उस हेतु पुनश्च (गोअर चरिया के पाठ पूर्वक) आलोचना करें एवं काउस्सग्ग में चिंतन करें कि "अहो! श्री तीर्थंकर भगवंतों ने मोक्ष साधना के हेतु भूत और साधु के देह निर्वाहार्थ ऐसी निरवद्य वृत्ति बताई है" फिर नमो अरिहंताणं से कार्योत्सर्ग पार कर लोगस्स कहकर सज्झाय कर, मार्ग के श्रम निवारणार्थ विश्राम करें॥ ८७ से ९३॥

देह की स्वस्थता हेतु विश्राम करना यह अतीवोपयोगी नियम है। विश्राम करने से आहार संज्ञा की तृष्णा को अल्पावधि तक रोकना एवं श्रम दूर होने से पाचन तंत्र का व्यवस्थित रहना यह आत्मिक एवं भौतिक दोनों प्रकार से लाभदायक है।

"निमंत्रण देना"

विसमंतो इमं चिंते, हियमट्ठं लाभमट्ठिओ।
जइ मे अणुग्गहं कुज्जा, साहू हुज्जामि तारिओ॥ ९४॥
साहवो तो चियत्तेणं, निमंतिज्ज जहक्कमं।
जइतत्थ केइ इच्छिज्जा, तेहिं सद्धिं तु भुंजए॥ ९५॥

विश्राम करते हुए विचार चिंतन करें कि इस आहार में से कोई मुनिभगवंत आहार ग्रहण कर मुझे अनुग्रहित करें तो मैं भवसागर से पार करवाया हुआ बनुं अर्थात् यह अनुग्रह मुझे भवसागर पार करने में उपयोगी बनें। गुरू भगवंत की आज्ञा लेकर सभी साधुओं को निमंत्रण करें जो कोई उसमें से ग्रहण करे तो उनको देने के बाद उनके साथ बैठ कर आहार करें॥ ९४। ९५॥

आहार कैसे करें?

अह कोइ न इच्छिज्जा, तओ भुंजिज्ज एक्कओ।
आलोए भायणे साहू, जयं अपरिसाडियं॥९६॥
तित्तगं व कडुअं व कसायं, अंबिलं व महुरंलवणं वा।
एअलध्दमन्नत्थ-पउत्तं, महुघयं व भुंजिज्ज संजए॥९७॥
अरसं विरसं वा वि सूइअं वा असूइअं।
उल्लं वा जइ वा सुक्कं, मंथु कुम्मास भोअणं॥९८॥
उप्पण्णं नाइहीलिज्जा, अप्पं वा बहु फासुअं।
मुहालध्दं मुहाजीवी भुंजिज्जा दोस वज्जिअं॥९९॥

जब कोई मुनि भगवंत आहार ग्रहण न करे तो प्रकाश युक्त पात्र (चौड़े पात्र) में जयणा पूर्वक हाथ में से या मुँह में से कण न गिरे, इस प्रकार अकेला आहार करें। उस समय वह आहार कटु हो, तीक्त हो, कषायला हो, खट्टा हो, मधुर हो, खारा हो तो भी देह निर्वाहार्थ, मोक्ष साधनार्थ आहार मुझे मिला है ऐसा जानकर उस आहार को मधुर घृत युक्त मानकर या घृत जैसा प्रवाही पदार्थ शीघ्र ले लिया जाता है, उसी प्रकार आहार के स्वाद की ओर लक्ष न देकर, बाई दायी दाढों में संचालन किये बिना, पेट में डाल देना चाहिए। वह आहार संस्कार से रहित हो, या पूर्वकाल का विरस हो, सब्जी सहित हो या सब्जी रहित हो, सब्जी अल्प या अधिक हो, तुरंत का बना हुआ हो या शुष्क खाखरे आदि हो, बोर का भुक्का हो, उड़द के बाकुले हो, परिपूर्ण हो या अल्प हो और वह असार हो तो भी आगमोक्त विधि अनुसार प्राप्त निर्दोष आहार की निंदा न करनी। गृहस्थ /दाता का कोई भी कार्य किये बिना (मंत्र तंत्र औषधादि से उपकार किये बिना) प्राप्त किया हुआ है एवं स्वयं की जाति कुल शिल्प आदि बताकर निदान रहित मुधाजीवी की तरह से प्राप्त किया है अत: आगमोक्त साधु को संयोजनादि पांच दोष का आसेवन किये बिना आहार करना चाहिये॥९६ से ९९॥

दुर्लभ कौन हैं?

दुल्लहाउ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा।
मुहादाई मुहाजीवी, दोऽवि गच्छंति सुग्गइं॥१००॥त्ति बेमि॥

किसी भी प्रकार से प्रत्युपकार लेने की भावना से रहित नि:स्वार्थी दाता दुर्लभ है उसी प्रकार मंत्र तंत्रादि से चमत्कार बताए बिना, दाता पर भौतिक उपकार करने की भावना से रहित, स्वधर्मपालन में निमग्न नि:स्वार्थी ग्रहणकर्ता मुनि भी दुर्लभ है। मुधादायी निष्काम भाव से देने वाला, एवं एकमेव मोक्षार्थ जीवन यापन करनेवाला मुधाजीवी मुनि ये दोनों सुगति में जाते हैं।

श्री शय्यंभवसूरीश्वरजी मनक मुनि से कहते हैं कि ऐसा श्री महावीरस्वामीजी ने श्री सुधर्मास्वामी से कहा श्री सुधर्मास्वामी ने श्री जम्बुस्वामी से कहा वैसा मैं कहता हूँ।

पडिग्गहं संलिहित्ताणं, लेव मायाए संजए।
दुगंधं वा सुगंधं वा, सव्वं भुंजे न छड्डए॥१॥

साधु को आहार करते समय सुगंध युक्त, दुर्गंध युक्त जितना हो उतना आहार करना चाहिये उसमें से अंश मात्र त्याग न करें॥१॥

दूसरी बार गोचरी लेने कब जाय?

सेज्जा निसीहियाए समावन्नो अ गोअरे।
अयावयट्ठा भुच्चाणं, जइ तेण न संथरे॥२॥
तओ कारणमुप्पण्णे, भत्तपाणं गवेसए।
विहिणा पुव्वउत्तेणं, इमेणं उत्तरेण य॥३॥

उपाश्रय या स्वाध्याय भूमि में रहे हुए या गोचरी गये हुए मुनिभगवंत को आहार करने से क्षुधा शांत न हुई हो उतने आहार से निर्वाह न हो रहा हो तो, पूर्व में दर्शाई हुई विधि से एवं आगे कही जानेवाली विधि से कारण उपस्थित होने से दूसरी बार आहारार्थ गोचरी जा सकता है। आहार पानी की गवेषणा करें॥२,३॥

मुनि भगवंत को मूल विधि अनुसार एक बार ही आहार पानी के लिए गोचरी जाने का विधान है। आहार की पूर्णता न हुई हो, क्षुधा वेदनीय की उपशांतता न हुई हो, स्वाध्यायादि योग में स्वस्थता, चित्त की एकाग्रता न रहती हो तो पुनश्च: गोचरी जाने का विधान दर्शाया है। ये विधान निर्दोष गोचरी की आवश्यकता को प्रगट कर रहे हैं।

"गोचरी जाने का समय"

कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।
अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे॥४॥
अकाले चरसि भिक्खू, कालं न पडिलेहसि।
अप्पाणं च किलामेसि, संनिवेसं च गरिहसि॥५॥

ग्रामानुग्राम विहार करने वाले मुनि को जिस ग्राम में जिस समय आहार की प्राप्ति सुलभ हो उस समय गोचरी के लिए जाना एवं स्वाध्याय करने के समय के पूर्व स्वस्थान में आ जाना। अकाल के समय को छोड़कर जिस समय जो कार्य करना है उस समय वही कार्य करना यही आचारांग सूत्र दर्शित मुनि का कालज्ञ विशेषण हैं॥ ४ ॥

विपरित समय पर गोचरी जानेवाले को सूत्रकार श्री उपालंभ देते हुए कहते हैं कि - हे मुनि ! तूं गोचरी के समय को न देखकर अकाल में गोचरी जाता है, अधिक देर घूमना पड़ता है, आत्मा को किलामना होती है, चित्त चंचल बनता है, आहार की प्राप्ति न होने से ग्राम की, ग्राम निवासियों की निंदा करता है॥५॥

गोचरी के समय पर गोचरी न जाने से आत्म विटंबना होती है।

"तपोवृद्धि"

सइकाले चरे भिक्खू, कुज्जा पुरिसकारिअं।
अलाभुत्ति न सोइज्जा, तवुत्ति अहिआसए॥ ६॥

अकाल में गोचरी जाने से दोषों की उत्पत्ति होती है अत: समय पर गोचरी जावें, स्वयं के पुरुषार्थ को प्रयोग में लें, फिर भी न मिले तो शोक न करें एवं चिंतन करें कि "आज तप में वृद्धि हुई" इस प्रकार क्षुधा सहन करें॥ ६॥

"मार्ग में विशेष जयणा"

तहेवुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया।
तं उज्जुअं न गच्छिज्जा, जयमेव परक्कमे॥ ७॥

गोचरी के लिए जाते समय मार्ग में दाना चुगते हुए कबुतर आदि प्राणी दिखाई दें तो उनके सन्मुख न जाकर उनको दाना चुगना बंद नहीं करना पड़े इस प्रकार जयणा से चलें॥ ७॥

"धर्मकथा न करें"

गोअरग्गपविट्ठो अ न निसीइज्ज कत्थई।
कहं च न पबंधिज्जा, चिट्ठित्ताण व संजए॥ ८॥

गोचरी के लिए गया हुआ साधु कहीं आसन लगा कर बैठे नहीं एवं न कहीं पर धर्मकथा कहे। ऐसा करने से अनेषणा एवं द्वेषादि का दोष होता हैं॥ ८॥

"खड़े कैसे रहना?

अग्गलं फलिहं दारं, कवाडं वा वि संजए।
अवलंबिआ न चिट्ठिज्जा, गोअरग्गगओ मुणी॥ ९॥
समणं माहणं वा वि, किविणं वा वणीमगं।
उवसंकमंतं भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व संजए॥ १०॥
तमइक्कमित्तु न पविसे, न वि चिट्ठे चक्खुगोअरे।
एगंतमवक्कमित्ता, तत्थ चिट्ठिज्ज संजए॥ ११॥
वणीमगस्स वा तस्स, दायगस्सुभयस्स वा।
अप्पत्तिअं सिआ हुज्जा, लहुत्तं पवयणस्स वा॥ १२॥

गोचरी गये हुए साधु को गृहस्थ के घर के द्वार, शाख, अर्गला, फलक, दिवार आदि का सहारा लेकर खड़ा नहीं रहना। गृहस्थ को शंका हो जाने के कारण प्रवचन की लघुना, जीव विराधना आदि होने का संभव है।

श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, याचक इन चार में से कोई भी अर्थात् गृहस्थ के घर पर मांगनेवाला, याचना करनेवाला कोई भी खड़ा हो, अंदर जा रहा हो या आ रहा हो तो उसका उल्लंघन करके गृहस्थ के घर में न जाना एवं उन याचकादिम् की दृष्टि में न आए ऐसे एकान्त स्थल में खड़े रहना। ऐसा न करे तो लेने-देने वाले दोनों को अप्रीति का कारण एवं जिनशासन की लघुता निंदादि का कारण होता है। (अगर वे मुनि को देख लें एवं वे कह दे महाराज आप पधारो एवं दाता भी बुलावे तो जाने में कोई दोष नहीं)॥ ९ से १२॥

पडिसेहिए व दिन्ने वा तओ तम्मि नियत्तिए।
उवसंकमिज्ज भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व संजए॥ १३॥

याचकादि को गृहस्थ ने दे दिया हो या निषेध कर दिया हो एवं वे घर से लौट गये हो तो साधु गृहस्थ के घर में आहार पानी के लिए जावें। १३।

"वनस्पतिकाय की जयणा"

उप्पल पउमं वा वि कुमुअं वा मगदंतिअं।
अन्नं वा पुप्फसच्चित्तं, तं च संलुंचिआ दए॥ १४॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ १५॥
उप्पलं पउमं वा वि कुमुअं वा मगदंतिअं।
अन्नं वा पुप्फसच्चित्तं, तं च समद्दिआ दए॥ १६॥
तं भवे भत्त पाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ १७॥

उत्पल, पद्म, कुमुद, मेहंदी, मालती आदि दूसरे सचित्त पुष्पों का छेदन कर, संमर्दन कर दाता आहार पानी वहोराने लगे तो मुनि कह दे, ऐसा आहार पानी हमें नहीं कल्पता॥ १४ से १७॥

" कैसा आहार न लें" ?

सालुअं वा विरालिअं, कुमुअं उप्पलनालिअं।
मुणालिअं सासवनालिअं, उच्छुखंडं अनिव्वुडं॥ १८॥
तरूणगं वा पवालं, रूक्खस्स तणगस्स वा।
अन्नस्स वा वि हरिअस्स, आमगं परिवज्जए ॥ १९॥
तरूणिअं वा छिवाडिं, आमिअं भज्जिअं सइं।
दिंतिअं पडिआक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ २०॥
तहा कोलमणुस्सिन्नं, वेलुअं कासव नालिअं।
तिलप्पडगं नीमं, आमगं परिवज्जए॥ २१॥
तहेव चाउलं पिट्ठं, विअडं वा तत्तनिव्वुडं।
तिलपिट्ठ पूइपिन्नागं, आमगं परिवज्जए॥ २२॥
कविट्ठं माउलिंगं च मुलगं मूलगत्तिअं।
आमं असत्थपरिणयं, मणसावि न पत्थए॥ २३॥
तहेव फल मंथूणि, बीअमंथूणि जाणिअ।
बिहेलगं पियालं च आमगं परिवज्जए॥ २४॥

सचित्त उत्पल कंद, पलाशकंद, कुमुदनाल, पद्मकंद, सरसव की डाली, इक्षु के टुकड़े, वृक्ष, तृण एवं हरितादि के सचित्त नये प्रवालादि। जिन में बीज उत्पन्न नहीं हुआ है ऐसी मुंग आदि की कच्ची फलियाँ, सामान्य से भुंजी हुई मिश्र फलियाँ आदि । बोर, बांस कारेला, सीवण वृक्ष का फल,

तिलपापडी, नीमवृक्ष के सचित्त फल आदि। चाँवल का आटा (तुरंत का), कच्चा पानी, तीन उकाले आये बिना का पानी, तिल का आटा, सरसव का सामान्य कूटा हुआ खोल। कच्चे कोठे के फल, बीजोरू, मूला के पत्ते, मूला के कंद, बोर का चूर्ण, जवादि का आटा, बहेड़ा का फल, चारोली और अचित्त हुए बिना कोई भी पदार्थ, दाता वहोराये तो मुनि कह दे कि ऐसा आहार हमें नही कल्पता एवं मुनि मन से ऐसा विचार भी न करें कि मैं ऐसा पदार्थ ग्रहण करूं॥ १८ से २४॥

"सभी सुकुलों में गोचरी जाना"

समुआणं चरे भिक्खू, कुलमुच्चावयं सया।
नीयं कुलमइक्कम्म, ऊसढं नाभिधारए॥ २५॥

निर्दोष आहारार्थ हेतु आवश्यकतानुसार सदा समृद्धिवाले, मध्यम एवं साधारण घरों में जो निंदनीय न हो ऐसे घरों में जाना। पर मार्ग में गरीब साधारण व्यक्ति का घर छोड़कर धनाढय समृद्धिवाले घर में ही नहीं जाना।

"अदीन वृत्ति"

अदीणो वित्तिमेसिज्जा, न विसीइज्ज पंडिए।
अमुच्छिओ भोअणंमि, मायण्णे एसणारए॥ २६॥
बहुं पर घरे अत्थि, विविह खाइमसाइमं।
न तत्थ पंडि ओकुप्पे, इच्छादिज्ज परो न वा॥ २७॥
सयणासणवत्थं वा, भत्तं पाणं व संजए।
अदितस्स न कुप्पिजा, पच्चक्खेविअ दीसओ॥ २८॥

आहार में अमूर्च्छित मुनि, स्वयं के आहार के परिमाण का ज्ञाता मात्रज्ञ, और निर्दोष एषणा में निमग्न ऐसा मात्रज्ञ ज्ञानी मुनि आहार पानी न मिलने पर अदीन वृत्ति से गवेषणा करें। गृहस्थ के घर पर अनेक प्रकार की खाद्य-स्वाद्य सामग्री रहती है, पर वह न वहोराये तो ज्ञानी साधु उस पर क्रोधित न हो, वह इच्छा पूर्वक वहोराअे तो वहोरना, नहीं तो नहीं। गृहस्थ के घर में प्रत्यक्ष दिखाई देते शयन, आसन, वस्त्र एवं आहार पानी जो गृहस्थ न दे तो उस पर साधु क्रोध न करें ॥ २६। २७। २८॥

"वंदनकर्ता से याचना का निषेध"

इत्थिअं पुरिसं वा वि, डहरं वा महल्लगं।
वंदमाणं न जाइज्जा, नो अणं फरूसं वए॥ २९॥

स्त्री, पुरूष , युवान या वृद्ध हो उस वंदनकर्ता के पास साधु किसी पदार्थ की याचना न करें। याचना करने से उसके भाव टूट जाते हैं। कारण होने पर योग्य व्यक्ति से याचना करने पर भी पदार्थ के अभाव में न वहोराये तो उसे कठोर वचन न कहे। पदार्थ न वहोराने से तेरा वंदन निष्फल है, कायकष्ट है, तुझे कोई लाभ नहीं ऐसा न कहे।

"वंदन न करे तो क्रोध न करें"

जे न वंदे न से कुप्पे, वंदिओ न समुक्कसे।
एवमन्नेस माणस्स, सामण्णमणुचिट्ठइ॥ ३०॥

गृहस्थ वंदना न करे तो कुपित न बनें एवं राजा, राज पुरूष आदि वंदना करें तो गर्व धारण न करें। इस प्रकार जिनाज्ञा पालक साधु निरतिचार चारित्र का पालन कर सकता है।

"स्वादेच्छु मुनि"

सिआ एगइओ लद्धुं, लोभेण विणिगूहइ।
मामेयं दाइअं संतं दट्ठूण सयमायए॥ ३१॥
अत्तट्ठा गुरूओ लुद्धो, बहु पावं पकुव्वइ।
दुत्तोसओ अ सो होइ, निव्वाणं च न गच्छइ॥ ३२॥
सिआ एगइओ लद्धुं, विविह पाण भोअणं।
भद्दगं भद्दगं भुच्चा, विवन्नं विरसमाहरे॥ ३३॥
जाणंतु ता इमे समणा,आययट्ठी अयं मुणी।
संतुट्ठो सेवए पंतं, लूहवित्ती सुतोसओ॥ ३४॥
पूअणट्ठा जसोकामी, माणसम्माण काम ए।
बहुं पसवई पावं, मायासल्लं च कुव्वइ॥ ३५॥

सरस आहार में लुब्ध साधु पापार्जन कैसे करता है उसका स्वरूप बताते हैं, कदाच कोई एक साधु सरस आहार को लाकर लोभासक्त बन, नीरस आहार से उसे छिपा दे, क्योंकि सरस आहार बताऊंगा तो वे गुरू आदि ग्रहण कर लेंगे? स्वयं के भौतिक स्वार्थ को मुख्य मानने वाला रसलुब्ध साधु विशेष पापार्जन करता है इस भव में वह जैसे- तैसे आहार से संतुष्ट नहीं होता और इसी कारण से वह मोक्ष निर्वाण प्राप्त नहीं करता। कदाचित कोई साधु गोचरी में प्राप्त सरस आहार को मार्ग में ही खा कर, निरस आहार स्वस्थान पर लावे ऐसा मानकर कि दूसरे साधु ऐसा समझेंगे कि यह साधु आत्मार्थी, संतोषी, अंतप्रांत भोजी,रूक्ष वृत्ति युक्त और सुखपूर्वक संतुष्ट हो सके ऐसा है। ऐसा साधु पूजार्थी, यशार्थी, मान सन्मार्थी, मायाशल्य का सेवन करने से विशेष पापार्जन करता है॥ ३१ से ३५॥

"अभक्ष्य सेवी साधु"

सुरं वा मेरगं वा वि,अन्नं वा मज्जगं रसं।
ससक्खं न पिबे भिक्खू जसं सारक्खमप्पणो॥ ३६॥
पियए एगओ तेणो, न मे कोइ विआणइ।
तस्स पस्सह दोसाइं, निअडिं च सुणेह मे॥ ३७॥
वड्ढई सुंडिआ तस्स, मायामोसं च भिक्खुणो।
अयसो अ अनिव्वाणं, सययं च असाहुआ॥ ३८॥
निच्चुव्विग्गो जहा तेणो, अत्तकम्मेहिं दुम्मई।
तारिसो मरणंतेवि, न आराहेइ संवरं॥ ३९॥
आयरिए नाराहेइ, समणे आवि तारिसे।
गिहत्थावि ण गरिहंति, जेण जाणंति तारिसं॥ ४०॥
एवं तु अगुणप्पेही, गुणाणं च विवज्जए।
तारिसो मरणंतेऽवि, ण आराहेइ संवरं॥ ४१॥

तवं कुव्वइ मेहावी, पणीअं वज्जए रसं।
मज्जप्पमायविरओ, तवस्सी अइउक्कसो॥ ४२॥

स्वयं के संयमरूपी यश की सुरक्षा रखनेवाले मुनि को ससाक्षी अर्थात् केवलज्ञानी भगवंत ने निषेध किया हुआ जवपिष्टादि की मदिरा, महुआ की मदिरा और अन्य किसी प्रकार का मादक रस पीना नहीं। जो कोई साधु जिनाज्ञा का चोर होकर, मुझे कोई नहीं जानता है, ऐसा सोच कर/ मानकर, अेकान्त स्थल में मदिरा पान करता है। उपलक्षण से आगम में निषिध व्यवहार से निषिध पदार्थो का सेवन करता है। (हे शिष्यों! मैं तुम्हें) उसके दोष एवं उनके द्वारा की हुई माया का किस्सा सुनाता हूं। उसे श्रवण करो।

मदिरापान कर्ता मुनि की आसक्ति की वृद्धि होती है। पूछने पर मैंने मदिरापान नहीं किया ऐसा असत्य बोलता है जिससे उसे माया मृषावाद का पाप लगता है। स्वपक्ष श्रमणसंघ,परपक्ष गृहस्थादि में अपयश फैलता है। कभी-कभी मदिरादि न मिले तो अतृप्ति रहती है चारित्र में विशेष विराधना होने से लोगों में निरंतर असाधुता का प्रसार/प्रचार होता है।

जैसे चोर स्वकर्म से सदा उद्विग्न रहता है वैसे वह संक्लिष्ट चित्त युक्त दुर्मति साधु मरणान्त तक भी संवर की आराधना नहीं कर सकता।

ऐसा साधु दुराचारी होने से वह आचार्यादि की, बाल,ग्लान आदि साधुओं की सेवादि नहीं कर सकता। और गृहस्थ लोग भी उसकी निंदा करते हैं, कारण कि उसके आचार को वे जानते हैं।

इस प्रकार अवगुण के स्थान को देखनेवाला, गुण के स्थान का वर्जक क्लिष्ट चित्त युक्त मरणान्त तक तपस्वी, मद्रहित ऐसे साधुओं को स्निग्ध घृतादि से युक्त प्रणित आहार एवं मदिरापानादि प्रमाद का त्याग कर तपश्चर्या करना चाहिये॥ ३६ सा ४२॥

"आचार पालन के लाभ"

तस्स पस्सह कल्लाणं, अणेग साहू पूइअं।
विउलं अत्थ संजुत्तं, कित्तइस्सं सुणेह मे॥ ४३॥
एवं तु सगुणप्पेही, अगुणाणं च विवज्जए।
तारिसो मरणंतेऽवि आराहेइ (अ) संवरं॥ ४४॥
आयरिए आराहेइ, समणे आवि तारिसे।
गिहत्थावि ण पूयंति, जेण जाणंति तारिसं॥ ४५॥

पूर्वोक्त गुणयुक्त साधु के गुणसंपत्ति से युक्त संयम चारित्र को तुम देखो, कि जो अनेक साधुओं से सेवित, विस्तीर्ण और मोक्षार्थ सहित है। सूत्रकार श्री कहते हैं कि उसका वर्णन मैं करता हूँ तूम सुनो॥ ४३॥

अप्रमादि गुण को देखनेवाला और प्रमादादि अवगुण का त्यागी, ऐसे शुद्धाचार का पालन करने वाला संवर की आराधना मरणान्त तक करता है॥ ४४॥

ऐसा गुण युक्त साधु आचार्यादि की सेवा करता है। उनकी आज्ञा का पालन करता है और उसके शुद्ध आचार को जानते हुए गृहस्थ उसकी पूजा करते हैं। अर्थात् उसका मान सन्मान करते हैं॥ ४५॥

"किल्बिष देव कौन बनता है?"

तव तेणे वय तेणे, रूवतेणे अ जे नरे।
आयार भाव तेणे अ कुव्वई देव किव्विसं॥ ४६॥
लध्धूण वि देवत्तं, उववन्नो देव किव्विसे।
तत्थावि से न याणाइ किं मे किच्चा इमं फलं॥ ४७॥
तत्तो वि से चइत्ताणं, लब्भिही एलमूअगं।
नरगं तिरिक्ख जोणिं वा, बोहि जत्थ सुदुल्लहा ॥ ४८॥

तप, वचन, रुप, आचार एवं भाव चोर ये पांचो प्रकार के चोर चारित्र का शुद्ध पालन करते हुए भी किल्बिष देव भव में उत्पन्न होते हैं, किल्बिष देव भव प्राप्त हो जाने के बाद वहां भी निर्मल अवधिज्ञान न होने से मैंने ऐसा कौन-सा अशुभ कार्य किया जिससे मुझे किल्बिष देव भव मिला।

वह साधु वहां से देव भवायु पूर्णकर मनुष्यादि भव में बकरे के जैसा मुक पना प्राप्त करेगा और परंपरा से नरक तिर्यंचादि की योनि को प्राप्त करेगा। जहां जैनधर्म की, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति दुर्लभ है॥ ४६से ४८॥

आगमोक्त तप न कर स्वयं को तपस्वी मानने मनवानेवाला तप चोर, आगमोक्त ज्ञान न होने पर एवं स्वयं शास्त्रोक्त व्याख्याता न होने पर भी स्वयं को ज्ञानी एवं व्याख्याता मानने, मनवानेवाला, स्वयं राजकुमार आदि न होते हुए भी किसी के पूछने पर मौन धारण कर्ता रुप चोर, स्वयं आचारहीन होते हुए भी आचारवान् मानने, मनवानेवाला आचार चोर एवं आत्मरमणता न होते हुए भी स्वयं को अध्यात्मिक पुरुष मानने, मनवाने वाला भाव चोर। इन पांच प्रकार के चोरों की संक्षिप्त व्याख्या है।

"ज्ञातपुत्र ने कहा"

एअं च दोसं दट्ठूणं, णायपुत्तेण भासिअं।
अणुमायंपि मेहावी, मायामोसं विवज्जए॥ ४९॥

साध्वाचार का पालन करने पर भी किल्बिष 'देव होने रुप दोषों को देखकर ज्ञातनंदन श्री महावीर परमात्मा ने कहा है कि हे बुद्धिवान् मेधावी साधु! अंशमात्र भी माया मृषावाद पालन का त्याग कर॥ ४९॥

साध्वाचार का पालन करनेवाला माया करता है, असत्य बोलता है, उसकी यह दशा श्री महावीर परमात्मा ने कही है। तो जो साध्वाचार का पालन ही न करे एवं माया मृषावाद का पालन करें उसकी क्या दशा होगी!

उपसंहार

सिक्खिऊण भिक्खेसणसोहिं, संजयाण बुद्धाणं सगासे।
तत्थ भिक्खू सुप्पणिहि इंदिए, तिव्वलज्जगुणवं विहरिज्जासि॥ ५०॥त्ति बेमि॥

"पंचम पिण्डैसणानामज्झयणं समत्तं"

सुत्रकार श्री पिण्डैसणा अध्ययन की समाप्ति के समय कह रहे हैं कि "तत्व के जानकार तत्वज्ञ संयमयुंक्त गुरु आदि के पास पिण्डैषणा की शुद्धि को सीख कर, उस एषणासमिति में पांचों इन्द्रियों से उपयोगी बनकर एवं अनाचारादि सेवन में तीव्रलज्जा युक्त होकर, पूर्व में कहे हुए साधु गुणों को धारण कर विचरें। ऐसा श्री महावीर परमात्मा द्वारा कहा हुआ परंपरा से प्राप्त मैं कहता हूँ।"

"महाचार कथा के उपयोगी शब्दार्थ"

गणिम् आचार्य **उज्जाणंमि** उद्यान में **समोसढं** पधारे हुए **रायमच्चा** राज्य प्रधान **निहुअप्पारो** निश्चल मन से हाथ जोड़कर **भे** भगवंत **आयार गोयरो** आचार विषय॥१/२॥ **निहुओ** असंभ्रान्त **आइक्खइ** कहे॥३॥ **धम्मत्थ कामाणं** धर्म का प्रयोजन मोक्ष, उसको चाहने वाले **दुरहिट्ठियं** दुष्कर आश्रय करने योग्य॥४॥ **नन्नत्थ** दुसरे स्थान पर नहीं **अेरिसं** ऐसा **वृत्तं** कहा हुआ **दुच्चर** दुष्कर **विउलट्ठाणभाइस्स** संयम स्थान सेवी॥५॥ **सखुड्डुगविअत्ताणं** बालक एवं वृद्ध साधुओ को **कायव्वा** करना अखंड **फुडिआ** देश सर्व विराधना रहित॥६॥ **जाइं** जिसे **अवरज्जइ** विराधता है **तत्थ अन्नेयरे** उसमें से एक भी **निग्गंथत्ताउ** निर्ग्रंथ रुप से **भस्सइ** भ्रष्ट होता है॥७॥**अजाइया** अयाचित **दंत सोहणमित्तं** दांत साफ करने की सली भी ॥१४॥ **भेआययण विज्जिणो** चरित्र में अतिचार से भयभीत॥१६॥ **अहमस्स** अधर्म पाप **सुमुस्सयं** बड़े दोषों का॥१७॥ **बिड** पका हुआ नमक **उब्भेइमं समुद्रीनमक, फाणिअं** नरम गुड़ **वओरया** में रक्त॥१८॥ **अणुफासे** महिमा **अन्नयरामवि** किंचित भी **कामे** सवे इच्छे **ताइणा** त्राता।२१। **उवहिणा** उपधि की अपेक्षा से **ममाइयं** ममत्व को।२२। **लज्जासमा** संयम अविरोधी।२४। **उदउल्लं** जलाद्र **निवडिआ** पडे हो।२५। **तयस्सिए** उनकी निश्रा में।२८। **जायतेअं** उत्पन्न होते ही तेजस्वी **जलइत्तअे** ज्वलन करने **अन्नयरं** सभी बाजु से धारयुक्त।३३। **पाइणं** पूर्व दिशा में **पडिणं** पश्चिम दिशा में **अणुदिसामवि** विदिशाओं में भी **अहे** अधोदिशा में।३४। **भूआणं** प्राणीओं को **आद्याओ** घात करने वाला **हव्ववाहो** अग्नि **पइव** दीपक **पयावट्ठा** ताप हेतु ।३५। **अणिलस्स** वाउकाय के।३७। **तालिअंटेण** तालवृन्त, **विहुअणेण** हिलाने से **वेआवेऊणं** हवा करवाना **वा** वली।३८। **उइरंति** उदीरणा करना।३९। **इसिणा** ऋषि।४७। **नियागं** निमंत्रित।४९। **ठिअप्पाणो** निश्चल चित्त युक्त।५०। **कंसेसु** कांसे के प्याले **कंस पाएसु** कांसे के पात्र में **कुंडमोएसु** मिट्टी के पात्र में।५१। **भत्तधोअण** पात्र धोने का **छड्डुणे** त्याग करने में **छिन्नंति** छेदते हैं।५२। **सिया** कदाच **अेअमट्ठं** इस कारण से।५३। **आसंदी** मंचिका **पलिअंकेसु** पलंग में **मंच** खटिआ **आसालअेसु** आरामकुर्सी **अणायरिअं** अनाचरित **अज्जाणं** साधुओं को **आसइत्तु** बैठने के लिए **सइत्तु** सोने के लिए।५४। **पीढए** बाजोट **अहिट्ठगा** मार्ग में चलनेवाले।५५। **गंभिर विजया** अप्रकाश आश्रय युक्त **विवज्जिआ** विशेष प्रकार से मना करें।५६। **इमेरिसं** आगे कहा जायगा ऐसे **आवज्जइ** प्राप्त होता है **अबोहिअं** मिथ्यात्व रुप फल।५७। **विपत्ति** नाश **पडिग्घाओ** प्रत्याघात **पडिकोहो** प्रतिक्रोध **अगुत्ती** नाश।५९। **अन्नयरागस्स** किसी को भी **अभिभूअस्स** पराभव पाया हुआ।६०। **वुक्कंतो** भ्रष्ट **जढो** नाश पाना।६१। **घसासु** पोलीभूमि **भिलुगासु** दरार युक्त भूमि **विअडेण** प्रासुक जल से **उप्पलावअे** प्लावित करना।६२।**असिणाणमहिट्ठगा** अस्नान का आश्रय करने वाले।६३। **कक्कं** कल्क चंदनादि का लेप **लुद्धं** लोदर **पउमगाणि** केसर **गायस्स** शरीर के **उव्वट्टणट्ठाअे** उद्वर्तन अर्थात उबटन के लिए।६४। **नगिणस्स** नग्न, प्रमाणोपेत वस्त्रधारी, **दीह** दीर्घ **नहंसिणो** दीर्घ नखयुक्त **कारिअं** करना।६५। **खवंति** शोधता है **अमोह दंसिणो** मोहरहित **धुणंति** खपाता है **नवाइं नये**।६८। **सओवसंता** सदाउपशांत **उउप्पसन्ने** शरद ऋतु में **उवेंति** उत्पन्न होता है **सविज्जाविज्जाणुगया** स्वयं की परलोकोपकारिणी विद्यायुक्त **जसंसिणो** यशस्वी **अममा** ममत्वरहित।६९।

छट्ठ धम्मत्थकामज्झायणं (महाचार कथा)

"संबंध"

पांचवें अध्ययन में एषणा समिति का विस्तृत विवेचन देकर गोचरी गये हुए साधु को किसी के द्वारा पूछा जाय कि महाराज आपका आचार कैसा है? तब साधु कहे कि हमारे गुरु महाराज उपाश्रय में बिराजमान हैं उनके पास जाकर हमारे आचार का ज्ञान प्राप्त करो। प्रश्नकर्ता गुरू महाराज से साध्वाचार विषयक प्रश्न का समाधान करते हैं। इस संबंध से अब महाचार कथा नामक अध्ययन का प्रारंभ करते हैं।

प्रश्नकर्ता एवं समाधान कर्ता कौन?

नाण दंसण संपन्नं संजमे अ तवे रयं।
गणिमागमसंपन्नं, उज्जाणम्मि समोसढं॥ १॥
रायाणो रायमच्चा य माहणा अदुव खत्तिआ।
पुच्छंति निहुअप्पाणो, कहं भे आयारगोयरो। २॥

सम्यगूज्ञान, दर्शन युक्त, संयम और तप में रक्त, आगम संपन्न, उद्यानादि में पधारे हुए आचार्यादि भगवंतों से राजा, प्रधान, ब्राह्मण या क्षत्रियादि हाथ जोड़कर निश्छल मन से प्रश्न करते हैं कि है भगवंत! आपके आचार विचार किस प्रकार के हैं? हमें समझाओ १/२॥

"समाधान कैसे गुरु कर सकते है?

तेसिं सो निहुओ दंतो, सव्वभूअ सुहावहो।
सिक्खाए सुसमाउत्तो आयक्खइ विअक्खणो॥ ३॥

असंभ्रान्त इन्द्रियों सहित मन को दमन करने वाला सभी प्राणिओं के हितेच्छु हितकर्ता एवं, ग्रहण, आसेवन रुप शिक्षा से युक्त ऐसे विचक्षण आचार्य भगवंत राजादि के प्रश्नों के उत्तर देते हैं।

आचार्य भगवंत का कथन

हंदि धम्मत्थ कामाणं, निग्गथाणं सुणेह मे।
आयार गोअरं भीमं, सयलं दुरहिट्ठिअं॥ ४॥

हे राजादि महानुभाव! धर्म के फलस्वरुप मोक्षेच्छु मुमुक्षु निर्ग्रंथों के आचार क्रियाकांड को मैं कहता हूँ वह तुम सुनो! निर्ग्रंथो का यह सभी आचार कर्म शत्रु के लिए महाभयंकर है उसी प्रकार अल्प सत्व वाले प्राणियों के लिए परिपूर्ण रुप से कठिनता से पालन किया जा सके वैसा है। शक्तिहीन व्यक्ति के लिए दुष्कर है।४।

"साध्वाचार की उत्कृष्टता"

नन्नत्थ एरिसं वुत्तं, जं लोए परमदुच्चरं।
विउलट्ठाण भाइस्स, न भूअं न भविस्सइ॥५॥

हे राजादि महानुभाव! ऐसा उपरोक्त शुद्ध आचार विश्व में अति दुष्कर है। दूसरे दर्शनों में तो ऐसी आचार प्रणाली है ही नहीं। संयम स्थान के पालन करने वाले महापुरुषों को जिनमत के आलावा ऐसा आचार दृष्टिगोचर न हुआ न होगा॥५॥

सुत्रकार श्री ने साध्वाचार की उत्कृष्टता दर्शाते हुए स्पष्ट कहा है कि जिनमत में ही शुद्ध आचार है और ऐसे **आचार पालक आत्मा ही आत्महित कर सकते हैं।**

आराधक कौन-कौन?

स खुड्डगविअत्ताणं, वाहिआणं च जे गुणा।
अखंड फुडिआ कायव्वा, तं सुणेह जहा तहा॥६॥

इस आचार धर्म का पालन, बाल श्रमण, वृद्ध श्रमण, ग्लान व्याधियुक्त श्रमण एवं व्याधिरहित बाल-युवा-वृद्ध सभी को आगे कहे जायेंगे वैसे आचार रुप गुणों का पालन, देश विराधना एवं सर्व विराधना रहित करना अर्थात् निरतिचार चारित्र पालन करना। जैसा आचार का स्वरुप है वैसा मैं कहता हूँ। तुम सुनो। ६।

आचार स्वरुप

दस अट्ठ य ठाणाइं, जाइं बालोऽवरज्झइ।
तत्थ अन्नयरे ठाणे, निग्गंथत्ताउ भस्सइ॥७॥

सुत्रकार श्री कहते हैं कि संयम के अठारह स्थान है जो अज्ञान आत्मा इन स्थानों की विराधना करता है, इनमें से एक भी स्थान की विराधना करता है उससे वह निर्ग्रंथ पद से भ्रष्ट होता है॥७॥

नाम पूर्वक अठारह स्थान

वय छक्कं काय छक्कं अकप्पो गिहिभायणं।
पलियंक निसेज्जा य, सिणाणं सोहवज्जणं॥८॥

छः व्रत, छः काय रक्षण, गृहस्थ के भाजन बर्तन प्रयोग में लेने का त्याग पलंग-कुर्सी-आरामकुर्सी आदि का त्याग , साध्वाचार के विपरित आसन-गृह आदि का त्याग, अकल्पनीय पदार्थ का त्याग देशतः सर्वतः स्नान का त्याग, शारीरिक विभूषा का त्याग इस प्रकार ये अठारह प्रकार के सयंम स्थान हैं।

प्रथम स्थान "अहिंसा पालन।"

तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसिअं।
अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो॥९॥
जावंति लोए पाणा, तसा अदुव थावरा।
ते जाणम जाणं वा न हणे णोवि घायए॥१०॥

सव्वेजीवावि इच्छंति, जीवीउ न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं॥ ११॥

पूर्वोक्त अठारह स्थानों में प्रथम श्री महावीर परमात्मा ने अहिंसा पालन कहा हुआ है। यह अहिंसा धर्म के पालन आधाकर्मादि दोषों के त्याग द्वारा सूक्ष्म प्रकार से धर्म के साधन रुप स्वयं (भगवंत) ने देखा है इसी कारण से सभी जीवों के प्रति संयम रूप दया रखना चाहिये।

इस लोक में जितने भी त्रस जीव एवं स्थावर जीव हैं उन समस्त जीवों को जानते अजानते स्वयं मारे नहीं, मरवारें नहीं उपलक्षण से मारते हुए की अनुमोदना न करें। क्योंकि :-

भगवंत ने कहा है कि- सभी जीव जीने की इच्छा करते हैं, जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। इस कारण घोर नरकादि दु:ख दायक प्राणीवध का निर्ग्रंथ त्याग करता है। यह प्रथम स्थान''॥ ९,१०॥

द्वितीय स्थान ''असत्य त्याग''

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, कोहा वा जइ वा भया।
हिंसगं न मुसं बूआ नो वि अन्नं वयावए॥ १२॥
मुसावाओ उलोगम्मि, सव्वसाहूहिं गरिहिओ।
अविस्साओ अ भूआणं, तम्हा मोसं विवज्जए॥ १३॥

स्व पर पीड़ा दायक असत्य वचन मुनि क्रोध से (लोभ से) भय से (हास्य से एक का ग्रहण तज्जातीय का ग्रहण) स्व के लिए पर के लिए बोले नहीं दूसरों से बोलावे नहीं उपलक्षण से बोलने वाले की अनुमोदना करे नहीं।

असत्य वचन विश्व में लोक में सभी उत्तम पुरुषों ने निंदनीय माना है। प्राणीओं को असत्य भाषी अविश्वसनीय है, इस कारण से असत्य वचन का त्याग करना । दूसरा संयम स्थान॥ १२,१३॥

तृतीय स्थान ''अदत्त अग्रहण''

चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइवा बहुं।
दंत सोहणमित्तंपि, उग्गहंसि अजाइया॥ १४॥
तं अप्पणा न गिण्हंति, नो वि गिह्णावए परं।
अन्नं वा गह्णमाणंपि, नाणुजाणंति संजया॥ १५॥

मालिक से याचना किये बिना सचित्त या अचित्त, अल्प हो या अधिक दांत साफ करने की सली तक भी स्वयं ले नहीं दूसरों से मंगवाएँ नहीं लेने वालों की अनुमोदना न करें।

सुत्रकार श्री ने दांत साफ करने की सली जैसी वस्तु बिना याचना किये लेने का निषेध कर यह स्पष्ट किया है कि साध्वाचार में अदत्त अग्रहण का कितना महत्व है? तृतीय संयम स्थान।

चतुर्थ संयम स्थान "अब्रह्म का त्याग"

अबंभचरिअं घोरं, पमायं दुरहिट्ठिअं।
नायरंति मुणीलोए, भेआययणवज्जिणो॥ १६॥
मूलमेयमहमस्स, महादोससमुस्सयं।
तम्हा मेहुण संसग्गं. निग्गंथा वज्जयंति णं॥ १७॥

चारित्र का नाश हो ऐसे स्थान के त्यागी, चारित्राचार पालक पापभीरू, मुनि, रौद्र अनुष्ठान के हेतुभूत, सर्व प्रमाद के मूल रूप में और अनंत संसारवृद्धक होने से एवं आगमज्ञ भव्यात्माओं के द्वारा अनाचरित ऐसे अब्रह्मचर्य का आचरण नहीं करते । क्योंकि भगवंत ने इसे "अधर्म का मूल एवं महादोषों का ढेर" जैसा कहा है अर्थात् अब्रह्मचर्य का सेवन अधर्म की जड़ है इससे अनेक प्रकार के पापाचरण होते हैं इस कारण से निर्ग्रंथ महापुरुष मैथुन संसर्ग का त्याग करते हैं। इति चतुर्थ सयंम स्थान। १६,१७।

पंचम स्थान "अपरिग्रह"

बिडमुभेइमं, लोणं, तिल्लं, सप्पिं च फाणिअं।
न ते संनिहिमिच्छंति, नायपुत्त व ओरया॥ १८॥
लोहस्सेस अणुप्फासे, मुन्ने अन्नयरामवि।
जे सिया सन्निहिं कामे, गिही पव्वइए न से॥ १९॥
जं पि वत्थं व पायं वा, कंबलं पाय पुंछणं।
तं पि संजमलज्जट्ठा, धारंति परिहरंति अ॥ २०॥
न सो परिग्गहो वुत्तो, नाय पुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इअ वुत्तं महेसिणा॥ २१॥
सव्वत्थुवहिणा बुद्धा संरक्खण परिग्गहे।
अवि अप्पणोऽ वि देहंमि, नायरंति ममाइयं॥ २२॥

ज्ञातपुत्र श्री महावीर परमात्मा के वचन में अनुरक्त मुनि गोमुत्रादि से पकाया हुआ प्रासुक नमक, समुद्रादि सचित्त नमक, तेल, घृत, नरम गुड़ आदि किसी भी प्रकार का पदार्थ सन्निधि के रूप में रातभर रखना नहीं चाहते। क्योंकि भगवंत ने कहा है :

संन्निधि रखना यह लोभ कषाय का प्रभाव है। अल्प मात्रा में भी सन्निधि को रखने

वाले को गृहस्थ मानना, साधु मानना नहीं वह दुर्गति के निमित्त रूप क्रिया करते हैं। ऐसा श्री तीर्थंकर, गणधर, भगवंतों ने कहा है।

सन्निधि रखनेवाले को गृहस्थ कहा है तो वस्त्रादि रखनेवाले को मुनि कैसे कहा जाय? ऐसी शंका के समाधान में कहा है- वस्त्र, पात्र, कंबल, पाद प्रोंछन रजोहरण आदि आवश्यक सामग्री रखी जाती है वह भी संयम सुरक्षा हेतु है। लज्जा मर्यादा के पालनार्थ है। मूर्च्छारहित उपयोग किया जाता है। इसी हकिकत को आगे सिद्ध किया है।

स्व पर तारक ज्ञातपुत्र श्री महावीर परमात्मा ने ममत्व रहित आवश्यकतानुसार वस्त्रादि रखने को परिग्रह नहीं कहा है। उन वस्त्रादि पर मूर्च्छा है, आसक्ति है, ममत्वभाव है, उसको परिग्रह कहा है। इस हेतु से गणधरादि भगवंतों ने सूत्रों में वस्त्रादि रखने में दोष नहीं कहा।

ज्ञानी महापुरूष सर्वोचित देशकाल में वस्त्रादि उपधि युक्त होते हैं वे छः काय की रक्षा हेतु उसे स्वीकार करते हैं क्योंकि वे अपने देह पर ममत्व भाव से रहित होते हैं तो वस्त्र पर तो ममत्व भाव न हो उसमें कहना ही क्या? इति पंचम संयम स्थान ।१८ से २२।

इन आगमोक्त कथन से स्पष्ट हो रहा है कि जहां-जहां वस्त्रादि, पुस्तकादि, औषधादि का संग्रह ममत्व भाव पूर्वक है वहां-वहां भाव साधुता नहीं है, गृहस्थभाव है। वह वेश से मुनि है भाव से गृहस्थ है।१८ से २२।

षष्ठम् स्थान "रात्रिभोजन त्याग"

अहो निच्चं तवो कम्मं, सव्वबुद्धेहिं वण्णिअं।
जाय लज्जासमावित्ती, एगभत्तं च भोयणं॥ २३॥
संति मे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा।
जाइं राओ अपासंतो, कहमेसणीअं चरे॥ २४॥
उदउल्लं बीअ संसत्तं, पाणा निवडिया महिं।
दिआ ताइं विवज्जिज्जा, राओ तत्थ कहं चरे?॥ २५॥
एअं च दोसं दट्टूणं नायपुत्तेण भासिअं।
सव्वाहारं न भुंजंति,निग्गंथा राइभोअणं॥ २६॥

संयम पालन में बाधा न आवे उस रीति से देह पोषण युक्त नित्य-अप्रतिपाती तपःकर्म सभी तीर्थंकर भगवंतों ने कहा हुआ है और एक बार भोजन/गोचरी करने का कहा है। २३।

प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले दो इंद्रियादि त्रस, पृथ्वी आदि स्थावर प्राणी हैं। जो रात में चक्षु से देखने में नहीं आते। वे दृष्टि गोचर न होने से रात को निर्दोष गोचरी के लिए कैसे फिरेंगे ? किस प्रकार आहार करेंगे ? रात को गोचरी हेतु जाने में एवं वापरने में प्राणीओं का घात होता है। २४।

रात को गोचरी जाते समय आहार सचित्त जल से भीगा हुआ हो या बीजादि से मिश्र हो और मार्ग/राह में संपातिम प्राणी रहे हुए हो तो दिन में तो उनका त्याग किया जा सकता है, पर रात को उसका त्याग कर, कैसे चल सके?। २५।

इस प्रकार अनेक दोषों को देख कर ज्ञातपुत्र श्री महावीर परमात्मा ने कहा कि - श्रमणों को चारों प्रकार के आहार का रात को सर्वथा त्याग करना चाहिये। २३ से २६।

श्रमण भगवंत को तप वही करने का कहा है जिस तप से संयम धर्म पालन में दोष सेवन न करना पड़े। दोष सेवन कर तप करना जिनाज्ञा विरूद्ध है। आधाकर्मादि दोषयुक्त आहार खाकर तप करने की अपेक्षा नित्य निर्दोष गोचरी से एकासन का तप करना जिनाज्ञा की आराधना है।

सप्तम स्थान "पृथ्वीकाय की जयणा"

पुढविकायं न हिंसंति, मणसा वयसा कायसा।
तिविहेणं करण जो एणं, संजया सुसमाहिआ।। २७।।
पुढविकायं विहिंसंतो, हिंसइ उ तयस्सिए।
तसे अ विविहे पाणे चक्खुसे अ अचक्खुसे।। २८।।
तम्हा एअं विआणित्ता, दोसं दुग्गइ वड्ढणं।
पुढवि काय समारंभं, जावजीवाइं वज्जए।। २९।।

सुसमाहित साधु भगवंत पृथ्वीकाय की मन-वचन-काया से हिंसा करते नहीं, करवाते नहीं, करने वाले की अनुमोदना नहीं करते। पृथ्वी काय की हिंसा करते समय उसकी निश्रा में रहे हुए त्रस जीव और दूसरे भी विविध प्राणिओं की जो चक्षु से दृश्य, अदृश्य हैं उसकी हिंसा हो जाती है। पृथ्वीकाय की हिंसा में दूसरे प्राणिओं की हिंसा भी होती है यह दोष दुर्गतिवर्द्धक होने से पृथ्वीकाय के समारंभ का त्याग जावज्जीव तक करना, यह सप्तम संयम स्थान है। २७ से २९।

अष्टम स्थान "अप्काय की जयणा"

आउकायं न हिंसंति, मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करण जोएणं, संजया सुसमाहिआ।। ३०।।
आउ कायं विहिंसंतो, हिंसई उ तयस्सिए।
तसे अ विविहे पाणे, चक्खुसे अ अचक्खुसे।। ३१।।
तम्हा एअं विआणित्ता, दोसं दुग्गइ वड्ढणं।
आउकाय समारंभं, जावजीवाइं वज्जए।। ३२।।

सुमाहित साधु भगवंत अपूकाय की हिंसा मन-वचन-काया से करते नहीं, कराते नहीं, करनेवाले की अनुमोदना नहीं करते। अपूकाय की हिंसा के समय उनकी निश्रा के अनेक चक्षु से दृश्य, अदृश्य त्रस स्थावर जीवों की हिंसा होती है। ऐसे दुर्गति वर्द्धक दोषों के कारण अपूकाय के समारंभ का त्याग जीवन पर्यंत करना, यह अष्टम संयम स्थान है। ३० से ३२।

नवम स्थान "अग्निकाय जयणा"

जायतेअं न इच्छंति, पावगं जलइत्तए।
तिक्खमन्नयरं सत्थं सव्वओ वि दुरासयं॥ ३३॥
पाईणं पडिणं वा वि, उड्ढं अणुदिसामवि।
अहे दाहिणओ वा वि, दहे उत्तरओ वि अ॥ ३४॥
भूआणमेसमाघाओ, हव्ववाहो न संसओ।
तं पईव पयावट्ठा, संजया किंचिनारभे॥ ३५॥
तम्हा एअं विआणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं।
तेउकाय समारंभं, जावजीवाइं वज्जए॥ ३६॥

पापरूप तीक्ष्ण और चारों ओर से धारयुक्त शस्त्र जैसा होने से, सभी प्रकार से दु:खपूर्वक आश्रय लिया जा सके ऐसा अनेक जीवों का संहारक शस्त्र ऐसे पापकारी अग्नि का आरंभ अर्थात् अग्नि को प्रज्वलित करना नहीं चाहते। (जाततेज: उत्पन्न समय से तेजस्वी)

पूर्व, पश्चिम, उर्ध्व, अधो, विदिशाओं, दक्षिण, उत्तर में अर्थात् सभी दिशाओं में अग्नि दाह्य पदार्थ को जला देती है।

यह अग्नि सभी प्राणीओं का घात करने वाली है इसमें कोई संशय नहीं। इस कारण से साधु दीपक के लिए या ताप के लिए किंचित् मात्र भी उसका आरंभ नहीं करते।

दुर्गति वर्द्धक अग्नि से उत्पन्न दोषों को ज्ञात कर साधु जावज्जीव तक अग्निकाय के आरंभ का त्याग करें यह नवम संयम स्थान है। ३३ से ३६।

आगमकारों ने अग्नि को दीर्घकाय शस्त्र, सर्वभक्षी तीक्ष्ण शस्त्र आदि उपमाओं से संबोधित कर इसका मनमाने अपवादों को महत्व देकर उपयोग करनेवालों को सूचित किया है कि आप श्रमण लोग जो कुछ भी तप, जप, आचार पालन शासन सेवा आदि के द्वारा पुण्योपार्जन करते हो उसे क्षण भर में अग्नि का आरंभ जलाकर भस्म कर देगा।

दशम स्थान "वाउकाय जयणा"

अणिलस्स समारंभं, बुद्धा मन्नंति तारिसं।
सावज्ज बहूलं चेअं, नेअं ताईहिं सेविअं॥ ३७॥

तालिअंटेण पत्तेण, साहाविहुअणेण वा।
न ते वीइउमिच्छंति, वेआवेऊण वा परं॥ ३८॥
जं पि वत्थं व पायं वा, कंबलं पायपुंछणं।
न ते वाय मुईरंति, जयं परिहरंति अ॥ ३९॥
तम्हा एअं विआणित्ता, दोसं दुग्गइ वड्ढणं।
वाउकाय समारंभं, जावजीवाइं वज्जऐ॥॥४०॥

तीर्थंकर भगवंत वाउकाय के आरंभ को अग्नि के आरंभ जैसा मानते हैं अत: अधिक पापार्जन करवाने वाले वायुकाय के आरंभ का सेवन नहीं करते।

ताड़ के पंखे से, पत्ते को, शाखा को, हिलाकर आदि किसी भी प्रकार से मुनि हवा नहीं लेते। दूसरे को हवा करने हेतु नहीं कहते एवं करने वाले की अनुमोदना नहीं करते।

वस्त्र, पात्र, कबंल, रजोहरण पादप्रोंछन आदि धर्मोपकरण के द्वारा मुनि वायु की उदीरणा नहीं करते पर जयणापूर्वक वस्त्रपात्रादि का परिभोग करते हैं।

दुर्गतिवर्द्धक दोषों को जानकर मुनि भगवंत वाउकाय के समारंभ का त्याग करते हैं। यह दशम संयम स्थान है। ३७ से ४०।

एकादशम संयम स्थान "वनस्पतिकाय की जयणा"

वणस्सइं न हिंसंति, मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करणजोएणं, संजया सुसमाहिआ॥ ४१॥
वणस्सइं विहिंसंतो, हिंसई अ तयस्सिए।
तसे अ विविहे पाणे, चक्खुसे अ अचक्खुसे॥ ४२॥
तम्हा एअं विआणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं।
वणस्सइ समारंभं, जावजीवाइं वज्जए ॥४३॥

सुसमाहित श्रमण मन, वचन, काया रूप तीन योग कृत, कारित, अनुमोदित रूप तीन करण से वनस्पतिकाय की हिंसा नहीं करते। वनस्पति का विराधक दृश्य अदृश्य त्रस एवं दूसरे प्राणियों की हिंसा करता है।

अत: दुर्गतिवर्द्धक दोषों को जानकर जीवन पर्यंत वनस्पतिकाय के आरंभ का मुनि त्याग करे यह एकादशम संयम स्थान है। ४१से ४३॥

द्वादशम् संयम स्थान "त्रसकाय की जयणा"

तसकायं न हिंसंति, मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करण जोएणं, संजया सुसमाहिआ॥ ४४॥

तसकायं विहिंसंतो, हिंसई उ तयस्सिए।
तसे अ विविहे पाणे, चक्खुसे अ अचक्खुसे ॥ ४५॥
तम्हा एअं विआणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं।
तसकाय समारंभं, जावजीवाइं वज्जए॥ ४६॥

सुसमाहित श्रमण मन, वचन, काया रूप तीन योग कृत कारित अनुमोदित रुप तीन करण से त्रसकाय की हिंसा नहीं करते। त्रसकाय का, विराधक त्रस एवं अन्य दृश्य अदृश्य जीवों की विराधना करता है।

दुर्गतिवर्द्धक दोषों को जानकर जीवन पर्यन्त तक श्रमण त्रसकाय के आरंभ का त्याग करे यह द्वादशम संयम स्थान है।॥४४ से ४६॥

त्रयोदशम स्थान "अकल्पनीय का त्याग"

जाइं चत्तारि भुज्जाइं, इसिणाऽऽहार माइणि।
ताइं तु विवज्जंतो, संजमं अणुपालए॥ ४७॥
पिंडं सिज्जं च वत्थं च, चउत्थं पायमेव य।
अकप्पिअं न इच्छिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पिअं॥ ४८॥
जे नियागं ममायंति, कीअमुद्देसिआहडं।
वहं ते समणुजाणंति, इअ वुत्तं महेसिणा॥ ४९॥
तम्हा असण पाणाइं, कीअमुद्देसिआहडं।
वज्जयंति ठिअप्पाणो, निग्गंथाधम्मजीविणो॥ ५०॥

ऋषि मुनि, जो आहारादि चार अकल्पनीय है उसका, त्याग करते हुए संयम का पालन करे।

पिंड, शय्या, वस्त्र एवं चतुर्थ पात्र चारों में से जो कल्पनीय हो, वह ग्रहण करे, अकल्पनीय का त्याग करें।

जो श्रमण/ ऋषि नित्य/नियमित/निमंत्रित आहार, साधु के निमित्त कृत, उद्देशिक, घर से या ग्राम से सामने लाया हुआ आहारादि ग्रहण करें तो बनाने, लाने में जो विराधना हुई उसकी अनुमोदना साधु करता है। ऐसा महान् ऋषि श्री महावीर परमात्मा ने कहा है।

इस कारण से अशनपानाद्रि कृत, उद्देशिक एवं आहृत का त्याग होता है। सत्वयुक्त संयम रूप जीवन युक्त महामुनि। यह है त्रयोदशम संयमस्थान।४७ से ५०।

चतुर्दशम् संयम स्थान "गृहस्थ भाजन का त्याग"

कंसेसु कंसपाएसु, कुंडमोएसु वा पुणो।
भुंजंतो असणपाणाइं आयारा परिभस्सइ॥ ५१॥
सीओदगसमारंभे, भत्त धोअण-छड्डणे।
जाइं छिन्नंति (छिप्पंति) भूआइं, दिट्ठो तत्थं असंजमो॥ ५२॥

पच्छाकम्मं पुरेकम्मं, सियातत्थ न कप्पइ।
एयमट्ठं न भुंजंति, निग्गंथा गिहिभायणे॥ ५३॥

कांसे के प्याले, कांसे के पात्र एवं मिट्टी के कुंड मोद आदि गृहस्थ के बर्तन में अशन पानी आदि वापरने से श्रमण आचार से परिभ्रष्ट होता है। सुत्रकार श्री ने कारण दर्शाते हुए कहा है कि – साधु के निमित्त से सचित्त पानी से बर्तन धोने का आरंभ एवं वापरने के बाद पात्र धोकर पानी फेंक देने से पानी आदि अनेक जीवों का घात होता है ज्ञानियों ने उसमें असंयम देखा है।

गृहस्थ के बर्तनों में भोजन करने से पूर्व कर्म एवं पश्चात कर्म की संभावना है ऐसे दोष के कारण निर्ग्रंथ ऋषि, मुनि गृहस्थ के पात्र में आहार नहीं करते। यह चतुर्दशम संयम स्थान है।५१ से ५३।

त्रेपनवी गाथा के भावार्थ को देखते हुए गृहस्थ के बर्तन बाह्य उपयोग में लेते समय भी पूर्व कर्म एवं पश्चात् कर्म की संभावना का दोष है। अत: गृहस्थ के बर्तन, वस्त्रादि के उपयोग में विवेक का होना अति आवश्यक है नहीं तो अशुभ कर्म का विशेष बंध होता है।

पंचदशम स्थान "पर्यंक वर्जन"

आसंदीपलिअंकेसु, मंचमासालएसु वा।
अणायरिअमज्जाणं, आसइत्तु सइत्तुवा॥ ५४॥
नासंदी पलिअंकेसु, न निसिज्जा न पीढए।
निग्गंथाऽपडिलेहाए, बुद्धवुत्तमहिट्ठगा॥ ५५॥
गंभीर विजया एए, पाणा दुप्पडिलेहगा।
आसंदी पलिअंको अ, एअमट्ठं विवज्जिआ॥ ५६॥

मंचिका, पलंग, मंच, आरामकुर्सी आदि आसन पर बैठना और सोना श्रमणों के लिए अनाचरित है। क्योंकि उसमें छिद्र होने से जीव हिंसा होना संभव है।

जिनाज्ञानुसार आचरण कर्ता मुनि आचार्यादि राजदरबार आदि स्थानों में जाना पड़े, बैठना पड़े तो अपवाद मार्ग से आसन, पलंग कुर्सी, बाजोट आदि को पूंजकर पडिलेहण कर बैठे, बिना पडिलेहण उसका उपयोग न करें।

मंचिका, पलंग, आरामकुर्सी आदि गम्भीर छिद्र वाले, अप्रकाश आश्रययुक्त होने से, उनमें रहे हुए सुक्ष्मजीव, दृष्टि गोचर न होने से, उस पर बैठने से, जीव विराधना होती है अत: ऐसे आसनों का त्याग करना। सारांश है। दुष्प्रति लेखन वाले आसन आदि का उपयोग न करना यह पंद्रहवाँ संयम स्थान है॥ ५४ से ५६॥

"सोलहवाँ स्थान गृहान्तर निषद्या वर्जन"

गोअरग्ग पविट्ठस्स, निसिज्जा जस्स कप्पइ।
इमेरिस मणायारं, आवज्जइ अबोहिअं॥ ५७॥
विवत्ती बंभचेरस्स, पाणाणं च वहे वहो।
वणीमगपंडिग्घाओ, पडिकोहो अगारिणं॥ ५८॥
अगुत्ती बंभचेरस्स, इत्थीओ वा वि संकणं।
कुसील वड्ढणं ठाणं, दूरओ परिवज्जए॥ ५९॥
तिण्हमन्नयरागस्स, निसिज्जा जस्सकप्पइ।
जराए अभिभूअस्स, वाहिअस्स तवस्सिणो॥ ६०॥

गोचरी गया हुआ श्रमण गृहस्थ के घर बैठता है तो आगे कहे जाने वाले मिथ्यावोत्पादक अनाचार की प्राप्ति होती है। ५७।

ब्रह्मचर्य का नाश, परिचय की वृद्धि से आधाकर्मादि आहार से भक्ति के प्रसंग में प्राणीवध, भिक्षुकों को अंतराय, गृहस्थ को कभी क्रोध उत्पन्न हो जाय, ब्रह्मचर्य व्रत का भंग हो, गृहस्वामी को अपनी स्त्री पर शंका उत्पन्न हो, इस कारण से कुशीलवर्द्धक स्थानों का मुनि को दूर से त्याग करना चाहिये। ५८,५९।

अपवाद मार्ग दर्शाते हुए सुत्रकार श्री ने कहा है कि निम्न तीन प्रकार के श्रमणों को कारण से बैठना कल्पता है।

(१) जराग्रस्त अति वृद्ध,
(२) व्याधिग्रस्त रोगी,
(३) तपस्वी उत्कृष्टतपकारक।

ये तीनों गोचरी गये हों और थकान के कारण बैठना पड़े तो बैठ सकते हैं। यह सोलहवाँ संयम स्थान है। ६०।

सप्तदशम स्थान "स्नान वर्जन"

वाहिओ वा अरोगी वा, सिणाणं जो उ पत्थए।
वुक्कं तो होइ आयारो, जढो हवइ संजमो॥ ६१॥
संति मे सुहुमा पाणा, घसासु भिलुगासु अ।
जे अभिक्खु सिणायंतो, विअडेणुप्पंलावए॥ ६२॥
तम्हा ते न सिणायंति, सीएण उसिणेण वा।
जावज्जीवं वयं घोरं, असिणाण महिट्ठगा॥ ६३॥
सिणाणं अदुवाकक्कं, लुद्धं पउमगाणि अ।
गायसुव्वट्टणट्ठाए, नायरंति कयाइवि॥ ६४॥

जो साधु व्याधिग्रस्त रोगी या निरोग स्वस्थ है, और वह स्नान करने की इच्छा करता है, तो

उसके आचार का उल्लंघन होता है एवं वह संयम से भ्रष्ट हो जाता है। स्नान से जीवविराधना का स्वरूप दर्शाते हैं। पोली भूमि एवं दरार युक्त भूमि में सूक्ष्म जीव रहते हैं। अचित्त जल से स्नान करने से वे जीव प्लावित होते हैं। उन जीवों को पीड़ा होती है। इसी कारण से शीत या उष्ण जल से मुनि स्नान नहीं करते पर जीवनपर्यंत स्नान न करने रूप दुष्कर व्रत का आश्रय करते हैं। और स्नान या चंदनादि लेप, लोध्र, केसर आदि विशेष सुगंधित द्रव्यों से उबटन आदि नहीं करते। यह सतरहवाँ संयम स्थान है।६१ से ६४।

व्याधि ग्रस्त मुनि को स्नान न करने का विधान कर अस्नान व्रत की महत्ता स्पष्ट की है। वर्तमान युग में अस्नानव्रत में जो दरारें गिर रही हैं। उस पर साधु साध्वी भगवंतों को अवश्य चिंतन करना चाहिये।

अष्टादशम स्थान "विभूषा वर्जन"

नगिणस्स वा वि मुंडस्स, दीहरोमन हंसिणो।
मेहुणा उवसंतस्स, किं विभूसाइ कारिअं॥ ६५॥
विभूसा वत्तिअंभिक्खू, कम्मं बंधइ चिक्कणं।
संसार सायरे घोरे, जेणं पडइ दुरूत्तरे॥ ६६॥
विभूसावत्तिअे चेअं, बुद्धा मन्नंति तारिसं।
सावज्ज बहुलं चेअं, नेअं ताईहिं सेविअं॥ ६७॥

नग्न, मुंड, दीर्घरोम एवं नख युक्त जिन कल्पि मुनि, प्रमाणोपेत वस्त्रयुक्त स्थविर कल्पि मुनि, मैथुन से उपशांत होने से उन्हें विभूषा का क्या प्रयोजन?

जो लोग मुनिवेश में विभूषा करते हैं वे विभूषा के निमित्त से दारुण कर्म का बंध करते हैं। जिससे दुस्तर संसार सागर में गिरते हैं।

विभूषा करने के विचार को भी तीर्थंकर गणधर भगवंत विभूषा जैसा मानते हैं। इसलिए आर्त ध्यान द्वारा अत्यधिक पापयुक्त चित्त आत्मारामी मुनिओं द्वारा आसेवित नहीं है। यह अठारहवाँ संयम स्थान है।६५ से ६७।

प्राय: जीर्ण वस्त्र परिधान कर्ता मुनि विभूषा का विचार ही उत्पन्न होने नहीं देता। विभूषा ब्रह्मचर्य व्रत के लिए तालपूट विष समान है। उज्वल वस्त्र परिधान एक प्रकार की विभूषा है। आर्द्र वस्त्र से अंग स्वच्छ करना विभूषा है।

"आचार पालन का फल"

खवंति अप्पाणममोह दंसिणो, तवे रया संजमअज्जवे गुणे।
धुणंति पावाइं पुरे कडाइं, नवाइं पावाइं न ते करंति ॥६८॥
सओवसंता अममा अकिंचणा, सविज्जविज्जाणु गया जसंसिणो।
उउप्पसन्ने विमलेव चंदिमा,सिद्धिं विमाणाइं उवेंति तायिणो। त्ति बेमि॥ ६९॥

अमोहदर्शी, तप, संयम, ऋजुतादि गुण में रक्त मुनि, आत्मा को शुद्ध विशुद्ध करते हुए पूर्वसंचित कर्मों को खपाते हैं। नये अशुभ कर्मों का बंध नहीं करते।

नित्य उपशांत, ममतारहित, परिग्रह रहित, परलोकोपकारिणी आत्मविद्या सहित, यशस्वी, शरद ऋतु के चंद्र सम निर्मल-भावमलरहित और स्व पर रक्षक उपर दर्शित आचार पालक मुनि मोक्ष में जाते हैं। अगर कर्मशेष रहे तो वे वैमानिक देव लोक में जाते है। ६८,६९।

श्री शय्यंभवसूरीश्वरजी कहते है कि - हे मनक! ऐसा मैं अपनी बुद्धि से नहीं किन्तु तीर्थंकर गणधर आदि महर्षियों के उपदेश से कहता हूँ।

''सुवाक्य शुद्धि अध्ययन उपयोगी शब्दार्थ''

परिसंखाय जानकर **पन्नवं** बुद्धिमान **सव्वसो** सभी प्रकार से **विणयं** शुद्ध प्रयोग करना सीखे। १। **सच्चा** सत्य **अवत्तव्वा** न बोलने योग्य **नाइन्ना** अनाचीर्ण। २। **अक्कसं** अकर्कश **समुप्पेह** अच्छी प्रकार से विचार करके बोली हुई **असंदिद्धं** संदेह रहित। ३। **अट्ठं** विषय **अन्नं** दूसरा **नामेइ** प्रतिकुल। ४। **वितहं** सत्य **तहामुत्तिं** तथा मूर्ति, सत्य जैसा, **पुट्ठो** स्पर्शीत, स्पष्ट **किं पूणं** फिर क्या कहना? **वअे** बोले। ५। **वक्खामो** कहेंगे **णे** हमारा **णं** यह हमारा **एसकालंमि** भविष्यकाल में **संपयाइअमट्ठे** वर्तमान, भूतकाल की बातें। ६। **पच्चुप्पणं** वर्तमान **जमट्ठं** जिस वस्तु के लिए **अेवमेवं** यह इसी प्रकार। ८। **निद्दिसं** कहे बोले। १०। **फरुसा** कठोर **गुरूभूओवघाइणी** अधिक जीवों का घात करने वाली। ११। **पंडगं** नपुंसक **तेणं** चोर को। १२। **उवहम्मइ** दुःख उत्पन्न होना **आयार भाव दोसन्नू** आचार, भाव, दोष का जानकार। १३। **होले** मूर्ख **गोल** यार से जन्मा **साणे** श्वान **वसुल** छीनालज **दुम्मअे** भिक्षुक **दुहअे** दुर्भाग्य। १४। **अज्जिअे** दादी **पज्जिअे** परदादी **माउसिउ** मासी **अन्नित्ति** हे अन्ने **हले-हलित्ति** हले-अली **पिउसिअे** पितृश्वसा **भायणिज्ज** भाणजी **धुअे** पुत्री **णत्तुणिअ** पौत्री **भट्टे** हे भट्टे **गोमिणि** गोमिनी। १५,१६। **नामधिज्जेण** नाम लेकर **णं** इसको **बूआ** बुलावे **इत्थीगुत्तेण** स्त्री के गौत्र से **जहारिहं** यथायोग्य **अभिगिज्ज** देशकालानुसारी **आलविज्ज** एक बार **लविज्ज** बार-बार। १७। **बप्पो** पिता **चुल्लपिउ** चाचा। १८,१९। **जाइत्ति** जाति के आश्रय से। २०। **पसुं** पशु को **सरीसवं** सर्प-अजगर को **धुले** विस्तारवान् **पमेइले** अतिमेद युक्त **वज्झे** वध योग्य **पइवे** पकाने योग्य। २२। **परिवूढ** परिवृद्ध, बलवान **उवचिअ** उपचित देह युक्त **संजाअे** संजात, युवा **पीणिअे** पुष्ट **महाकाय** बड़े शरीर वाला। २३। **दुज्जाओ** दुहने योग्य, **दम्मा** दमन करने योग्य **गोरहग** वृषभ **वाहिमां** वहन योग्य **रहजोग** रथयोग्य। २४। **जुवं गवित्ति** युवानवृषभ **धेणुं** प्रसुता धेनु **रसदय त्ति** दुध देनेवाली **रहस्से** छोटा **महल्लअे** बडा **संवहणि** धोरी। २५। **गंतुं** जाकर **पव्वयाणि** पवर्तों पर **अलं** योग्य **पासाअे** प्रासादों के **दोणिणं** द्रोण, जल कुंडी काष्ठ की। २६,२७। **चंगबेरे** काष्ठपात्र **नंगले** हल **मइअ** बीज बोने के बाद खेत को सम करने हेतु उपयोग में आने वाला कृषि का एक उपकरण। **जंतलट्ठी** यंत्र की लकड़ी, कोल्हू **नाभि** नाड़ी, पहिये का मध्य भाग, **गंडिआ** अहरन, एरण **सिआ** होगा। २८। **जाणं** रथ **उवस्सअे** उपाश्रय में। २९ **जाइमंता** ऊँची जात के **दीह** दीर्घ **वट्टा** गोलाकार **पयायसाला** विस्तरित शाखायुक्त **विडियां** प्रति शाखायुक्त **दरिसणित्ति** देखने योग्य। ३०,३१। **पायखज्जाइं** पकाकर खाने योग्य **वेलोइयाइं** अत्यंत पके हुए **टालाइं** कोमल **वेहिमाइं** दो भाग करने योग्य। ३२। **असंथडा** असमर्थ

बहुनिव्वडिमा फला बहुनिर्वर्तित **प्राय:निष्पन्न** फल वाले है, गुठलीयुक्त फल है **वइज्ज** बोले **बहुसंभूआ** बहुसंभूत,/एक साथ उत्पन्न हुए बहुत फलवाले **भूअरुप** भूतरुप/कोमल बिना गुठली के।३३। **ओसहिओ** औषधियाँ, डांगर आदि अनाज **नीलिआओ छवीइ** वाल, चौला, कठोल **लाइमा** काटने योग्य **भज्जिमाओ** भूनने योग्य **पिहुरवज्ज** चिड़वा बनाकर खाने योग्य।३४। **रुढा** अंकुरित, **बहुसंभूआ** निष्पन्न प्राय: **थिरा** स्थिर, **ओसढा** ऊपर उठी हुई **गब्भिआओ भूट्टों** से रहित है **पसूआओ भूट्टों** से सहित है **ससाराउ** धान्य - कण सहित है।३५। **संखडिं** जीमनवार **वज्झित्ति** वध करने योग्य **किच्चं** काम, कृत्य **कज्जं** करने योग्य **सुतित्थि** सुख पूर्वक तैरने योग्य **त्ति** ऐसा **आवगा** नदियाँ।३६। **पणिअट्ठं** पणितार्थ, धन के लिए जान की बाजी लगानेवाला **समाणि** सरिखे, समान **तित्थाणि** पार करने का मार्ग **विआगरे** कहे।३७। **पूण्णाओ** पूर्ण भरी हुई **कायत्तिज्ज** शरीर से तैरने योग्य **पाणिपिज्ज** प्राणीयों को जल पीने योग्य।३८। **बहुवाहडा** प्राय: भरी हुई **अगाहा** अगाध **बहुसलिलुप्पिलोदगा** दूसरी नदीयों के प्रवाह को पीछे हटाने वाली **बहुवित्थडोदगा** पानी से अधिक विस्तारवाली।३९। **निट्ठिअं** पूर्व में हो गये **किरमाणं** हो रहा है, किया जा रहा है।४०। **सुहडे** अच्छी प्रकार हरण किया है **मडे** मर गया **सुनिट्ठिए** अच्छी प्रकार नष्ट हुआ **सुलट्ठित्ति** सुंदर।४१। **पयत्त** प्रयत्न से **पयत्तलट्ठ** दीक्षा ले तो इस सुंदर कन्या का रक्षण करना। **कम्महेउअं** कर्म है जिसका हेतु **पहारगाढ** ग्राढ प्रहार लगा हुआ।४२। **परग्घं** अधिक मूल्यवान, **अउलं** अतुल **अविक्किअं** इसके समान दूसरी वस्तू नहीं **अविअत्तं** अप्रीतिउत्पन्नकारक।४३। **अणुवीइ** विचारकर।४४। **पणीयं** करीयाणा।४५। **पणिअट्ठे** किराणा का पदार्थ **समुप्पन्ने** प्रश्न हो जाने पर।४६। **आस** बैठे **अेहि** आओ **वयाहि** उस स्थान पर जाओ।४७। **वुग्गहे** संग्राम में ।५०। **वाओ** पवन **वुट्ठं** वर्षा **धायं** सुकाल **सिवं** उपसर्गरहित।५१। **समुच्छिअे** उमड़ रहा है **उन्नअं** उन्नत्त हो रहा है **पओअे** मेघ **बलाहये** मेघ।५२। **(गुज्झाणुचरिअ)** देव द्वारा सेवित **दिस्सं** देखकर।५३। **ओहारिणी** निश्चयात्मक **माणवो** साधु।५४। **अणुवीइ** विचारकर **सयाणमज्जे** सत्पुरुषों में।५५। **सामणिअे** श्रमणभाव में **जअे** उद्यमवंत **हिअमाणुलोमिअं** हितकारी, मधुर, अनुकुल।५६। **निद्धुणे** दूर कर **धूतमलं** पापमल **लोगमिणं** इस लोक में **तहा परं** उसी प्रकार परलोक में।५७।

सप्तम् सद्वाक्यशुद्धि अध्ययनम्

संबंध

छट्ठे अध्ययन में महाचार (साध्वाचार) का वर्णन किया। साध्वाचार के वर्णन में भाषा का प्रयोग अनिवार्य है। भाषा के सदोष एवं निर्दोष दो भेद हो सकते हैं। मुनि सतत निरंतर निरवद्य भाषा का (निर्दोष भाषा का) प्रयोग करता है। अत: सप्तम अध्ययन में भाषा शुद्धि हेतु प्ररुपणा की है।

भाषा के प्रकार एवं स्वरूप

चउण्हं खलु भासाणं, परिसंखाय पन्नवं।
दुण्हं तु विणयं सिक्खे, दो न भासिज्ज सव्वसो॥१॥
जाअ सच्चा अवत्तव्वा, सच्चामोसाअ जा मुसा।
जा अ बुद्धेहिं नाइन्ना, न तं भासिज्ज पन्नवं॥२॥

असच्चमोसं सच्चं च, अणवज्जमकक्कसं।
समुप्पेहमसंदिद्धं, गिरं भासिज्ज पन्नवं॥ ३॥

प्रज्ञावान् श्रमण चारों भाषाओं के स्वरूप को ज्ञातकर दो भाषाओं को निर्दोष जानकर शुद्ध प्रयोग करना सीखे। निर्दोष दो भाषा का उपयोग करें। दो का सर्वथा त्याग करें। १। भाषा के चार भेद है[१] सत्य[२] असत्य[३] सत्यामृषा(मिश्र) कुछ सच्च कुछ असत्य[४] असत्यामृषा व्यवहार भाषा न सत्य न असत्य॥ इन चार भाषाओं में सत्य भी सावद्य पापकारी हो तो न बोलें, पर पीड़ाकर सत्य भी न बोलें, मिश्र भाषा एवं असत्य भाषा ये दो भाषा तो सर्वथा न बोलें क्योंकि तीर्थंकरों के द्वारा अनाचीर्ण है चतुर्थ व्यवहारभाषा भी अयोग्य रीति से न बोलें, योग्य प्रकार से बोले। २। कौन-सी भाषा बोलना उसका स्वरूप दर्शाते हुए कहा है कि-प्रज्ञावान् मुनि व्यवहार भाषा एवं सत्यभाषा जो निर्दोष, कठोरता रहित, स्व-पर उपकारी और संदेह रहित शंकारहित हो वह बोले। १से ३।

"मोक्ष मार्ग में प्रतिकुल भाषा का त्याग"

एअं च अट्ठमन्नं वा, जं तु नामेइ सासयं।
स भासं सच्च मोसंपि, तं पि धीरो विवज्जए॥ ४॥
वितहंपि तहामुत्तिं, जं गिरं भासए नरो।
तम्हा सो पुट्ठो पावेणं, किं पुणं जो मुसं वए॥ ५॥

पूर्व में निषिध भाषा सावद्य एवं कठोर भाषा और उसके जैसी दूसरी भी भाषा जो मोक्ष मार्ग में प्रतिकुल है ऐसी व्यवहार एवं सत्य भाषा भी बुद्धिमान् धैर्य युक्त मुनि न बोले। ४।

जो मुनि सत्य दिखनेवाली असत्य वस्तु का आश्रय लेकर बोलता है वह मुनि पाप से लिप्त होता है। तो जो पुरुष असत्य बोलता है उसका क्या कहना ? यानि पुरुष वेषधारी स्त्री को पुरुष कहने वाला पाप बांधता है तो सर्वथा असत्य बोलनेवाला पाप से लिप्त होता ही है। ५।

"काल संबंधी शंकित भाषा का त्याग"

तम्हा गच्छामो वक्खामो, अमुगं वा णे भविस्सइ।
अहं वा णं करिस्सामि, एसो वा णं करिस्सइ॥ ६॥
एवमाइ उ जा भासा, एस कालंमि संकिआ।
संपयाइअमट्ठे वा, तंपि धीरो विवज्जए॥ ७॥
अईअंमि अ कालंमि, पच्चुप्पण्णमणागए।
जमट्ठं तु न जाणिज्जा, एवमेअं ति नो वए॥ ८॥

अई अंमि अ कालंमि, पच्चुप्पन्नमणागए।
जत्थ संका भवे तं तु, एवमेअं ति नो वए॥ ९॥

असत्य होते हुए सत्य वस्तु के स्वरुप को प्राप्त पदार्थ के विषय में बोलने से पाप कर्म का बंध होता है तो हम जाएँगे, "कहेंगे" हमारा वह कार्य हो जाएगा, मैं यह कार्य करुंगा या यह हमारा कार्य करेगा इत्यादि भविष्यकाल संबंधी भाषा उसी प्रकार वर्तमान एवं भूतकाल संबंधी भाषा बुद्धिमान साधु को नहीं बोलना चाहिये। क्योंकि कहे अनुसार कार्य न हुआ तो असत्य के दोष के साथ जन समुदाय में लघुता आदि होती है।

अतीत, वर्तमान एवं भविष्य काल संबंधी जिस वस्तु के स्वरुप को, जिस कार्य के स्वरुप को सम्यक् प्रकार से न जाना है उसके संबंध में यह ऐसा ही है, यह ऐसा ही था इस प्रकार न बोले। ६ से ८।

अतीत, भविष्य, एवं वर्तमान काल संबंधी जहाँ शंका है उसके विषय में ऐसा ही है ऐसा न कहें। ९।

"तीनों काल संबंधी भाषा का प्रयोग"

अईअंमि अ कालंमि, पच्चुप्पण्णमणागए।
निस्संकिअं भवे जं तु, एवमेअं तु निद्दिसे॥ १०॥

भूत, भविष्य एवं वर्तमान काल में जिस पदार्थ के, कार्य के विषय में नि:शंक हो और वह निष्पाप हो तो यह इस प्रकार है, ऐसा साधु कहे।

"परुष एवं अतीव भूतोपघाती भाषा का त्याग"

तहेव फरुसा भासा, गुरु भूओवघाइणी।
सच्चावि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो॥ ११॥

और परुष (कठोर) भावस्नेह रहित एवं जिससे प्राणीयों का उपघात विशेष हो ऐसी पापोत्पादक भाषा का अगर वह सत्य है तो भी न बोलें। ११।

"प्रयोजनवश भी ऐसे न बुलावें"

तहेव काणं काणत्ति, पंडगं पंडगत्ति वा।
वाहिअं वा वि रोगत्ति, तेणं चोरत्ति नो वए॥ १२॥
एएणउन्नेण अट्ठेणं, परो जेणुवहम्मइ।
आयार भाव दोसन्नू, न तं भासिज्ज पन्नवं॥ १३॥
तहेव होले गोलित्ति, साणे वा वसुलित्ति अ।
दुमए दुहए वा वि, नेवं भासिज्ज पन्नवं॥ १४॥

अज्जिए पज्जिए वा वि, अम्मो माउसिअत्ति अ।
पिउस्सिए भायणिज्जत्ति, धुए ण तुणिअत्ति अ॥ १५॥
हले हलित्ति अग्गित्ति, भट्टे सामिणि गोमिणि।
होले गोले वसुलित्ति, इत्थिअं नेव मालवे॥ १६॥

इसी प्रकार काने को काना, नपुंसक को नपुंसक व्याधियुक्त को रोगी, चोर को चोर न कहें। इससे अप्रीति लज्जानाश, स्थिर रोग ज्ञान विराधना आदि दोष उत्पन्न होते हैं।

वचन नियमन संबंधी आचार, चित्त के प्रद्वेष या प्रमाद संबंधी भाव एवं दोष के ज्ञाता बुद्धिमान मुनि पूर्वोक्त एवं दूसरे भी शब्दों द्वारा पर पीड़ाकारी वचन न बोलें।

और बुद्धिमान् मुनि मूर्ख, जारपूत्र, कुत्ता, शुद्र, दुमक, दुर्भागी ऐसे शब्द भी किसी को न कहें।

हे आर्यिके(दादी) हे प्रार्यिके (परदादी) माँ, मौसी, बुआ, भानजी, पुत्री, पौत्री, हले, अली, अन्ने, भट्टे, स्वामिनी, गोमिनी, होले, गोले, छीनालण (वृषले) आदि शब्दों से स्त्री को न बुलाऐं। इसमें कितने ही शब्द निंदावाचक हैं कितने शब्द प्रीति उत्पादक हैं। ऐसे शब्दों से निंदा, द्वेष, एवं प्रवचन की लघुता होती है। १२ से १६।

(विशेष-महाराष्ट्र में 'हले' और "अन्ने" तरुण स्त्री के लिए सम्बोधन शब्द है। लाट देश में उसके लिए हला शब्द का प्रयोग होता था। "भट्टे" पुत्ररहित स्त्री के लिए। "सामिणी""गोमिणी" सम्मान सूचक संबोधन। "होले""गोल""वसुले" गोल देश में प्रयुक्त प्रिय आमंत्रण वचन।)

कैसे बुलावें?

नाम धिज्जेण णं बूआ, इत्थी गुत्तेण वा पुणो।
जहारिहमभिगिज्झ, आलविज्ज लविज्ज वा॥ १७॥

प्रयोजन वश मुनि स्त्री को नाम लेकर बुलावे, गोत्र से बुलावे, यथायोग्य देशकालानुसारी गुण दोष का विचार कर एक बार या बार-बार बुलावें।

पुरुषों को कैसे न बुलावें कैसे बुलावें?

अज्जए पज्जए वा वि, बप्पो चुलपिउ त्ति अ।
माउला भाइणिज्जत्ति, पुत्ते नत्तुणिअ त्ति अ॥ १८॥
हे हो हलि त्ति अन्नित्ति, भट्टे सामिअ गोमिअ।
होल गोल वसुलि त्तिं पुरिसं नेव-मालवे॥ १९॥
नामधिज्जेण जं बूआ, पुरिस गुत्तेण वा पुणो।
जहारिहमभिगिज्झ, आलविज्ज लविज्ज वा॥ २०॥

हे आर्यक, पार्यक, पिता, चाचा, मामा, भानजा, पुत्र पौत्र, हे, भो, हल, अन्न, भट्ट, स्वामी, गोमी, होल, गोल, वसुल, इत्यादि नामों से पुरुषों को न बुलावें। ऐसे बुलाने से राग-द्वेष अप्रीति आदि दोषों की उत्पत्ति होती हैं।

जिस पुरुष को बुलाना हो उसका नाम लेकर, या गौत्र से या यथायोग्य गुण-दोष का विचारकर एक बार या बार-बार बुलावें। १८ से २०।

"पशुओं के विषय में भाषा का प्रयोग"

पंचिंदिआण पाणाणं, एस इत्थी अयं पुयं।
जाव णं न वि जाणिज्जा, ताव जाइत्ति आलवे॥ २१॥
तहेव माणुसं पसुं, पक्खिं वा वि सरीसवं।
थूले पमेइले वज्जे, पाइमे त्ति अ नो वए॥ २२॥
परिवूढ त्ति णं बूआ, बूआ उवचिअ त्ति अ।
संजाए पीणिए वा वि, महाकायत्ति आलवे॥ २३॥
तहेव गाओ दुज्झाओ, दम्मा दोरहग त्ति अ।
वाहिमा रहजोगि त्ति, नेव भासिज्ज पन्नवं॥ २४॥
जुवं गावित्ति णं बूआ, धेणुं रसदयत्ति अ।
रहस्से महल्लए वा वि, वए संवहणि त्ति अ॥ २५॥

पंचेन्द्रिय प्राणियों में यह स्त्री रुप गाय है या पुरुष रुप वृषभ है ऐसा निर्णय न हो तो तब तक प्रसंगवश बोलना पड़े तो गाय की जाति आदि जातिवाचक शब्द का प्रयोग करें।

इसी प्रकार मनुष्य, पशु-पक्षी सर्प, अजगरादि के विषय में यह स्थूल है, मेदयुक्त है, वध्य है(वाह्य है) पाक्य है, पकाने योग्य है। इस प्रकार मुनि न बोले। इससे अप्रीति, वधादि की शंका सह अशुभ बंध का निमित्त है।

प्रयोजनवश आवश्यक हो तो, बलवान है, (परिवृद्ध है) उपचित देह युक्त है, युवा है, पुष्ट है, महाकाय युक्त है इस प्रकार उपयोग पूर्वक बोले।

प्रज्ञावान् मुनि गायादि दुहने योग्य है, वृषभ दमन करने जैसे हैं जोतने जैसे हैं, भार वहन करने योग्य हैं, रथ में जोड़ने योग्य हैं इस प्रकार न बोलें। पाप का कारण एवं प्रवचन की लघुता का कारण है।

प्रयोजनवश कहना पड़े तो गाय, बैल युवा है, गाय दूध देनेवाली है, बैल छोटा है, बड़ा है, धोरी वृषभ है इस प्रकार निर्दोष निष्पाप भाषा का प्रयोग करें। २१ से २५।

"वनस्पति के विषय में भाषा का प्रयोग"

तहेव गंतुमुज्जाणं, पव्वयाणि वयाणि अ।
रुक्खा महल्ल पेहाए, नेवं भासिज्ज पन्नवं॥ २६॥

अलं पासाय-खंभाणं, तोरणाणं गिहाण अ।
फलिहग्गल-नावाणं, अलं उदग-दोणिणं॥ २७॥
पीढए चंगबेरे अ, नंगले मइयं सिआ।
जंतलट्ठी व नाभी वा, गंडिआ व अलं सिआ॥ २८॥

आसणं सयणं जाणं, हुज्जा वा किंचुवस्सए।
भूओवघाइणिं भासं, नेवं भासिज्ज पन्नवं॥ २९॥

उद्यान में, पर्वत पर, वन में, प्रयोजनवश जाने पर प्रज्ञावान मुनि बड़े वृक्षों को देखकर ऐसा न कहें कि ये वृक्ष प्रासाद बनाने में, स्तंभ में, नगरद्वार में, घर बनाने में, परिघ में (नगर द्वार की आगल) अर्गला (गृहद्वार की आगल) नौका बनाने में, उदक द्रोणी (रेंट को-जल को धारण करने वाली काष्ठ की बनावट) आदि बनाने लायक है।

इसी प्रकार ये वृक्ष, पीठ के लिए (पटिये के लिए) काष्ठ पात्र के लिए, हल के लिए, मयिक बोये हुए खेत को सम करने हेतु उपयोग में आनेवाला कृषि का एक उपकरण, कोल्हू यंत्र की लकड़ी (नाडी) नाभि पहिये का मध्य भाग, अहरन के लिए समर्थ है।

इन वृक्षों में कुर्सी, खाट, पलंग, रथ आदि यान, या उपाश्रय उपयोगी काष्ठ है। इस प्रकार पूर्वोक्त सभी प्रकार की भाषा वनस्पति काय की एवं उसके आश्रय में रहने वाले अनेक प्राणियों की घातक होने से प्रज्ञावान् मुनि ऐसी भाषा न बोले। २६ से २९।

तहेव गंतुमुज्जाणं, पव्वयाणि वणाणि अ।
रुक्खा महल्ल पेहाए, एवं भासिज्ज पन्नवं॥ ३०॥
जाइमंता इमे रुक्खा, दिहवट्टा महालया।
पयायसाला विडिमा, वए दरिसणि त्ति अ॥ ३१॥
तहा फलाइं पक्काइं, पायखज्जाइं नो वए।
वेलाइयाइं टालाइं, वेहिमाइं त्ति नो वए॥ ३२॥
अ संथडा इमे अंबा, बहु निव्वडिमा फला।
वइज्ज बहु संभूआ, भूअरुव त्ति वा पुणो॥ ३३॥

उद्यान, पर्वत, और वन में या वन की ओर जाते हुए बड़े वृक्षों को देखकर प्रयोजनवश बुद्धिमान् साधु इस प्रकार बोले कि- ये वृक्ष उत्तम जातिवंत है, दीर्घ, गोल, अतीव विस्तार युक्त है, विशेष शाखाओं से युक्त है, प्रशाखायुक्त है, दर्शनीय है। ३०, ३१।

ये आम्र आदि के फल पक गये हैं, पकाकर खाने योग्य है ऐसा न कहे। ये फल परिपूर्ण पक गये हैं उन्हें उतार लेने चाहिये, ये कोमल है, या ये दो भाग करने लायक है ऐसा न कहें। ३२।

प्रयोजनवश कहना पड़े तो ये आमवृक्ष फल धारण करने में अब असमर्थ है,। गुठली युक्त अधिक फल वाले हैं,। एक साथ उत्पन्न हुए अधिक फलवाले हैं। इस प्रकार निर्दोष भाषा का मुनि प्रयोग करें। ३३।

तहेवो तहोसहिओ पक्काओ, नीलिआओ छवीइ अ।
लाइमा भज्जिमाउत्ति, पिहुखज्ज त्ति नो वए॥ ३४॥
रूढा बहु संभूआ, थिरा ओसढा वि अ।
गब्भिआओ पसूआओ, ससाराउ त्ति आलवे॥ ३५॥

चाँवल, गेहूँ आदि औषधियाँ तथा वाल, चना आदि पक गये हैं, काटने योग्य है, भूनने योग्य है, पोंक करके खाने योग्य है। ऐसा साधु न कहे।

प्रयोजनवश कहना पड़े तो ये गेहूँ आदि औषधियाँ अंकूरित है, निष्पन्न प्राय: है, परिपूर्ण रूप से तैयार है, ऊपर उठ गई हैं, उपघात से निकली है, भूट्टों से रहित है, भूट्टों से सहित है, चाँवल आदि तैयार हो गये है इस प्रकार निर्दोष भाषा का प्रयोग करें। ३४, ३५।

"संखडी आदि के विषय में भाषा का प्रयोग"

तहेव संखडिं नच्चा, किच्चं कज्जं ति नो वए।
तेणगं वा वि वज्झित्ति, सुतित्थि त्ति अ आवगा॥ ३६॥
संखडिं संखडिं बूआ, पणिअट्ठं ति तेणगं।
बहुसमाणि तित्थाणि, आवगाणं विआगरे॥ ३७॥

संखडी जीमनवार, मृत्युभोज, करने लायक है, चोर वध करने लायक है, नदी सुखपूर्वक उतरने योग्य है। ऐसा साधु न कहे। ३६।

प्रयोजनवश कहना पड़े तो संखडी को संखडी कहे, चोर को धन हेतु जीवन की बाजी लगानेवाला, नदी का मार्ग प्राय: सम है। ऐसी भाषा साधु बोले। ३७।

"नदी के विषय में भाषा का प्रयोग"

तहा नईओ पुन्नाओ, कायतिज्ज त्ति नो वए।
नावाहिं तारिमाओ त्ति, पाणिपिज्ज त्ति नो वए॥ ३८॥
बहुवाहडा अगाहा, बहुसलिलुप्पिलोदगा।
बहुवित्थडोदगा आवि, एवं भासिज्ज पन्नवं॥ ३९॥

ये नदियाँ भरी हुई हैं, हाथों से तैर सके ऐसी हैं, नौका से दूसरे किनारे जा सके ऐसी हैं, किनारे पर रह कर प्राणी पानी पी सके ऐसी हैं ऐसा साधु न कहे। ३८।

प्रयोजन वश कहना पड़े तो प्राय: नदी भरी हुई हैं। प्राय: अगाध है। बहुसलिला, अधिक जलयुक्त है। दूसरी नदियों के द्वारा जल का वेग बढ़ रहा है। नदी के किनारे आर्द्र हो जाय ऐसी अतीव विस्तार वाली है विस्तीर्ण जलयुक्त है। बुद्धिमान् श्रमण इस प्रकार बोलें। ३९।

"विविध विषयों में भाषा का प्रयोग"

तहेव सावज्जं जोगं, परस्सट्ठाए निट्ठिअं।
कीरमाणं ति वा नच्चा, सावज्जं नालवे मुणी॥ ४०॥

दूसरों के निमित्त से हो रहे एवं पूर्व में किये गये सावध कार्यों के विषय में मुनि सावद्य वचन न बोलें।४०।

सुकडित्ति सुपक्किति, सुच्छिन्ने सुहडे मडे।
सुनिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सावज्जं वज्जए मुणी॥४१॥

सभा भवन अच्छा बनाया या भोजन आदि अच्छा बनाया, सहस्रपाक तेल आदि या घेवर आदि अच्छा पकाया, वन, जंगल, पत्रशाक आदि अच्छा छेदा है, शाक की तिक्तता अच्छी है, लोभी का धन हरण हुआ, अच्छा हुआ यह शत्रु मर गया, या यह अच्छा हुआ दाल या सत्तु में घी आदि मिलाया अभिमानी का धन नष्ट हुआ यह अच्छा हुआ, यह कन्या अत्यंत सुंदर है या चाँवल आदि अच्छे हैं। ऐसे सावद्य वचन साधु न बोलें।४१।

पयत्त पक्के(क्क) त्ति व पक्कमालवे, पयत्तछिन्न त्ति व छिन्नमालवे।
पयत्तलट्ठि(ट्ठ) त्ति व कम्महेउअं पहार गाढ त्ति व गाढमालवे॥४२॥

प्रयोजनवश कहना हो तो, सुपक्व को प्रयत्न पूर्वक पका हुआ, सुछिन्न को प्रयत्न पूर्वक छेदा हुआ, सुंदर कन्या को दीक्षा देने में आवे तो प्रयत्न पूर्वक पालन करना पड़े, सर्व कृतादि क्रिया कर्म हेतुक है, गाढ प्रहार युक्त व्यक्ति को देखकर इसे गाढ प्रहार लगा है इस प्रकार यतना युक्त साधु बोले जिससे अप्रीति आदि दोष उत्पन्न न हो।४२।

सव्वुक्कसं परघंवा, अउलं नत्थि एरिसं।
अविक्किअमवत्तव्वं, अविअत्तं चेव नो वए॥४३॥

क्रय, विक्रय आदि व्यवहारिक कार्य में कोई पूछे तो या बिना पूछे, यह पदार्थ सर्वोत्कृष्ट है निसर्गतः सुंदर है, महामूल्यवान है, इसके जैसा दूसरा पदार्थ नहीं है, यह पदार्थ सुलभ है, अनंत गुण युक्त है, अप्रीति कारक है। इस प्रकार साधु न बोले ऐसे वक्तव्य से अधिकरण, अंतराय आदि दोषों की उत्पत्ति होती हैं।४३।

सव्वमेअं वइस्सामि, सव्वमेअं ति नो वए।
अणुवीई सव्वं सव्वत्थ, एवं भासिज्ज पन्नवं॥४४॥

संदेशों के आप ले के समय में मैं सर्व कहूंगा या ऐसा ही उन्होंने कहा था ऐसा न कहें। सभी स्थानों पर मृषा वाद का दोष न लगे इसका पूर्ण विचार कर बुद्धिमान् साधु भाषा का प्रयोग करें।

"क्रय-विक्रय के विषय में"

सुक्कीअं वा सुविक्कीअं, अकिज्जं किज्जमेव वा।
इयं गिण्हं इयं मुंच, पणीयं नो वियागरे॥४५॥

क्रय-विक्रय के विषय में अच्छा खरीदा/अच्छा बेचा/यह खरीदने योग्य नहीं है। यह खरीदने योग्य है। यह ले लो। यह बेच दो। इस प्रकार साधु न बोलें क्योंकि ऐसे वक्तव्य से अप्रीति अधिकरणादि दोष लगते हैं।४५।

अप्पग्घे वा महग्घे वा, कए वा विक्कए वि वा।
पणिअट्ठे समुप्पन्ने, अणवज्जं विआगरे॥ ४६॥

अल्प मूल्य वाले, बहुमूल्य वाले पदार्थ के क्रय-विक्रय के विषय में गृहस्थ के प्रश्न में साधु निष्पाप, निर्दोष उत्तर दे कि "इस क्रय-विक्रय के विषय में साधुओं का संबंध न होने से हमें बोलने का अधिकार नहीं है। ४६।"

"असंयत को क्या न कहें"?

तहेवासंजयं धीरो, आस एहिं करेहि वा।
सयं चिट्ठ वयाहि त्ति, ने वं भासिज्ज पन्नवं॥ ४७॥

धीर एवं बुद्धिमान् साधुओं को गृहस्थ से बैठो, आओ, यह कार्य करो, सो जाओ, खड़े रहो, जाओ इत्यादि नहीं कहना। ये सभी जीवोपघात के कारण हैं। ४७।

"साधु किसे न कहें? किसे कहें"?

बहवे इमे असाहू लोए वुच्चंति साहुणो।
न लवे असाहुं साहुत्ति, साहुं साहु त्ति आलवे॥ ४८॥
नाण-दंसण-संपन्नं, संजमे अ तवे रयं।
एवं गुण-समाउत्तं, संजयं साहुमालवे॥ ४९॥

जन समुदाय रुप लोक में बहुत सारे असाधु साधु के नाम से बुलाये जाते हैं (जो मोक्षमार्ग की साधना न करने से असाधु हैं) ऐसे असाधु को मुनि, साधु न कहें। पर जो मोक्ष मार्ग का साधक साधु है उसे ही साधु कहें।

ज्ञान-दर्शन सहित संयम एवं तप में रक्त हो ऐसे गुण समायुक्त संयमी साधु को साधु कहें। पर मात्र द्रव्य लिंगधारी को साधु न कहें। ४८, ४९।

"युद्ध के समय भाषा का उपयोग"

देवाणं मणुआणं च तिरिआणं च वुग्गहे।
अमुगाणं जओ होउ, मा वा होउ त्ति नो वए॥ ५०॥

देव, मनुष्य या तिर्यंचों को आपस में युद्ध के समय में किसी का जय एवं किसी का पराजय हो ऐसा साधु न बोले। ५०।

"ऋतु काल में भाषा का प्रयोग"

वाओ वुट्ठं च सीउण्हं, खेमं धायं, सिवंति वा।
क्या णु हुज्ज एआणि? मा वा होउ त्ति नो वए॥ ५१॥

गर्मी की मौसम में पवन, वर्षा की ऋतु में वर्षा एवं शीत ऋतु में सर्दी, ताप, क्षेम(रक्षण) सुकाल, उपद्रव रहितता आदि कब होंगे या ये कब बंद होंगे इत्यादि न कहें। ऐसा कहने से अधिकरणादि दोष, प्राणी पीड़न एवं आर्त्त ध्यानादि दोष लगते हैं। ५१।

तहेव मेहं व नहं न माणवं, न देव देवत्ति गिरं वइज्जा।
समुच्छिए उन्नए वा पओए, वइज्ज वा वुट्ठ बलाहये त्ति॥५२॥

इसी प्रकार मेघ, आकाश और राजादि को देखकर यह देव है ऐसा न कहें पर यह मेघ उमड़ रहा है, उन्नत हो रहा है, वर्षा हुई है, ऐसा कहना। मेघ, आकाश, राजादि को देव कहने से मिथ्यात्व एवं लघुत्वादि दोष होते हैं।५२।

अंतलिक्ख त्ति णं बूआ, गुज्झाणुचरिअ त्ति अ।
रिद्धिमंतं नरं दिस्स रिद्धिमंतं ति आलवे॥५३॥

आकाश को अंतरिक्ष, मेघ को गुह्यानुचरित (देव से सेवित) कहें। ये दो शब्द वर्षा के लिए कहना और ऋद्धि युक्त व्यक्ति को देखकर यह ऋद्धिमान् है ऐसा कहना।५३।

"वाक्शुद्धि अध्ययन का उपसंहार"

तहेव सावज्जणुमोअणी गिरा,ओहारिणी जा य परोवघाइणी।
से कोह लोह भय हास माणवो, न हास माणो वि गिरं वइज्जा॥५४॥

विशेष में मुनि सावध कार्य को अनुमोदनीय, अवधारिणी(संदिग्ध के विषय में असंदिग्ध) निश्चयात्मक या संशयकारी, परउपघातकारी भाषा का प्रयोग न करें। क्रोध से, लोभ से, भय से, हास्य से एवं किसी की हंसी मजाक करते हुए नहीं बोलना। ऐसे बोलने से अशुभ कर्म का विपुल बंध होता है।

सुवक्क सुद्धिं समुपेहिआ मुणी, गिरं च दुट्ठं परिवज्जए सया।
मिअं अदुट्ठं, अणुवीइ भास ए, सयाण मज्झे लहइ पसंसणं॥५५॥

इस प्रकार मुनियों को उत्तम वाक्शुद्धि को ज्ञातकर दुष्ट सदोष भाषा नहीं बोलना चाहिए, पर मित भाषा, वह भी निर्दोषवाणी, विचारपूर्वक बोलना चाहिए। ऐसे बोलने से वह मुनि सत्पुरुषों में प्रशंसा पात्र का होता है। प्रशंसा प्राप्त करता है।

भासाइ दोसे अ गुणे अ जाणिआ, तीसे अ दुट्ठे परिवज्जए सया।
छसु संजए सामणिए सया जए, वइज्ज बुद्धे हिअ माणुलोमिअं॥५६॥

भाषा के दोष एवं गुणों को यथार्थ जानकर, दुष्ट भाषा का वर्जक, छज्जीव निकाय में संयमवान् और चारित्र पालन में उद्यमवंत ज्ञानी साधु सदोष भाषा का निरंतर त्याग करें एवं हितकारी,परिणाम में सुंदर एवं अनुलोमिक/अनुकुल/मधुर भाषा का प्रयोग करें।

परिक्ख भासी सुसमाहि-इंदिए, चउक्कसाया-वगए अणिस्सिए।
स णिद्धुणे धुतमलं पुरे कडं, आराहए लोगमिणं तहा परं॥५७॥ त्ति बेमि॥

गुण, दोष की परीक्षा कर भाषक, इंद्रियों को वश में रखनेवाला, क्रोधादि चार कषाय पर नियंत्रण करनेवाला, द्रव्य भाव निद्रा रहित(ममत्व के बंधन से रहित) ऐसे महात्मा जन्मान्तर के पूर्वकृत पापमल को नष्ट कर वाणी संयम से वर्तमान एवं भावीलोक की आराधना करता है।

श्री शय्यंभवसूरीश्वरजी कहते हैं कि हे मनक! ऐसा मैं अपनी बुद्धि से नहीं कहता हूँ तीर्थंकर गणधर आदि महर्षियों के कथनानुसार कहता हूँ॥

"सुवाक्य शुद्धि नामक सप्तम अध्ययन समाप्त"

अष्टम आचार प्रणिधि अध्ययन उपयोगी शब्दार्थ

आयारप्पणिहिं आचारनिधि, आचार में दृढ मानसिक संकल्प **भे** तुमको **उदाहरिस्सामि** कहुंगा।१। **इ इ** इस प्रकार।२। **अच्छण-जोअण** जीवरक्षणयुक्त **होअव्वं सिआ** होना चाहिअे।३। **लेलुं** पत्थर का ढेला, **भिंदे** टुकड़े करे **संलिहे** घिसे **सुसमाहिअे** निर्मल स्वभाव युक्त।४। **सिलावुट्ठं** ओले।५। **उदउल्लं** जलाद्र।६। **अलायं** अलात जलती लकड़ी, **अच्चिं** अग्नि से दूर हुई ज्वाला।८। **सिणेह** स्नेह-सूक्ष्म, **पुप्फसुहुमं** पुष्प-सूक्ष्म, **पाणुत्तिंगं** प्राणी-सूक्ष्म, उत्तिंग-सूक्ष्म कीटिका नगर।१५। **धुवं** नित्य।१७। **सिंघाणजल्लिअं** नाक, कान का मेल।१८। **परागारं** गृहस्थ के घर में।१९। **अक्खाउ** कहने के लिए **अरिहइ** योग्य है।२०। **केण उवाअेण** कोइ भी उपाय से।२१। **निट्ठाणं** सर्व गुण से युक्त आहार **रसनिज्जूढं** नीरस आहार, **भद्दगं** अच्छा।२२। **उंछं** धनाढ्य के घर।२३। **आसुरत्तं** क्रोध के प्रति।२४। **पेमं** राग **नाभिनिवेसअे** न करे **अहिआसअे** सहन करे।२६। **अत्थंगयंमि** अस्त हो जाने पर **आइच्चे** सूर्य **पुरत्था** सुबह में **अणुग्गअे** उदय होने के पूर्व।२८। **अतिंतिणे** प्रलाप न करें, **अचवले** स्थिर **उअरे दंते** स्वयं के पेट को वश में रखनेवाले **न खिंसअे** निंदा न करे।२९। **अत्ताणं** स्वयं का **समुक्कसे** प्रशंसा।३०। **कट्टु** करके, **आहम्मिअं** अधार्मिक, **संवरे** आलोचना करे।३१। **परक्कमं** सेवनकर, **सुई** पवित्र **वियडभावे** प्रकट भाव के धारक **असंसत्ते** अप्रतिबध्द।३२। **अमोघं** सफल, **उवव्वायअे** आचरण में लेना।३३। **अणिग्गहिआ** वश न किये हुए, अनिगृहीत, **कसिणा** संपूर्ण **पुणब्भवस्स** पूनर्जन्म।४०। **रायणिअेसु** रत्नाधिक **पउंजे** करे **धुवसीलयं** निश्चयशीयल को, **कुम्मुव्व** कूर्मसम **अलीण पलीण गुत्तो** आलीन-प्रलीन-गुप्त, अंगोपांगों को सम्यक् प्रकार से रखने वाला **परक्कमिज्जा** प्रवृत्त हो।४१। **मीहो** एक दूसरे के साथ, **सप्पहासं** हँसी-मजाक के वचन ।४२। **जुंजे** जोड़े **अनलसो** आलसरहित।४३। **पारत्त** परलोक, **पुजुवासिज्जा** सेवा करे **अत्थविणिच्छयं** अर्थ के निर्णय को।४४। **पणिहाय** प्रणिधान एकाग्रचित्त।४५। **किच्चाण** आचार्य जो उनके **उरं समासिज्ज** जंघा पर जंघा चढाकर **गुरूणंतिअे** गुरू के पास।४६। **पिट्ठिमसं** परोक्ष में निंदा।४७। **अहिअगामिणीं** अहित करनारी।४८। **पडिपुन्नं** स्पष्ट उच्चार युक्त, प्रगट ऐसी, **अयंपिरं** न ऊँचे, **अणुव्विग्गं** अनुद्विग्न युक्त **निसिर** बोले **अत्तवं** चेतनायुक्त/चेतनावंत।४९। **अहिज्जगगं** अध्ययन करने वाले **वायविक्खलिअं** वचन बोलते समय स्खलित होना, भूल जाना ।५०। **भूआहिगरणं पयं** प्राणीओं के लिए पीड़ा का स्थानक।५१। **अन्नट्ठं** अन्य के हेतु, **पगडं** किया हुआ **लयणं** स्थान **भइज्ज** सेवे।५२। **विवित्ता** दूसरे से रहित।५३। **कुक्कुड पोअस्स** मुर्गे के बच्चे को, **कुललओ** बिल्ली से, **विग्गहओ** शरीर से।५४। **चित्त भित्तिं** चित्रित **निज्झाअे** देखे **सुअलंकिअं** अच्छे अलंकार युक्त **भक्खरं-पिव** सूर्य को **जैसे पडिसमाहरे** खींच ले।५५। **पडिछिन्नं** कटे हुए।५६। **अत्तगवेसिस्स** आत्मार्थी के **तालउडं** तालपूट।५७। **पच्चंगं** प्रत्यंग **चारुल्लविअ** मनोहर आलाप **पेहिअं** दृष्टि को।५८। **मप्पुत्रेसु** मनोहरों में **नाभिनिवेसअे** न स्थापन करें **अणिच्चं** अनित्य।५९। **विणीअतण्हो** तृष्णा को दूर करता हुआ **सीईभूण** शीतल होकर।६०। **निक्खंतो** निकला है, **अणुपालिज्जा** पालन करे **आयरिअसंमअे** आचार्य को बहु संयत।६१। **सेणाइ** सेना से **समत्तमाउहे** तपस्या आदि आयुधयुक्त **अहिट्ठिअे** करने वाला ऐसा साधु **सूरे** शूरवीर पुरुष के जैसा **परेसिं** दूसरे शत्रुओं को।६२। **सज्झाण** सद्ध्यान **अपावभावस्स** शुद्ध चित्तयुक्त **समीरिअं** अग्नि से तपा हुआ **रुपमल्लं** चांदी का मल **जोइणा** अग्नि से।६३। **अममे** ममता रहित, **विरायइ** शोभता है **कम्मघणंमि** कर्मरुप बादल **अवगअे** दूर होने पर **कसिणब्भपुडावगमे** समग्र बादल दूर होने पर।६४।

"संबंध"

पूर्व के अध्ययन में भाषा शुद्धि का वर्णन किया है। भाषा शुद्धि आचार पालक भव्यात्मा के लिए ही आत्मोपकारी है। आचारहीन व्यक्ति भाषा शुद्धि का उपयोग रखता है तो भी उसके लिए वह माया युक्त हो जाने से अशुभ कर्म बन्ध का कारण हो सकती है। भाषाशुद्धि आचार पालन युक्त ही उपयोगी है। अतः अष्टम अध्ययन में आचार की, साध्वाचार की प्ररुपणा श्री शय्यंभवसूरीश्वरजी म. सा. करते हैं।

"गुरु कथन"

आयार-प्पणिहिं लद्धुं, जहा कायव्व भिक्खुणा।
तं भे उदा हरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे॥ १॥

श्री महावीर परमात्मा से प्राप्त आचार प्रणिधि नामक अध्ययन में श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्यों से कहते हैं कि "मुझे जो आचार प्रणिधि प्राप्त हुई है वह मैं अनुक्रम से कहुंगा। सो तुम सुनो।" उस आचार निधि को प्राप्त कर, जानकर, मुनिओं को उस अनुसार पूर्ण रुप से क्रिया करना चाहिये। १।

"जीव"

पुढवी-दग-अगणिमारुअ, तण रुक्ख सबीयगा।
तसा अ पाणा जीव त्ति, इई वुत्तं महेसिणा॥ २॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, मूल से बीज तक तृण, वृक्ष और दो इंद्रियादि त्रस प्राणी, जीव है इन सब में जीव है। ऐसा श्री वर्धमान स्वामी ने कहा है। २।

"जीव रक्षा" "पृथ्वीकाय रक्षा"

तेसिं-अच्छण-जोएण, निच्चं होअव्वयं सिआ।
मणसा काय वक्केणं, एवं हवइ संजए॥ ३॥

इस कारण से भिक्षु को मन, वचन एवं काया से पृथ्वी आदि जीवों की रक्षा करनेवाला होना चाहिये। पृथ्वी आदि जीवों की रक्षा करनेवाला (अहिंसक रहनेवाला) ही संयमी, संयत होता है। ३।

पुढवीं भित्तिं सिलं लेलुं, नेव भिंदे न संलिहे।
तिविहेण करण जो एण, संजए सुसमाहिए॥ ४॥

सुविहित मुनि शुद्ध पृथ्वी, नदी किनारे की दिवार दरार, शिला और पत्थर के टुकड़े जो सचित्त हो उसका तीन करण तीन योग से छेदन, भेदन न करें, न कुरेदे। ४।

सुद्ध पुढवीए न निसीए, ससरक्खंमि अ आसणे।
पमज्जित्तु निसीइज्जा, जाइत्ता जस्स उग्गहं॥ ५॥

मुनि सचित्त पृथ्वी पर, सचित्त रज युक्त आसन पर न बैठें, पर अचित्त पृथ्वी आसन आदि हो तो आवश्यकता होने पर मालिक की अनुज्ञा लेकर, प्रमार्जन करके बैठें।५।

"अप्काय रक्षा"

सीओदगं न सेविज्जा, सिलावुट्ठं हिमाणि अ।
उसिणोदगं तत्त-फासुअं, पडिगाहिज्ज संजए॥६॥

मुनि, सचित्त जल, ओले, बरसात का जल, हिम, बरफ के पानी का उपयोग न करें, पर उष्ण जल तीन बार उबाला हुआ, अचित्त हो उसका उपयोग करें।६।

उदउल्लं अप्पणो कायं, नेव पुंछे न संलिहे।
समुप्पेह तहाभूअं, नो णं संघट्टए मुणी॥७॥

सचित्त जल से आद्र स्व शरीर को न पोंछे और हाथ आदि से न लुंछे। वैसे शरीर का किंचित् स्पर्श भी न करें। अर्थात् हाथ भी न लगावें वैसा ही रहने दें।७।

भीगे शरीर सहित उपाश्रय में आकर एक ओर खड़ा हो जाय कुदरतन शरीर सुख जाने के बाद दूसरा कार्य करें। भीगे वस्त्र एक ओर रख दे, सुख जाने के बाद उसे हाथ लगावें।

"अग्निकाय की जयणा"

इंगालं अगणिं अच्चिं, अलायं वा सजोइयं।
न उंजिज्जा न घट्टिज्जा, नो णं निव्वावए मुणि॥८॥

बिना ज्वाला के, अंगारे, अग्नि, लोहे के तपे हुए गोले में रही हुई अर्चि, ज्वालायुक्त अग्नि, अलात, जलती लकड़ी आदि को न प्रज्वलित करें, न स्पर्श करें, न बुझायें। किसी प्रकार से अग्नि काय का उपयोग न करें। (तीन करण तीन योग से)।८।

"वाउकाय की रक्षा"

तालिअंटेण पत्तेण, साहाए विहुयणेण वा।
न वीइज्ज अप्पणो कायं, बाहिरं वा वि पुग्गलं॥९॥

गर्मी के कारण मुनि वींजन ताड़पत्र के पंखे से, कमल आदि के पत्तों से,वृक्ष की शाखा से, मोरपींछी से स्व शरीर को हवा न करें, बाहर के अन्य पुद्गल को, चाय, दूध, पानी को ठंडा बनाने हेतु हवा न करें।९।

"वनस्पतिकाय की रक्षा"

तणरुक्खं न छिंदिज्जा, फलं मूलं च कस्सई।
आमगं विविहं बीअं, मणसा वि न पत्थए॥१०॥

मुनि तृण, वृक्ष, और किसी भी जाति के फल एवं मूल का छेदन भेदन न करें एवं विविध प्रकार के कच्चे बीजों को ग्रहण करने हेतु मन में विचार भी न करें।१०।

गहणे सु न चिट्ठिज्जा, बीएसु हरिएसु वा।
उदगंमि तहा निच्चं, उत्तिंग पणगेसु वा॥११॥

मुनि जहां खड़े रहने से वनस्पति का संघट्टा होता हो ऐसे वन निकुंजों (गाढझाड़ी) में खड़ा न रहे बीज, हरी वनस्पति, उदक या अनंत कायिक वनस्पति, उत्तिंग सर्पछत्र, पांचवर्ण की सेवाल/काई पर खड़ा न रहे।११।

"त्रसकाय की रक्षा"

तसे पाणे न हिंसिज्जा, वाया अदुव कम्मुणा।
उवरओ सव्वभूएसु, पासेज्ज विविहं जगं॥१२॥

मुनि वचन या काया से उपलक्षण से मन से भी त्रस जीव की हिंसा न करें। सभी प्राणीयों की हिंसा से उपरत होकर, निर्वेद की वृद्धि, हेतु कर्म से पराधीन नरकादि गति रुप विविध प्रकार के जगत के जीवों के विषय में विचार करें। आत्मौपम्य दृष्टि से देखें। गहराई से देखें।१२।

"अष्ट प्रकार के सूक्ष्म जीवों का स्वरुप"

"अट्ठसुहुमाई पेहाए, जाइं जाणित्तु संजए"
दयाहिगारी भूएसु, आस चिट्ठ सएहि वा॥१३॥

मुनि को आगे कहे जाने वाले आठ जाति के सूक्ष्म जीवों को जानना चाहिये। इन सूक्ष्म जीवों को जानने वाला जीव दया का अधिकारी मुनि बनता है। इन सुक्ष्म जीवों का ज्ञान प्राप्त करने के बाद बैठना, उठना खड़े रहना एवं सोना आदि क्रिया निर्दोष रुप से हो सकती है।१३।

कयराइं अट्ठ सुहमाइं, जाइं पुच्छिज्ज संजए।
ईमाइं ताइं मेहावी, आईक्खिज्ज विअक्खणे॥१४॥

वे आठ सूक्ष्म कौन-कौन से हैं? ऐसा संयमी शिष्य के प्रश्न के प्रत्युत्तर में विचक्षण मेधावी आचार्य गुरु भगवंत निम्न प्रकार से शिष्य का समाधान करें।१४।

वे आठ सूक्ष्म निम्न प्रकार से हैं :

सिणेहं पुप्फ सुहुमं च पाणुत्तिंगं तहेव य।
पणगं बीअ-हरिअं च, अंड सुहुमं च अट्ठमं॥१५॥
एवमेआणि जाणित्ता, सव्वभावेण संजए।
अप्पमंतो जए निच्चं, सव्विंदिअ समाहिए॥१६॥

आठ प्रकार के सूक्ष्म जीव निम्नांकित हैं-

(१) स्नेह सूक्ष्म हिम कण।
(२) पुष्प सूक्ष्म बड़ आदि के पुष्प।
(३) प्राणी सूक्ष्म: चले तब दिखाई दे स्थिर हो तब न दिखाई दे या रजकण के रुप में दिखाई दे।
(४) उत्तिंगसूक्ष्म : कीटिका नगर में रही हुई चिंटियाँ और दूसरे भी सूक्ष्म जीव।
(५) पनक सूक्ष्म : पंचवर्ण की काई, सेवाल, लीलफूल।
(६) बीज सूक्ष्म : तूष के बीज आदि।
(७) हरित सूक्ष्म : उत्पन्न होते समय पृथ्वी के समान वर्ण युक्त वनस्पति जीव।
(८) अंड सूक्ष्म : मक्षिका आदि के सूक्ष्म अंडे आदि।

सभी इंद्रियों में राग द्वेष रहित प्रवृत्त मुनि उपरोक्त अष्ट प्रकार के जीवों को जानकर अप्रमत्त भाव से शक्ति अनुसार उनकी रक्षा के लिए प्रयत्न करें। १५,१६।

"पडिलेहण के द्वारा जीव रक्षा"

धुवं च पडिलेहिज्जा, जोगसा पाय कंबलं।
सिज्ज-मुच्चार भूमिं च संथारं अदुवासणं॥ १७॥

स्वशक्ति होते हुए मुनि को प्रतिलेखना के समय पात्र, कंबल, उपाश्रय, स्थंडिल भूमि, संस्तारक और आसन आदि उपकरण की शास्त्रोक्त रीति से प्रतिलेखना कर, अहिंसा धर्म का पालन करना चाहिये। १७।

"परिष्ठापनिका समिति से जीव जयणा"

उच्चारं पासवणं, खेलं सिंघाण जल्लिअं।
फासुअं पडिलेहित्ता, परिठाविज्ज संजए॥ १८॥

मुनि भूमि का प्रतिलेखन कर, जहां जीव रहित भूमि हो वहां, बड़ी नीति, लघु नीति, कफ(श्लेष्म) कान एवं नाक का मेल, आदि परठने योग्य पदार्थों को परठकर साध्वाचार का पालन करें। १८।

"गृहस्थ के घर गोचरी के समय जीव जयणा"

पविसित्तुं परागारं, पाणट्ठा भोअणस्स वा।
जयं चिट्ठे मिअंभासे, न य रुवेसु मणं करे॥ १९॥

आहार पानी के लिए गृहस्थ के घर गया हुआ गीतार्थ मुनि वहां जयणापूर्वक खड़ा रहे, जयणापूर्वक मित/कम बोले, दातार स्त्री आदि की ओर मन केन्द्रित न करें। रुप न निरखें। इस प्रकार साध्वाचार का पालन करें। १९।

"रसनेन्द्रिय से जीव जयणा"

बहु सुणेहि कन्नेहिं, बहुं अच्छिहिं पिच्छई।
न य दिट्ठं सुअं सव्वं, भिक्खू अक्खाउमरिहइ॥ २०॥

रत्नत्रयी आराधनार्थे स्थान से बाहर गये हुए अथवा उसी स्थान पर मुनि ने कानों से बहुत सुना, आँखों से बहुत देखा वह सब, स्व पर अहितकारी सुना हुआ या देखा हुआ दूसरों को नहीं कहना चाहिये। २०।

सुअं वा जइ वा दिट्ठं, न लविज्जोवघाइअं।
न य केण उवाएणं, गिहिजोगं समायरे॥ २१॥

मुनि श्रवण किया हुआ या देखा हुआ जो परोपघातकारी हो उसे न कहें एवं किसी भी उपाय से गृहस्थोचित कार्य का आचरण न करें। २१।

निट्ठाणं रसनिज्जूढं, भद्दगं पावगंति वा।
पुट्ठो वा वि अपुट्ठो वा, लाभालाभं न निद्दिसे॥ २२॥

मुनि किसी के पूछने पर या बिना पूछे यह रस युक्त आहार सुंदर है, रस रहित आहार खराब है ऐसा न कहें एवं सरस निरस आहार की प्राप्ति में या न मिले तो यह नगर अच्छा या बूरा न कहें। दाता अच्छे हैं या बूरे हैं ऐसा न कहें। २२।

न य भोयणंमि गिद्धो, चरे उंछं अयंपिरो।
अ फासुअं न भुंजिज्जा, कीय-मुद्देसि-आहडं॥ २३॥

आहार लुब्ध बनकर धनवानों के या विशिष्ट घरों में ही न जाय। परंतु मौनपूर्वक धर्मलाभ मात्र का उच्चारण करते हुए सभी घरों में जाय, अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा ले। अप्रासुक, क्रीत, उद्देशिक, सामने लाया हुआ (आहृत) आहार प्रमादवश आ गया हो तो भी न खाएं। २३।

"सन्निधि के त्याग से जीव जयणा"

संनिहिं च न कुव्विज्जा, अणुमायं पि संजए।
मुहाजीवी असंबद्धे, हविज्ज जगनिस्सिए॥ २४॥

मुनि लेश/अंश-मात्र भी आहारादि का संचय न करें, निष्काम जीवी, अलिप्त मुनि ग्राम कुल आदि की निश्रा में न रहकर जनपद की निश्रा में रहकर जगत जीव की जयणा का ध्येय रखें। २४।

"साध्वाचार पालन से जीव जयणा"

लूहवित्ती सुसंतुट्ठे, अप्पिच्छे सुहरे सिआ।
आसुरत्तं न गच्छिज्जा, सुच्चाणं जिण सासणं॥ २५॥

मुनि रुक्ष वृत्ति युक्त, सुसंतुष्ट (संतोषी), अल्पेच्छु, अल्प इच्छा वाला, अल्प आहार वाला बनें और क्रोध विपाक के उपदेशक श्री वीतरागदेव के वचन को श्रवण करें, मुनि को क्रोध नहीं करना चाहिये। २५।

कन्न सुक्खेहिं सद्देहिं, पेमं नाभिनिवेसए।
दारुण कक्कसं फासं, काएण अहिआसए॥ २६॥

मुनि कर्णेन्द्रिय को सुखकारी वीणा, वाजिंत्र, रेडियो, लाउडस्पीकर आदि के शब्दों को श्रवण कर उसमें राग न करें (द्वेष भी न करें) एवं दारुण तथा कर्कश स्पर्श को काया से, स्पर्शेन्द्रिय से सहन न करें। २६।

खुहं पिवासं दुस्सिज्जं, सी-उण्हं अरइ भयं।
अहिआसे अवहिओ, देहदुक्खं महाफलं॥ २७॥

मुनि क्षुधा, प्यास, विषम भूमि, शीत, उष्ण ताप, अरति एवं भय को अदीन मन से, अव्यथित चित्त से सहन करें। क्योंकि भगवंत ने कहा है "देह में उत्पन्न होने वाले कष्टों को सम्यक् प्रकार से सहन करना, महान फल दायक है। २७।"

अत्थं गयंमि आईच्चे, पुरत्था अ अणुग्गए।
आहार-माईयं सव्वं, मणसा वि न पत्थए॥ २८॥

सूर्यास्त के बाद से सूर्योदय के पूर्व तक चारों प्रकार के आहार में से कुछ भी खाने की इच्छा मन से भी न करें। २८।

अतिंतिणे अचवले, अप्पभासी मिआसणे।
हविज्ज उअरे दंते, थोवं लद्धं न खिंसए॥ २९॥

मुनि दिन में आहार न मिले, निरस मिले तब प्रलाप न करे स्थिर, अल्पभाषी मिताहारी, और उदर का दमन करनेवाला हो। अल्प मिलने पर नगर या गांव की निन्दा करने वाला न हो। २९।

न बाहिरं परिभवे, अत्ताणं न समुक्कसे।
सुअलाभे न मज्जिज्जा, जच्चा तवस्सि बुद्धिए॥ ३०॥

जिस प्रकार मुनि किसी का तिरस्कार न करें, उसी प्रकार स्वयं का उत्कर्ष भी न करें। श्रुत लाभ (कुल-बल-रुप) जाति-तप एवं विद्या का मद भी न करें। ३०।

से जाणमजाणं वा कट्टु आहम्मिअं पयं।
संवरे खिप्पमप्पाणं, बीअं तं न समायरे॥ ३१॥

मुनि राग-द्वेष के कारण जान अनजान में मूल-उत्तर गुण की विराधना कर ले तो उस परिणाम से शीघ्र दूर होकर आलोयणादि ग्रहण कर दूसरी बार ऐसा न करें। ३१।

अणायारं परक्कम्मं, नेव गुहे न निन्हवे।
सूई सया वियडभावे, असंसत्ते जिइंदिए॥ ३२॥

निरंतर पवित्र बुद्धिवाले, प्रगट भाव वाले, अप्रतिबद्ध, और जितेन्द्रिय मुनि पूर्व के अशुभ कर्म के उदय से अनाचार सेवन कर ले तो अति शीघ्र गुरु के पास आलोचना लेवे उसको छुपावे नहीं और मैंने नहीं किया ऐसा अपलाप भी न करें। ३२।

अमोहं वयणं कुज्जा, आयरिअस्स महप्पणो।
तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए॥ ३३॥

मुनि को महात्मा, आचार्य भगवंत के वचन आज्ञा को सत्य करना चाहिये। आचार्य भगवंत के वचन को मन से स्वीकार कर क्रिया द्वारा उस को पूर्ण करना चाहिये। ३३।

अधुवं जीविअं नच्चा, सिद्धिमग्गं विआणिआ।
विणिआट्टिज्ज भोगेसु, आउं परिमिअमप्पणो॥ ३४॥

मुनि इस जीवन को अनित्य जानकर, स्वयं के आयुष्य को परिमित समझकर, ज्ञान-दर्शन चारित्र रुप मोक्ष मार्ग को निरंतर सुखरुप मानकर विचारकर बंधन के हेतुभूत विषयों से पीछे रहे। ३४।

बलं थामं च पेहाए, सद्धा मारुग्ग-मप्पणो।
खित्तं कालं च विन्नाय, तहप्पाणं निजुंजए॥ ३५॥
जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे॥ ३६॥

मुनि स्वयं की शक्ति, मानसिक बल, शारीरिक शक्ति, श्रद्धा और निरोगीता देखकर क्षेत्र काल जानकर उस अनुसार अपनी आत्मा को धर्म कार्य में प्रवर्तावे। ३५।

जब तक वृद्धावस्था पीड़ित न करें, व्याधि न बढ़े और इंद्रियाँ क्षीण न हो वहां तक शक्ति को बिना छुपाये धर्माचरण करें। ३६।

कोहं माणं च, मायं च, लोभं च पाव-वड्ढणं।
चमे चत्तारी दोसे उ, इच्छंतो हिअमप्पणो॥ ३७॥

क्रोध, मान, माया एवं लोभ ये चारों पापवर्द्धक भववर्द्धक है। मुनि अपना हित चाहने वाला है। अतः इन चार दोषों को छोड़े। कषाय सेवन न करें।

"कषाय से होने वाला अलाभ"

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय-नासणो।
माया मित्ताणि नासेई, लोभो सव्व-विणासणो॥ ३८॥

क्रोध प्रीति नाशक, मान विनय नाशक, माया मित्रता नाशक एवं लोभ सर्व विनाशक है। ३८।

"कषाय निरोध हेतु मार्गदर्शन"

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायं चज्ज भावेण, लोभं संतोसओ जिणे॥ ३९॥

उपशम भाव से क्रोध का नाश करे, मृदुता/कोमलता/नम्रता से मान का नाश करें, ऋजुभाव/सरलता से माया का नाश करें एवं संतोष/निर्लोभता/निस्पृहता से लोभ का विनाश करें। ३९।

"कषायों के कार्य"

कोहो अ माणो अ अणिग्गहीआ, माया अलोभो अ पवड्ढमाणा।
चत्तारि ए ए कसिणा कसाया, सिंचन्ति मूलाइं पुणब्भवस्स॥ ४०॥

अनिगृहीत/अंकुश में न रक्खे हुए वश नहीं किये हुए क्रोध, मान एवं प्रवर्द्धमान माया एवं लोभ ये चारों संपूर्ण या क्लिष्ट कषाय पुनर्जन्म रुप वृक्ष के तथाविद कर्मरूप जड़ को अशुभ भावरुप जल से सिंचन करते हैं।

"विविध नियमों से साध्वाचार पालन"

रायणिएसु विणयं पउंजे, धुवसीलयं सययं न हावईज्जा।
कुम्मुव्व - अल्लीण-पलीण-गुत्तो, परक्कमिज्जा तव-संजमंमि॥ ४१॥

मुनि, आचार्य, उपाध्याय, व्रतादि पर्याय में ज्येष्ठ साधुओं का अभ्युत्थानादिक रुप से विनय करें, ध्रुवशीलता (अठारह हजार शीलांग रथ में हानि का न होना) में स्खलना न होने दे, कर्म की तरह स्व अंगो पांगो को कायचेष्टा निरोध रुप आलीन, गुप्तिपूर्वक तप एवं संयम में प्रवृत्त बनें। ४१।

निद्दं च न बहु मन्निज्जा, सप्पहासं विवज्जए।
मिहो कहाहिं न रमे, सज्झायंमि रओ सया॥ ४२॥

मुनि निद्रा को बहुमान न दे, किसी की हंसी-मजाक न करें या अट्टहास न करें, मैथुन की कथा में रमण न करें अथवा मुनि, मुनि से विकथा न करें, परंतु निरंतर स्वाध्याय में आसक्त रहे। स्वाध्याय ध्यान में रमण करें। ४२।

जोगं च समणधम्मंमि, जुंजे अणलसो धुवं।
जुत्तो अ समणधम्मंमि, अट्ठं लहइ अणुत्तरं॥ ४३॥

मुनि अप्रमत्तता पूर्वक स्वयं के तीनों योगों को श्रमण धर्म में नियोजित करें। क्योंकि दस प्रकार

के श्रमणधर्म के पालन से मुनि अनुत्तर-अर्थ जो केवल ज्ञान स्वरुप है। उसे प्राप्त करता है।

ईहलोग-पारत्त-हिअं, जेणं गच्छई सुग्गई।
बहुस्सुअं पज्जुवासिज्जा, पुच्छिज्जत्थ विणिच्छयं॥ ४४॥

जिस श्रमण धर्म के पालन द्वारा इहलोक एवं पस्लोक का हित होता है। जिस से सुगति में जाया जाता है। उस धर्म के पालन में आवश्यक ज्ञानादि की प्राप्ति के लिए बहुश्रुत, आगमज्ञ, गीतार्थ, आचार्य भगवंत की मुनि सेवा करें और अर्थ के विनिश्चय के लिए प्रश्न पूछें। ४४।

"सद्गुरु के पास बैठने की विधि"

हत्थं पायं च कायं च पणिहाय जिइंदिए।
अल्लीण-गुत्तो निसिए, सगासे गुरुणो मुणी॥ ४५॥
न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण पिट्ठओ।
न य उरं समासिज्ज, चिट्ठिज्जा गुरुणंतिए॥ ४६॥

जितेन्द्रिय मुनि हाथ, पैर एवं शरीर को संयमित कर (न अति दूर, न अति निकट, आलीन, मन वाणी से संयत गुप्त) आलीन गुप्त होकर उपयोग पूर्वक गुरु के पास बैठे। ४५।

गुरु के बराबर, आगे, पीछे न बैठे। गुरु के सामने जंघा पर जंघा चढाकर पैर पर पैर चढाकर, न बैठे। ४६। (गुरु के सामने साढे तीन हाथ दूर मर्यादानुसार बैठना)

"भाषा के प्रयोग में साध्वाचार पालन"

अपुच्छिओ न भासिज्जा, भासमाणस्स अंतरा।
पिट्ठिमंसं न खाइज्जा, मायामोसं विवज्जए॥ ४७॥

गुरु आदि के बिना पूछे न बोले, बीच में न बोले, गुरुआदि के पीछे उनके दोषों का कथन न करें, माया मृषावाद का त्याग करें।

अप्पत्तिअं जेण सिआ, आसु कुप्पिज्ज वा परो।
सव्वसो तं न भासिज्जा, भासं अहिअगामिणिं॥ ४८॥

अप्रीति उत्पादक क्रोधोत्पादक स्वपर अहितकारी एवं द्वय लोक विरुद्ध भाषा न बोलें।

दिट्ठं मिअं असंदिद्धं, पडिपुन्नं विअं जिअं।
अयं पिर-मणुव्विग्गं, भासं निसिर अत्तवं॥ ४९॥

आत्मार्थी मुनि दृष्टार्थ विषय, स्वयं ने देखे हुए पदार्थ संबंधी मित, शंका रहित, प्रतिपूर्ण, प्रगट, परिचित, वाचालता रहित (उंचे आवाज से नहीं) अनुद्विग्न, उद्वेग न करावे, ऐसी भाषा मुनि बोले। ४९।

आयार पन्नत्तिधर, दिट्ठिवाय-महिज्जगं।
वायविक्खलिअं नच्चा, न तं उवहसे मुणी॥ ५०॥

आचार प्रज्ञप्ति के धारक एवं दृष्टिवाद के अध्येता संभवत: प्रकृति, प्रत्यय, लिंग, काल, कारक, वर्ण में स्खलित हो गये हों, बोलने में प्रमादवश भूल हो गई हो, तो उनका उपहास न करें।५०।

"निमित्त मंत्र तंत्र से रहित साध्वाचार पालन"

नक्खत्तं सुमिणं जोगं, निमित्तं मंत-भेसजं।
गिहिणो तं न आइक्खे, भूआहिगरणं पयं॥५१॥

मुनि नक्षत्र, स्वप्न, वशीकरणादि योग, निमित्त मंत्र, औषध आदि गृहस्थों से न कहें। कारण है कि कहने से एकेन्द्रियादि जीवों की विराधना होती है। गृहस्थों की अप्रीति दूर करने हेतु कहें कि इन कार्यों में मुनियों को बोलने का अधिकार नहीं है।

"मुनि कहां रहे?

अन्नट्ठं पगडं, लयणं, भइज्ज सयणासणं।
उच्चार भूमि-संपन्नं, ईत्थी-पसु-विवज्जिअं॥५२॥

दूसरों के लिए बनी हुई, स्थंडिल मात्रा की भूमि सहित, स्त्री, पशु रहित स्थान में मुनि रहे एवं संस्तारक और पाट पाटला आदि दूसरों के लिए बने हुए प्रयोग में लें।५२।

मुनि परिचय किससे करें?

विवित्ता अ भवे सिज्जा, नारीणं न लवे कहं।
गिहि संथवं न कुज्जा, कुज्जा साहूहिं संथवं॥५३॥

दूसरे मुनि या भाई-बहन से रहित एकान्त स्थान में अकेली स्त्रिओं को मुनि धर्म कथा न कहें, शंकादि दोषों का संभव है, उसी प्रकार गृहस्थियों का परिचय मुनि न करें मुनि मुनियों से परिचय करे।५३।

"स्त्री से दूर रहने हेतु उपदेश"

जहा कुक्कुड-पोअस्स, निच्चं कुललओ भयं।
एवं खु बंभयारिस्स, ईत्थी-विग्गहओ भयं॥५४॥
चित्तभित्तिं न निज्झाए, नारिं वा सु-अलंकिअं।
भक्खरं पिव दट्ठूणं, दिट्ठिं पडिसमाहरे॥५५॥
हत्थ-पाय-पडिच्छिन्न, कन्न-नास-विगप्पिअं।
अवि वाससयं नारिं बंभयारी विवज्जए॥५६॥
विभूसा ईत्थि-संसग्गो, पणीअं रस भोअणं।
नरस्सत्त-गवेसिस्स, विसं तालउडं जहा॥५७॥

अंग-पच्चंग-संठाणं, चारुल्लवि अ-पेहिअं।
इत्थीणं तं न निज्झाए, कामराग-विवड्ढणं॥ ५८॥

जैसे मुर्गी के बच्चे को नित्य बिल्ली से भय रहता है। वैसे स्त्री शरीर से ब्रह्मचारी मुनि को भय रहता है। अत: मुनि स्त्री परिचय से सर्वथा दूर रहे।५४।

दिवार पर लगे स्त्री के चित्र को न देखें, सचेतन वस्त्राभूषण से अलंकृत या सादी वेशभूषा वाली स्त्री की ओर न देखें, सहज नजर जाने पर भी उसे मध्यान्ह के समय सूर्य के सामने गई हुई दृष्टि स्वयं खिंच जाती है। उसी प्रकार दृष्टि को खिंच ले।५५।

("भिक्खरं-पिव" शब्द का प्रयोग कर शास्त्रकारों ने सामान्य से भी स्त्री के सामने देखने का मना किया है। तो धार्मिकता के नाम पर मुनि संस्था के कतिपय मुनि वीडियो, टी.वी. को प्रोत्साहन दे रहे हैं वह अपनाने योग्य है या नहीं यह स्वयं को सोचना है)

ब्रह्मचारी मुनि हाथ, पैर से छिन्न, नाक, कान से छिन्न, ऐसी सौ वर्ष की आयुवाली वृद्धा नारी से भी परिचय न करें। युवा नारियों के परिचय का तो सर्वथा निषेध ही है।५६।

आत्मकल्याणार्थी मुनि के लिए विभूषा, स्त्रीजन परिचय, प्रणीत रस भोजन, तालपूट विष समान है। तालपूट विष शीघ्र मारक है। वैसे ये तीनों शीघ्रता से भावप्राण नाशक है। ब्रह्मचर्य घातक है।५७।

आत्मार्थी मुनि स्त्री के मस्तकादि अंग नयनादि प्रत्यंग की आकृति को, सुंदर शरीर को, उसके मनोहर नयनों को न देखें। क्योंकि वे विषयाभिलाष की वृद्धिकारक है।५८।

"पुद्गल परिणाम का चिंतन"

विसएसु मणुन्ने सु, पेमं नाभिनिवेसए।
अणिच्चं तेसिं विन्नाय, परिणामं पुग्गलाण य॥ ५९॥

जिन वचनानुसार शब्दादिक परिणाम रुप में परिणत पुद्गल के परिणाम को अनित्य जानकर मनोज्ञ विषयों में राग न करें एवं अमनोज्ञ शब्दादि विषयों में द्वेष न करें। क्योंकि सुंदर पुद्गल कारण की प्राप्ति से असुंदर, असुंदर पुद्गल कारण की प्राप्ति से सुंदर/मनोहर हो जाते हैं। अत: पुद्गल परिणामों में राग द्वेष न करें।५९।

पुग्गलाणं, परिणामं, तेसिं नच्चा जहा तहां।
विणीअ तण्हो विहरे, सीईं भूणण अप्पणा॥ ६०॥

आत्मार्थी मुनि पुद्गलों की शुभाशुभ परिणमन क्रिया को जानकर, उसके उपभोग में तृष्णारहित होकर एवं क्रोधादि अग्नि के अभाव से शीतल होकर विचरें। ६०।

"प्रवज्जा के समय के भावों को अखंडित रखना"

जाइ सद्धाई निक्खंतो परिआयट्ठाण-मुत्तमं।
तमेव अणुपालिज्जा, गुणे आयरिअ संमए॥ ६१॥

उत्तम चारित्र ग्रहण करते समय जो आत्मश्रद्धा, जो भाव थे, उसी श्रद्धा को पूर्ववत् अखंडित रखकर चारित्र पालन करें और आचार्य महाराज, तीर्थंकर भगवंत आदि सम्मत्त मूलोत्तर गुणों को अप्रतिपाति श्रद्धापूर्वक चढते परिणाम से पालन करें। ६१।

तवं चिमं संजम-जोगयं च, सज्झाय-जोगं च सया अहिट्ठिए।
सूरे व सेणाइ समत्त-माउहे, अलमप्पणो होइ अलं परेसिं॥ ६२॥

द्वादश प्रकार के तप, षट्काय रक्षा रुप संयम, योग, स्वाध्याय, वाचनादि रुप संयम व्यापार में निंतर स्थित मुनि, स्वयं की और दूसरों की रक्षा करने में उसी प्रकार समर्थ है जिस प्रकार शत्रुसेना से घिर जाने पर आयुधों से, शस्त्रों से सुसज्जित वीर। ६२।

तप, संयम एवं स्वाध्याय रुप शस्त्र से युक्त मुनि स्व,पर को मोहरुपी सेना से मुक्त करवाने में समर्थ है।

"कर्म निर्जरा का मार्ग"

सज्झाय-सज्झाण-रयस्स ताइणो, अपाव-भावस्स तवे रयस्स।
विसुज्झइ जं सि मलं पुरेकडं, समरिअं रुप्पमलं व जोइणा॥ ६३॥

स्वाध्याय रुप शुभ ध्यान में आसक्त, स्व पर रक्षक, शुद्ध परिणाम युक्त, तपश्चर्या में रक्त, मुनि पूर्व में किये हुए पापों से शुद्ध होता है जैसे अग्नि से तपाने पर चांदी का मेल शुद्ध होता है ।अर्थात् पूर्व के कर्मों की निर्जरा होती है।

से तारिसे दुक्खसहे जिइंदिए, सुएण जुत्ते अमये अकिंचणे।
विरायई कम्म घणंमि अवगए, कसिणब्भपुडावगमेव व चंदिमे।त्ति बेमि॥ ६४॥

पूर्वोक्त गुणयुक्त और दुःख को सहन करनेवाला अर्थात् परिषह सहन कर्ता, जितेन्द्रिय, श्रुतज्ञान युक्त, ममता रहित, सुवर्णादि परिग्रह रहित साधु, जिस प्रकार सभी बादलों से रहित चंद्रमा शोभायमान होता है वैसे जिन साधुओं के आचार प्रणिधि अध्ययन कथित आचरणानुसार जीवन व्यतीत करने से कर्म समूह रूप बादल चले गये हैं वे साधु केवलज्ञान रुप प्रकाश ज्योति से शोभायमान है।

ऐसा श्री शय्यंभवसूरीश्वरजी मनक से कहते हैं कि तीर्थंकर गणधरादि के कथनानुसार मैं कहता

अभूईभावो अज्ञानभाव, **कीअस्स** बांस के फल।१। **विइत्ता** जानकर, **डहरे** छोटी आयुवाले, **पडिवज्जमाणा** स्वीकार करके।२। **पगइइ** स्वभाव से, **सिहिरिव** अग्नि जैसा **भास** भस्म।३। **निअच्छई** प्राप्त करता है **जाहपहं** जाति पंथ **आसीविसो** दाढ में विष वाला सर्प **सुरुट्ठो** विशेष क्रोधित।५। **जलिअं** जलती, **अवक्कमिज्जा** खड़ा रहता है या लाँघता है, **कोवइज्जा** क्रोधित करना,**अेसोवमा** यह उपमा।६। **डहेज्जा** जलाना, **हालहलं** हलाहल नामक विष।७। **रमेज्जा** रहना, वर्तना, **पसायाभिमुहो** प्रसन्न करवाने में तत्पर।१०। **सत्तिअग्गे** शक्ति की धार पर।८। **जहाहिअग्गी** जैसे होम करनेवाला ब्राह्मण, **नाणाहुइ** अनेक प्रकार की आहुति से **उवचिट्ठअेज्जा** सेवे, **मंतपयाभिसित्तं** मंत्र पदों से अभिषिक्त, **अणंत नाणोवगओवि** अनंत ज्ञान युक्त भी।११। **जस्सन्तिअे** जिनके पास।१२। **निसंते** रात्रि का अंतिम समय, **तवणच्चिमाली** प्रकाशमान सूर्य, **पभासई** प्रकाश करता है, **विरायइ** शोभित है।१३। **कोमुई** कार्तिक पूर्णिमा के रात का चंद्र प्रकाश, **परिवुडप्पा** परिवृत्त **खे** आकाश में **अब्भमुक्के** बादलों से मुक्त।१५। **महागरा** महान् खान जैसे, **महेसि** मोक्ष की बड़ी इच्छा वाले, **संपाविउकामे** मोक्ष प्राप्ति की इच्छा युक्त।१६। **आराहइत्ताण** आराधन कर।१७।

द्वितीय उद्देश्य

समुवेन्ति सम्यक् उत्पन्न होता है, **विरुहन्ति** विशेष कर उत्पन्न होता है।१। **सिग्घं** प्रशंसा योग्य, **चण्डे** क्रोधी, **मिअे** अजाण, **थब्धे** स्तब्ध, अहंकारी, **नियडी** कपटी मायावी, **सढे** सठ **वुज्झइ** प्रवाहित होता है **सोयगयं** प्रवाहगत।३। **उवाअेणं** उपाय से **चोइओ** प्रेरित **इज्जन्ति** आती ऐसी **पडिसेहअे** लौटा दे, निषेध करे।४। **उववज्झा** राजा आदि लोगों के,**अेहन्ता** भोगते ऐसे।५। **छाया** चाबुक के मार से व्रण युक्त देहवाला।६। **परिजुण्णा** दुर्बल बना हुआ, **कलुणा** दया उत्पन्न हो वैसा, **विवन्नछन्दा** पराधीन रहे हुए, **असब्ध** असभ्य, **खुप्पिवासा परिगया** क्षुधा प्यास से पीड़ीत।८। **गुज्झग्गा** भवनपति, **आभिओगं** दासत्व, **उवट्ठिआ** पाये हुअे।१०। **पायवा** वृक्ष **जलसित्ता** जल से सिंचित।१२। **नेउणियाणि** निपुणता।१३। **ललिइंदिया** गर्भश्रीमंत।१४। **निद्देसवत्तिणो** आज्ञाधिन।१५। **सुयग्गाहि** श्रुतज्ञानग्राही, **अणंत हिंय कामअे** मोक्षकामी, **नाइवत्तअे** उल्लंघन न करे।१६। **उवहिणामवि** उपधि पर।१८। **दुग्गओ** अड़ियल वृषभ, **पओअेणं** चाबुक से, **वुत्तोवुत्तो** बार-बार कहने से।१९। **पडिस्सुणे** उत्तर देना, **छंदोवयारं** गुरु इच्छा को, **संपडिवायअे** सम्प्रतिपादन करना, पूर्ण करना।२०। **विवत्ती** विनाश **अभिगच्छइ** पाता है।२१। **साहस** अकृत्य करने में तत्पर, **अकोविअे** न जाननेवाला, **हीण पेसणे** गुरु आज्ञा को न माननेवाला।२२। **ओहं** संसार समुद्र को।२३।

"तृतीय उद्देश्य"

सुस्सूमाणो सेवा करते हुए **आलोइयं** नजर, दृष्टि, **इंगिवयं** इंगित **(बाहर के आकार का परिवर्तन)** **छन्दं** आचार्य की इच्छानुसार।१। **परिगिज्झ** ग्रहण करे **जहोवइट्ठं** जैसा कहा वैसा।२। **नियत्तणे**

अधिक गुणी को नमस्कार करता हुआ, **ओवायवं** वंदन करने वाला, **वक्ककरो** आज्ञा मानने वाला।३। **अन्नायउंछं** अज्ञात घरों से, **जवणट्ठया** निर्वाह अर्थे, **समुयाणं** योग्य आहार, **परिदेवअेज्जा** निंदा करना।४। **पाहन्न** प्रधान।५। **सक्का** शक्य, **सहेउं** सहने हेतु, **आसाइ** आशा से, **अओमया** लोहमय, **उच्छहया** उत्साह से, **वइमअे** कठोर,परुषवचन, **कण्णसरे** कान में प्रवेश करते ऐसे।६। **सुउद्धरा** सुखपूर्वक निकाले जा सके।७। **समावयन्ता** सामने आते हुए, **जणन्ति** उत्पन्न करते हैं, **किच्चा** जानकर, **परमग्गसूरे** महाशूरवीर।८। **पंरम्मुहस्स** पीछे, **पडिणीयं** दुःखद, **ओहारिणिं** निश्चय रुप।९। **अक्कूहअे** इन्द्रजालादि क्रिया से दूर, **भावियप्पा** स्व प्रशंसक।१०। **अणुहिंऽसाहू** अगुणों से असाधु, **अप्पगं** आत्मा को।११। **हीलअे** एक बार निंदा करे **खिंसअेज्जा** बार-बार निंदा करे।१२। **मणिया** सन्मानित, **कन्नं व** कन्या के जैसे, **उत्तेण-जत्तेण** यत्न से, **माणरिहे** मान देने योग्य।१३। **चरे** आदरे, पाले, स्वीकार करे।१४। **पडियरिय** सेवाकर **धुणिय** खपाकर, **अभिगमकुसले** मेहमान मुनियों की वैयावच्च में कुशल, **भासुरं** देदीप्यमान, **वइ** जाता है।१५।

"चतुर्थ उद्देश्य"

अभिरामयन्ति जोड़ता है।२। **अणुसासिज्जन्तो** अनुशासित, **वेयमाराहइ** श्रुत ज्ञान की आराधना करे, **अत्तसम्पग्गहिए** आत्म प्रशंसक, **एत्थ** यह।३। **पेहेइ** प्रार्थना करे, **आययट्ठिअे** मोक्षार्थि साधु।४। **अज्झाइयव्वं** पठन योग्य।५। **आरहन्तेहिं हेउहिं** अरिहन्त कथित हेतु।८। **भाव सन्धअे** आत्मा को मोक्ष के पास ले जाने वाला।१०। **अभिगम** जानकर, **विउलहिअं** महान हितकारी।११। **इत्थंत्थं** नरकादि व्यवहार के बीजरुप वर्ण संस्थानादि।१२।

विनय समाधि नामक नवम अध्ययन

"संबंध"

आठवें अध्ययन में आचार साध्वाचार का वर्णन किया, प्ररुपणा की। आचार पालन में विनय गुण का मुख्य, प्रधान स्थान है। विनयहीन आत्मा का आचार पालन, बिना जड़ के वृक्ष जैसा है। आगमों में मूल शब्द का प्रयोग विनयधर्म के साथ ही हुआ है। "विणय मूलो धम्मो" धर्म का मूल विनय है। धर्म के मूल स्वरुप विनय की व्याख्या नवमें अध्याय में दर्शायी है। विनयी आत्मा ही आचार पालन के द्वारा जगत विश्व में पूजनीय होता है। अतः श्रीशयंभवसूरीश्वरजी म.सा. ने नौवे अध्याय में विनय का स्वरुप दर्शाया है।

"प्रथम उद्देश्य"

"अविनयी को फल प्राप्ति"

थंभा व कोहाव मयप्पमाया, गुरुस्सगासे विणयं न सिक्खे।।
सो चेव उ तस्स अभूईभावो, फलं व कीअस्स वहाय होई।। १।।

जो मुनि गर्व, क्रोध, माया एवं प्रमाद के कारण सद्गुरु भगवंत से विनय धर्म की शिक्षा ग्रहण नहीं करता, वही (विनय की अशिक्षा) उसके लिए विनाश का कारण बनती है। जैसे कीचक को फल

आने पर कीचक (बांस) का नाश होता है। अविनय रुप फल प्राप्ति से उसके भाव प्राणों का नाश हो जाता है।

जे आवि मंदित्ति, गुरूं विइत्ता, डहरे इमे अप्पसुअसत्ति नच्चा।
हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा, करंति आसायण ते गुरूणं॥ २॥

जो मुनि, सद्गुरू को ये अल्पप्रज्ञ (मंदबुद्धि) वाले हैं, अल्पवयवाले हैं, अल्पश्रुतधर हैं, ऐसा मानकर उनकी हीलना/तिरस्कार करता है, वह मुनि मिथ्यात्व को प्राप्त करता हुआ, गुरू भगवंतों की आशातना करने वाला होता है।

अल्पप्रज्ञ सद्गुरू का विनय न करने का फल''

पगईइ मंदा वि भवंति एगे, डहरा वि अ जे सुअबुद्धोववेआ।
आयारमंता गुणसुट्ठिअप्पा, जे हीलिआ सिहिरिव भास कुज्जा॥ ३॥

वयोवृद्ध आचार्य भगवंत भी कभी कोई प्रकृति से अल्पप्रज्ञ होते हैं एवं कोई अल्पवय युक्त होने पर भी श्रुत एवं बुद्धि से प्रज्ञ होते हैं।

आचारवंत एवं गुण में सुस्थित आत्मा आचार्य भगवंत जो आयु में अल्प हो, श्रुत में अल्प हो, तो भी उनकी अवज्ञा करनेवाले आत्मा के गुणों के समुह का नाश हो जाता है। जैसे अग्नि में पदार्थ भस्म होता है। अर्थात् सद्गुरू की आशातना करने वाले के गुण समूह का नाश अग्नि में पदार्थ के नाश सम हो जाता है। ३।

'दृष्टांत पूर्वक अविनय का फल''

जे आवि नागं डहरं ति नच्चा, आसायए से अहिआय होइ।
एवायरिअं पि हु हीलयंतो, निअच्छई जाइपहं खु मंदो॥ ४॥

जैसे कोई मूर्ख अज्ञ आत्मा सर्प को छोटा समझकर उसकी कदर्थना करता है, तो वह सर्प उसके द्रव्य प्राण के नाश का कारण बनता है, वैसे शास्त्रोक्त किसी कारण से अल्पवयस्क, अल्प प्रज्ञ को आचार्य पद दिया गया हो एवं उनकी हिलना करनेवाला आत्मा ''जाइ पहं'' अर्थात् दो इन्द्रियादि गतियों में अधिक काल के जन्म मरण के मार्ग को प्राप्त करता है। अधिक काल तक संसार में परिभ्रमण रुप अहित को प्राप्त करता है। ४।

आसी विसो वा वि परं सुरूट्ठो, किं जीवनासाउ परं न कुज्जा।
आयरिअपाया पुण अप्पसन्ना, अबोहि-आसायण नत्थि मुक्खो॥ ५॥

आशीविष सर्प अत्यन्त क्रोधित बनने पर जीवितव्य/द्रव्य प्राणों के नाश से अधिक किसी भी प्रकार का नुकसान नहीं कर सकता। पर सद्गुरु आचार्य भगवंत, उनकी हिलना से, अप्रसन्न होने से शिष्य के लिए वे मिथ्यात्व के कारण रुप होते हैं। क्योंकि सद्गुरु आचार्य की अवहेलना-आशातना करने से मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है। इस से अबोधि एवं आशातना करने वालों का मोक्ष नहीं होता॥ ५।

जो पावगं जलिअ-मवक्कमिज्जा, आसी विसं वा वि हु को वइज्जा।
जो वा विसं खायइ जीविअट्ठी, एसोवमासायणया गुरुणं॥ ६॥

जिस प्रकार कोई व्यक्ति जीने के लिए जल रही अग्नि में खड़ा रहता है या आशीविष सर्प को क्रोधित करता है या कोई विष का आहार करता है तो वह जीवित नहीं रह सकता, वैसे ही। ये उपमाएँ धर्माचरण हेतु गुरू की अवहेलना करने वाले के लिए समान रुप से है।

अग्नि, सर्प एवं विष जीवितव्य के स्थान पर मरण के कारणभूत है। वैसे ही सद्गुरु की आशातना पूर्वक की गई मोक्षसाधना संसार वृद्धि का कारण है। ६।

सिया हु से पावय नो डहेज्जा, आसीविसो वा कुविओ न भक्खे।
सिया विसं हालहलं न मारे, न यावि मोक्खो गुरु-हीलणाए॥ ७॥

संभव है कि अग्नि न जलावे, कुपित आशीविष दंश न दे, हलाहल विष न मारे पर सद्गुरु भगवंत की अवहेलना से मोक्ष कभी नहीं होगा। ७।

जो पव्वयं सिरसा भेत्तु-मिच्छे, सुत्तं व सीहं पडिबोहएज्जा।
जो वा दए सत्ति-अग्गे पहारं, एसोवमासायणया गुरुणं॥ ८॥

कोई व्यक्ति मस्तक से पर्वत छेदन करना चाहे, या सुप्त सिंह को जगाये, या शक्ति नामक शस्त्र पर हाथ से प्रहार करता है। ये तीनों जैसे अलाभकारी है। वैसे सद्गुरू की आशातना अलाभकारी है। ८।

सिया हु सीसेण गिरिं पि भिन्दे, सिया हु सीहो कुविओ न भक्खे।
सिया न भिन्दिज्ज व सत्ति अग्गं, न या वि मोक्खो गुरू-हीलणाए॥ ९॥

संभव है कि प्रभावक शक्ति के कारण मस्तक से पर्वत का भेदन हो जाय, मंत्रादि के सामर्थ्य से कुपित सिंह भक्षण न करे, शक्ति नामक शस्त्र हाथ पर लेश भी घाव न करे, पर गुरु की आशातना से मोक्ष कभी नहीं होगा। ९।

"सद्गुरू की प्रसन्नता/कृपा आवश्यक"

आयरिय-पाया पुण अप्पसन्ना, अबोहि-आसायण नत्थि मुक्खो।
तम्हा अणाबाह-सुहाभि कंखी, गुरुप्पसायाभिमुहो रमेज्जा॥ १०॥

सद्गुरु की अप्रसन्नता से मिथ्यात्व की प्राप्ति, सद्गुरु की आशातना से मोक्ष का अभाव है अगर ऐसा है तो अनाबाध, परिपूर्ण, शाश्वत सुखाभिलाषी मुनियों को जिस प्रकार सद्गुरु प्रसन्न रहे सद्गुरु की कृपा प्राप्त हो। उस अनुसार प्रवृत्ति करना चाहिये। १०।

जहाहि-अग्गी जलणं नमंसे, नाणा हुई-मन्त-पया-भिसित्तं।
एवायरियं उवसिट्ठएज्जा, अणन्त-नाणोवगओ विसन्तो॥ ११॥

जिस प्रकार आहिताग्नि ब्राह्मण/होम हवन करनेवाला पंडित मंत्रपदों से संस्कारित अग्नि को नमस्कार करता है। उसी प्रकार शिष्य अनंत ज्ञानवान होते हुए भी सद्गुरु आचार्य भगवंत की विनयपूर्वक सेवा करें। ज्ञानी शिष्य के लिए यह विधान है, तो सामान्य शिष्य के लिए तो कहना ही क्या?। ११।

"विनय विधि"

जस्सन्तिए धम्मपयाइं सिक्खे, तस्सन्तिए वेणइयं पउंजे।
सक्कारए सिरसा पंजलीओ, कायग्गिरा भो मणसा य निच्चं॥१२॥

जिस सद्गुरु के पास धर्म पदों का शिक्षण ले रहा है, उनके समीप विनय धर्म का पालन करें। उनका सत्कार करना, पंचांग प्रणिपात, हाथ जोड़ कर मत्थएण वंदामि कहना, मन, वचन, काया से नित्य उनका सत्कार सन्मान करना।१२।

लज्जा-दया-संजम-बंभचेरं, कल्लाण-भागिस्स विसोहि-ठाणं।
जे मे गुरु सययं-मणुसाससयन्ति, तेऽहं गुरुं सययं पूययामि॥१३॥

लज्जा,दया,संयम और ब्रह्मचर्य ये चारों मोक्षाभिलाषी मुनि के लिए विशोधिस्थान है, जो सद्गुरू मुझे इन चारों के लिए सतत् हित शिक्षा देते हैं। अत: मैं उन सद्गुरु भगवंत की नित्य पूजा करता हूँ। इस प्रकार शिष्यों को सतत् विचार, चिंतन करना चाहिये। उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना यही सद्गुरु की वास्तविक पूजा है।१३।

"आचार्य भगवंत की गुण गर्भित स्तुति"

जहा निसन्ते तवणच्चिमाली, पभासई केवल-भारहं तु।
एवायरिओ सुय-सील-बुद्धिए, विरायइ सुरमज्झे व इन्दो॥१४॥

जिस प्रकार रात्रि के व्यतीत होने पर दिन में प्रदिप्त होता हुआ सूर्य संपूर्ण भरत क्षेत्र को प्रकाशित करता है, वैसे शुद्ध श्रुत, शील, बुद्धि संपन्न सद्गुरु आचार्य भगवंत जीवादि पदार्थों के संपूर्ण स्वरुप को प्रकाशित करते हैं और जैसे देवताओं के समूह में इन्द्र शोभायमान है, वैसे सद्गुरु आचार्य भगवंत मुनि मंडल में शोभायमान है।१४।

जहा ससी कोमुई-जोग-जुत्तो, नक्खत्त-तारागण - परिवुडप्पा।
खे सोहइ विमले अब्भमुक्के, एवं गणी सोहई भिक्खु मज्झे॥१५॥

जिस प्रकार कार्तिक पुर्णिमा के दिन बादलों से रहित निर्मल आकाश में नक्षत्र और तारांगण से परिवृत्त चंद्रमा शोभायमान है। वैसे साधु समुदाय में गणि सद्गुरु आचार्य भगवंत शोभायमान है॥१५॥

महागरा आयरिया महेसी, समाहि-जोगे सुय-सील-बुद्धिए।
सम्पाविउ-कामे अणुत्तराइं, आराहए तोस इ धम्म-कामी॥१६॥

अनुत्तर ज्ञानादि भाव रत्नों की खान समान समाधि, योग, श्रुत, शील, एवं बुद्धि के महान धनी, महर्षि आचार्य भगवंत के पास से सर्वोत्कृष्ट ज्ञानादि प्राप्ति के लिए सुशिष्यों को विनय करने के द्वारा आराधना करना। एक बार ही नहीं, कर्म निर्जरार्थे बार-बार विनय करने के द्वारा आचार्य भगवंत को प्रसन्न करना।१६।

"उपसंहार"

सुच्चाण मेहावि-सुभासियाइं, सुस्सूसए आयरिअप्पमत्तो।
आराहईत्ताण गुणे अणेगे, से पावइ सिद्धिमणुत्तरं।त्ति बेमि॥ १७॥

इन सुभाषितों को श्रवण कर मेधावी मुनि, सद्गुरु आचार्य भगवंत की सतत्, निरंतर अप्रमत्त भाव से सेवा करें। इस प्रकार पूर्वोक्त गुण युक्त सद्गुरु आचार्यादि की शुश्रुषा करने वाला मुनि अनेक ज्ञानादि गुणों की आराधना कर क्रमशः मोक्ष प्राप्त करता है। १७।

श्री शय्यंभवसूरीश्वरजी कहते है कि तीर्थंकरादि के कहे अनुसार मैं कहता हूँ।

द्वितीय उद्देश्य

"मूल की महत्ता"

मूलाउ खन्धप्पभवो दुमस्स, खन्धाउ पच्छा समुवेन्ति साहा।
साहाप्पसाहा विरुहन्ति पत्ता, तओ से पुप्फं च फलं रसो य॥ १॥

वृक्ष के मूल से स्कंध उत्पन्न होता है, स्कंध के बाद शाखा की उत्पत्ति, शाखा से छोटी शाखा प्रशाखाएँ निकलती है फिर पत्र, पुष्प, फल एवं रस की उत्पत्ति होती है। १।

एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मुक्खो।
जेण किर्त्तिं सुअं सिग्घं, नीसेसं चाभिगच्छइ॥ २॥

इस प्रकार धर्म रुप कल्पवृक्ष का मूल विनय है। वृक्ष सदृश्य उत्तरोत्तर सुख सामग्री, ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति के साथ मोक्ष प्राप्ति, यह उत्तम फल के रस रुप जानना।अतः विनयाचार का पालन करना सभी के लिए अनिवार्य है। विनय से मुनि कीर्ति, श्रुतज्ञान एवं प्रशंसा योग्य सभी पदार्थों को प्राप्त करता है। २।

"अविनीत की दुर्दशा"

जे य चण्डे मिए थद्धे, दुव्वाई नियडी सढे।
वुज्झई से अविणीयप्पा, कट्ठं सोयगयं जहा॥ ३॥

तीव्र रोष युक्त, अज्ञ, हितोपदेश से रुष्ट होनेवाला, अहंकारी, अप्रियभाषी, मायावी, शठ, (संयम योगों में शिथिल) इत्यादि दोषों के कारण जो मुनि सद्गुरु आदि का विनय नहीं करता, वह अविनीत आत्मा जिस प्रकार नदी आदि के प्रवाह में गिरा हुआ काष्ठ बहता रहता है वैसे संसार प्रवाह में वह प्रवाहित होता है। अर्थात् अविनीतात्मा चारों गति में परिभ्रमण करता रहता है। ३।

विणयं पि जो उवाएणं, चोई ओ कुप्पई नरो।
दिव्वं सो सिरिमिज्जन्ति, दंडेण पडिसेहए॥ ४॥

विनय धर्म के परिपालन हेतु सद्गुरु के द्वारा प्रयत्नपूर्वक मधुर वचनों से प्रेरित करने पर उन पर कुपित आत्मा, अपने घर में आनेवाली ज्ञान रुप दिव्य लक्ष्मी को दंड प्रहार से लौटा देता है। उसे धक्का

देकर घर में आने से रोकता है। घर से निकाल देता है।४।

तहेव अविणीअप्पा, उववज्झा हया गया।
दीसन्ति दुहमेहन्ता, आभिओग-मुवट्ठिया॥५॥

राजा, सेनापति, प्रधान आदि की सवारी के काम में आने वाले हाथी घोडे जो-जो अविनीत होते है। अड़ीयल होते है। वे भार वहन करने के द्वारा क्लेश रुप दुःख को प्राप्त करते है।५।

(उववज्झा:औपवाह्य सवारी के काम में आना)

"सुविनीत को सुफल की प्राप्ति"

तहेव सुविणीअप्पा, उववज्झा हया गया।
दीसन्ति सुहमेहन्ता, इड्ढिं पत्ता महायसा॥६॥

राजा आदि की सवारी के काम में आनेवाले जो हाथी, घोडे सुविनीत होते हैं। वे आभूषण, रहने का स्थान, उत्तम आहारादि को प्राप्त कर स्वयं के सद्गुणों से यश, प्रख्याति को प्राप्त कर सुखों का अनुभव करते हैं।६।

तिर्यंच विनय गुण से सुखानुभव करता है तो मुनि महान स्थान को पाया हुआ है वह विनय गुण के द्वारा महान सुख मोक्ष सुख को प्राप्त करें इसमें क्या कहना?

"अविनीत की दुर्दशा"

तहेव अविणीअप्पा, लोगंसि नर-नारिओ।
दीसन्ति दुहमेहन्ता, छाया विगलिन्दिया॥७॥

पशुओं के समान जो नर-नारी अविनीत हैं, वे जगत में अनेक प्रकार के दुःखों को भोगते हुए, चाबुक आदि के प्रहार से व्रण, घाव युक्त देह वाले एवं परस्त्री आदि दोषों के फलरुप में नाक आदि इंद्रियों से विकल देखने में आते हैं।

दण्ड-सत्थ-परिजुण्णा, असब्भ-वयणेहि य।
कलुणा विवन्न-छन्दा, खुप्पिवासा-परिगया॥८॥

अविनीत नर-नारी दंड, शस्त्र, महाकठोर वचनों से दुर्बल हो जाने से करुणा पात्र, दीन, पराधीन, और क्षुधा प्यास से पीड़ित बनकर, अनेक प्रकार के दुःखों का अनुभव करते हैं। अविनय के फलरुप में इस भव में अनेक प्रकार के दुःख भोगते हैं एवं उन्हें परभव में नरक निगोदादि के महा दुःख भोगने पड़ते हैं।८।

"सुविनीतता का फल"

तहेव सुविणीअप्पा, लोगंसि नर-नारिओ।
दीसन्ति सुहमेहंता, इड्ढिं पत्ता महायसा॥९॥

लोक में सुविनीत नर-नारी ऋद्धि महायश को प्राप्त कर महान सुख का अनुभव करते हुए देखे जाते हैं।९।

"अविनीत आत्मा की देवलोक में दुर्दशा"

तहेव अविणीअप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा।
दीसन्ति दुहमेहन्ता, अभिओग-मुवट्ठि या॥ १०॥

विनयहीन आत्मा को जन्मान्तर में देव योनि मिले तो वैमानिक ज्योतिषी, व्यंतर भवनपति आदि देवों की सेवा, अस्पृश्यता आदि के द्वारा दुःखानुभव होता है। ऐसा भावनयन से दिखाई देता है अर्थात् ज्ञान चक्षु से दिखाई देता है। १०।

सुविनीत आत्मा को देवलोक में सुखानुभव"

तहेव सुविणीअप्पा, देवा जक्खा अ गुज्झगा।
दीसन्ति सुहमेहन्ता, इड्ढिं पत्ता महायसा॥ ११॥

उसी प्रकार सुविनीत आत्मा भवान्तर में वैमानिक, ज्योतिषी, व्यंतर, भुवनपति आदि देवलोक में इन्द्रादि की विशिष्ट दिव्य ऋद्धि को प्राप्त कर, महायशस्वी होकर श्री अरिहंत भगवंत के कल्याणक आदि के द्वारा महान पुण्योपार्जन करते हुए महानंद, महासुख के भागी होते हैं।

"सद्गुरु विनय एवं विनय का फल"

जे आयरिय-उवज्झायाणं, सुस्सूसा-वयणंकरा।
तेसिं सिक्खा पवड्ढन्ति, जलसित्ता इव पायवा॥ १२॥

जो मुनि आचार्य भगवंत, उपाध्याय भगवंत,(एवं मुनि भगवंत) की विनयपूर्वक सेवा करता है, आज्ञा पालन करता है, उनकी ग्रहण एवं आसेवन शिक्षा उसी प्रकार बढ़ती है, जैसे जल से सिंचित वृक्ष। १२।

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, सिप्पा नेउणियाणि य।
गिहिणो उवभोगट्ठा, इह लोगस्स कारणा॥ १३॥
जेण बन्धं वहं घोरं, परिआवं च दारूणं।
सिक्खमाणा नियच्छन्ति, जुत्ता ते ललिइन्दिआ॥ १४॥
तेऽवि तं गुरुं पूयन्ति, तस्स सिप्पस्स कारणा।
सक्कारेन्ति नमंसन्ति, तुट्ठा निद्देस-वत्तिणो॥ १५॥
किं पुण जे सुअग्गाही, अणन्त-हियकामए।
आयरिया जं वए भिक्खू, तम्हा तं नाईवत्तए॥ १६॥

जो गृहस्थ अपने और पराये के लिए शिल्पकला आदि में निपुणता, प्रवीणता, चित्रकला आदि में कौशल्यता प्राप्त करने हेतु कलाचार्य गुरु के द्वारा आवश्यकतानुसार दारुण वध, बन्धन परिताप, कष्ट को गर्भश्रीमंत राजकुमारादि भी सहन करते है एवं वे कलाचार्य गुरु की सेवा पूजा करते हैं। उनकी आज्ञा का पालन करते हैं।(भौतिक कलाओं की प्राप्ति हेतु कष्ट सहन करते हुए भी आनंद पूर्वक गुरु सेवा करते हैं। तब वे कला प्राप्त कर सकते हैं)

तो मुनि भगवंत जो मोक्ष सुख की इच्छावाले एवं श्रुतज्ञान को प्राप्त करने हेतु उत्कट इच्छावाले हैं। उनको आचार्यादि की सेवा पूजा एवं उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन अवश्य करना चाहिये। सद्गुरु की आज्ञा का उल्लंघन कभी नहीं करना चाहिये। १३ से १६।

नीअं सेज्जं गइं ठाणं, नीयं च आसणाणि य।
नीयं च पाए वन्दिज्जा, नीयं कुज्जा य अंजलिं॥ १७॥

शिष्य गुरू से स्वयं की शय्या नीचे करे, उनके समीप सटकर, अति दूर गति न करे, न चले, बैठने का स्थान नीचे रखना एवं पाट आदि आसन नीचे रखना, नीचे पैरों में मस्तक नमाकर वंदन करना और झुककर हाथ जोड़कर अंजलीकर नमस्कार करना। १७।

संघट्टइत्ता काएणं, तहा उवहिणामवि।
खमेह अवराहं मे, वइज्ज न पुणु त्ति अ॥ १८॥

अनजाने में आचार्यादि सद्गुरु का अविनय हुआ हो तो शिष्य आचार्य महाराज के पास जाकर स्वहस्त से या मस्तक से गुरु चरण को स्पर्शकर या पास में न जा सके तो उपधि आदि पर हाथ स्थापन कर कहे : हे सद्गुरु भगवंत यह मेरा अपराध क्षमा करें! फिर से ऐसा अपराध नही करुंगा। १८।
(सद्गुरु का काया से स्पर्श हुआ हो या उपधि आदि उपकरण से कोई अविनय आशातना हुई हो तो उसकी क्षमा याचना करना, पुनः ऐसा अपराध नहीं करुंगा ऐसा कहना)

दुग्गओ वा पओएणं, चोइओ वहइ रहं।
एवं दुबुद्धि किच्चाणं, वुत्तो वुत्तो पकुव्वई॥ १९॥

दुष्ट बैल चाबुकादि से प्रेरित होने पर रथवहन करता है वैसे दुर्बुद्धि शिष्य बार-बार प्रेरणा करने पर सद्गुरु का कार्य करता है। १९।

आलवन्ते लवन्ते वा, न निसिज्जाइ पडिस्सुणे।
मुत्तुणं आसणं धीरो, सुस्सूसाए पडिस्सुणे।
कालं छन्दोवयारं च, पडिलेहित्ताण हेऊहिं।
तेणं तेणं उवाएणं, त तं संपडिवायए॥ २०॥

सद्गुरू शिष्य को एक बार या बार-बार बुलावे तो शिष्य आसनस्थ उत्तर न दे पर स्व आसन छोड़कर, सद्गुरू के पास आकर, हाथ जोड़कर उत्तर दे। शिष्य काल, गुरू इच्छा, सेवा के भेद प्रभेद को समझकर, उस-उस उपाय से उन वस्तुओं, पदार्थों का संपादन करें। सद्गुरू की इच्छानुसार प्रत्येक कार्य करें। २०।

"विनय-अविनय का फलादेश"

विवत्ति अविणीयस्स, सम्पत्ती विणीयस्स अ।
जस्सेयं दुहओ नायं, सिक्खं से अभिगच्छई॥ २१॥

अविनीत शिष्य के ज्ञानादि गुण का विनाश होता है और विनीत शिष्य को ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति होती है। जिन्होंने ये दोनों भेद जाने हैं वे मुनि ग्रहण,आसेवन रूप दोनों प्रकार की शिक्षा को प्राप्त करते हैं कारण कि भाव से उपादेय का ज्ञान होता है। २१।

"मोक्ष के लिए अनधिकारी"

जे आवि चण्डे मई-इड्ढि-गारवे, पिसुणे नरे साहस-हीण पेसणे।
अदिट्ठ-धम्मे विणए अकोविए, असंविभागी न हु तस्स मुक्खो॥ २२॥

जो भव्यात्मा चारित्र ग्रहण करने के पश्चात् चण्डप्रकृति युक्त है, बुद्धि एवं ऋद्धि गारव से युक्त है (ऋद्धिगारव में मति है जिसकी) पीठ पीछे निंदक/पिशुन है, अविमृश्यकारी/अकृत्य करने में तत्पर/साहसिक है, गुरूआज्ञा का यथा समय पालन न करनेवाला है, श्रुतादि धर्म से अज्ञात है,(धर्म की प्राप्ति जिसे नहीं हुई) विनय पालन में अनिपुण,(अनजान) है असंविभागी अर्थात् प्राप्त पदार्थ दूसरों को न देकर स्वयं अकेले ही उपभोग कर्ता है,इत्यादि दोषरूप कारणों से क्लिष्ट अध्यवसाय युक्त अधम आत्मा को मोक्ष प्राप्त नहीं होता। २२।

"मोक्षाधिकारी"

निद्देसवत्ती पुण जे गुरूणं, सुयत्थ-धम्मा विणयम्मि कोविया।
तरित्तु ते ओहमिणं दुरूत्तरं, खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गय। त्तिबेमि॥ २३।

और जो-जो मुनि/शिष्य निरंतर गुर्वाज्ञा में प्रवृत्त हैं, गीतार्थ हैं, विनय धर्म के पालन में निपुण हैं, वे शिष्य/मुनि इस दुस्तर संसार समुद्र को पार करते हैं, सभी कर्मों का क्षय कर उत्तम सिद्धि गति को प्राप्त करते हैं। २३।

श्रीशयंभवसूरीश्वरजी कहते हैं कि तीर्थंकरादि के कहे अनुसार मैं कहता हुँ।

तृतीय उद्देश्य

"शिष्य पूजनीय कब बनता है?

आयरियं अग्गि-मिवाहिअग्गी, सुस्सूसमाणो पडिजागरिज्जा।
आलोईयं इंगिअमेव नच्चा, जो छन्दमाराहयइ स पूज्जो॥ १॥

जैसे अग्निहोत्री ब्राह्मण अग्नि को देव मानकर उसकी शुश्रुषा जागरूक बनकर करता है। उसी प्रकार मुनि,सद्गुरू आचार्यादि के जो-जो कार्य हो, उन-उन कार्यों को कर, सेवा करे जैसे आचार्यादि सद्गुरू वस्त्र के सामने नजर करे, शीतऋतु हो तो समझना कि उन्हें कंबलादि की आवश्यकता है यह आलोकित अभिप्राय है, और जैसे उठने को तैयार हो, उस समय दंड आदि की आवश्यकता है, इत्यादि इंगित अभिप्राय को समझकर, उस अनुसार कार्य करने वाला शिष्य पूज्य होता है। वह कल्याणभागी बनता है। १।

आयारमट्ठा विणयं पउंजे, सुस्सूसमाणो परिगिज्झ वक्कं।
जहो वइट्ठं अभिकंखमाणो, गुरूं तु नासाययई स पूज्जो॥ २॥

जो ज्ञानादि पंचाचार के लिए विनय करता है, आचार्यादि सद्गुरू की आज्ञा को सुनने की इच्छा रखनेवाला है, उनकी आज्ञा को स्वीकार कर , उनके कथनानुसार श्रद्धापूर्वक कार्य करने की इच्छावाला है एवं उनके वचनानुसार कार्यकर विनय का पालन करता है एवं उनके कथन से विपरित आचरण कर आशातना न करनेवाला शिष्य है वह मुनि पूज्य है। २।

रायणिएसु विणयं पउंजे डहरा वि य जे परियाय-जेट्ठा।
नियत्तणे वट्टई सच्चवाई, ओवायवं वक्ककरे स पूज्जो॥ ३॥

जो मुनि रत्नाधिक मुनियों का वय, पर्याय में अल्पवयस्क, एवं ज्ञान-व्रत-पर्याय में ज्येष्ठ है, उनका विनय करता हैं, अपने अधिक गुणवानों के प्रति नम्रतापूर्वक वर्तन करता है, जो सत्यवादी है, सद्गुरू भगवंतो को वंदन करनेवाला है, आचार्य भगवंत के पास में रहनेवाला एवं उनकी आज्ञानुसार वर्तन करनेवाला है वह मुनि पूज्य है॥ ३॥

अन्नायउंछं चरई विसुद्धं, जवणट्ठया समुयाणं च निच्चं।
अलध्धुयं नो परिदेवएज्जा, लध्धुं न विकत्थइ स पूज्जो॥ ४॥

जो मुनि अपरिचित घरों से विशुद्ध आहार ग्रहण कर, निरंतर संयम भार को वहन करने हेतु देह निर्वाहार्थ गोचरी करता हैं, भिक्षा न मिलने पर खिन्न न होकर उस नगर या दाता की निंदा प्रशंसा नहीं करता वह मुनि पूज्य है॥ ४॥

संथार-सेज्जासण-भत्तपाणे, अप्पिच्छया अइलाभे वि सन्ते।
जो एवमप्पाणभितोसएज्जा, संतोस-पाहन्न-रए स पुज्जो॥ ५॥

जो साधु संस्तारक पाट आदि शय्या, आसन, आहार पानी आदि देह निर्वाहार्थ संयम पालनार्थ उपकरण विशेष रूप में मिल रहे हो तो भी संतोष को प्रधानता देकर जैसे-तैसे संथारादि से स्वयं का निर्वाह करता है वह पूज्य है॥ ५॥

सक्का सहेउं आसाइ कंट्या, अओमया उच्छहया नरेणं।
अणासए जो उ सहेज्ज कंटए वइमए कण्णसरे स पूज्जो॥ ६॥

धनार्थी आत्मा धनार्थ धन की आशा से लोहमय कंटकों को उत्साहपूर्वक सहन करता है पर जो आत्मसुखार्थी मुनि किसी भी प्रकार की आशा के बिना कर्णपटल में पैठते हुए वचन रूप कंटकों को उत्साह पूर्वक सहन करता है वह पूज्य है॥ ६॥

मुहुत्त दुक्खा उ हवन्ति कंटया, अओ मया ते वि तओ सु-उद्धरा।
वाया दुरूत्ताणि दुरूद्धराणि, वेराणुबन्धीणि महब्भयाणि॥ ७॥

लोहमय काँटे मुहूर्त मात्र दुःखदायक है एवं वे सुखपूर्वक निकाले जा सकते हैं, पर दुर्वचन रूप काँटे सहजता से नहीं निकाले जा सकते। वे वैरानुबंधी है। वैर की परंपरा बढ़ानेवाले है। और कुगति में भेजने रूप महाभयानक है॥ ७॥

समावयन्ता वयणाभिघाया, कण्णंगया दुम्मणियं जणन्ति।
धम्मो त्ति किच्चा परमग्गसूरे, जिइन्दिए जो सहई स पूज्जो॥ ८॥

सामनेवाले व्यक्ति के द्वारा कहे जानेवाले कठोर परूष वचन रूप प्रहार कानों में लगने से मन में दुष्ट विचार उत्पन्न होते है। जो महाशूरवीर और जितेन्द्रिय मुनि वचन रूप प्रहार को, सहन करना मेरा धर्म है ऐसा मानकर, सहन करता है वह पूज्य है॥ ८॥

अवण्णवायं च परम्मुहस्स, पच्चक्खओ पडिणीयं च भासं।
ओहारिणिं अप्पियकारिणिं च, भासं न भासेज्ज सया स पूज्जो॥ ९॥

जो दूसरों के पीठ पीछे अवर्णवाद निंदा न करनेवाला, सामने दुःखद वचन नहीं कहता, निश्चयात्मक भाषा एवं अप्रिति कारिणी भाषा का प्रयोग नहीं करता वह पूज्य है॥ ९॥

अलोलुए अक्कुहए अमाई, अपिसुणे यावि अदीणवित्ती।
नो भावए नो वि य भावियप्पा, अकोउहल्ले य सया स पूज्जो॥ १०॥

जो रसलोलुप नहीं है, जो इन्द्रजालादि नहीं करता, कुटिलता रहित है, चुगली नहीं करता, अदीन वृत्ति युक्त है, न स्वयं किसी के अशुभ विचारों में निमित्त बनता है, न स्वयं अशुभ विचार करता है, न स्वयं प्रशंसा करता है, न स्वयं की प्रशंसा दूसरों से करवाता है, और कौतुकादि कोतुहल से निरंतर दूर रहता है। वह मुनि पूज्य है॥ १०॥

गुणेहिं साह अगुणेहिंऽसाह, गेण्होहि साहु-गुण मूंचऽसाहू।
वियाणिया अप्पग-मप्पएणं, जो राग दोसेहिं समो स पूज्जो॥ ११॥

गुणों के कारण साधु एवं अगुण (दुर्गुण) के कारण असाधु होता है, अतः साधु के गुणों को (साधुता) को ग्रहण कर, असाधुता को छोड़ दे। इस प्रकार जो मुनि अपनी आत्मा को समझाता है, एवं राग द्वेष के प्रसंग पर समभाव धारण करता है। वह मुनि पूज्य है॥ ११॥

तहेव डहरं च महल्लगं वा, ईत्थीं पुमं पव्वइयं गिहिं वा।
नो हीलए नोऽवि य खिंसएज्जा, थं भं च कोहं च चए स पूज्जो॥ १२॥

और जो साधु लघु या वृद्ध (स्थविरादि) की, स्त्री-पुरूष की, प्रवजित या गृहस्थ की, हीलना न करें बार-बार लज्जित न करे (खींसना न करे) और तद्निमित्त भूत मान एवं क्रोध का त्याग करे वह मुनि पूज्य है॥ १२॥

जे माणिया सययं माणयन्ति, उत्तेण कन्नं न निवेसयन्ति।
ते माणए माणरिहे तवस्सी, जिइन्दिए सच्चरए स पुज्जो॥ १३॥

जो गुरु शिष्यों के द्वारा सम्मानित किये जाने पर शिष्यों को सतत् सम्मानित करते हैं, श्रुत ग्रहण करने हेतु उपदेश द्वारा, प्रेरित करते है, और माता-पिता, कन्या को यत्नपूर्वक सुयोग्य पति प्राप्त करवाते हैं। सुयोग्य कुल में स्थापित करते हैं। उसी प्रकार जो आचार्य सुयोग्य शिष्य को सुयोग्य मार्ग पर स्थापित करते है। योग्यतानुसार पद विभूषित करते है। ऐसे माननीय पूजनीय, तपस्वी, जितेन्द्रिय सत्यरत आचार्य भगवंत को जो मान देता है वह शिष्य पूजनीय है॥ १३॥

तेसिं गुरूणं गुणसायराणं, सोच्चाण मेहावी सुभासियाइं।
चरे मुणी पंच-रए ति गुत्तो, चउक्कसाया-वगए स पुज्जो॥ १४॥

जो बुद्धिनिधान मुनि गुणसागर गुरूओं के शास्त्रोक्त सुवचन को श्रवणकर पंच महाव्रतों से युक्त, तीन गुप्ति से गुप्त एवं चार कषायों से दूर रहता है वह मुनि पूज्य है॥ १४॥

गुरूमिह सययं पडियरिय मुणी, जिणमय-निउणे अभिगम-कुसले।
धुणिय रयमलं पुरेकडं, भासुर-मउलं गइं वइ॥ त्ति बेमि॥ १५॥

श्री जिन कथित धर्माचरण में निपुण, अभ्यागत मुनि आदि की वैयावच्च में कुशल साधु निरंतर आचार्यादि की सेवादि द्वारा पूर्वोपार्जित कर्मरज को दूर कर ज्ञान तेज से अनुपम ऐसी उत्तम सिद्धि गति में जाता है॥ १५॥

श्री शयंभवसूरीश्वरजी कहते है कि तीर्थंकरादि के कहे अनुसार मैं कहता हूँ।

चतुर्थ उद्देशक

"चार प्रकार से विनय समाधि"

सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं इह खलु थेरेहिं भगवन्तेहिं चत्तारि विणय-समाहि-ट्ठाणा पन्नत्ता,। कयरे खलु ते थेरेहिं भगवन्तेहिं चत्तारि विणय-समाहि-ट्ठाणा पन्नत्ता? इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणय- समाहि-ट्ठाणा पन्नत्ता, तं जहा-विणय- समाहि, सुय-समाहि, तव- समाहि, आयार- समाहि॥१॥

श्री सुधर्मास्वामी जम्बु नामक शिष्य से कहते हैं। हे आयुष्मन्। मैंने भगवंत के पास से सुना है कि "भगवंत ने विनय समाधि के चार स्थान कहे हैं।"

(शिष्य का प्रश्न) हे भगवंत्। स्थविर भगवंत ने विनय समाधि के कौन से चार स्थान कहे हैं।?

(गुरु का प्रत्युत्तर) ये इस प्रकार उन स्थविर भगवंत ने विनय समाधि के चार स्थान कहे हैं।

(१) विनय समाधि, (२) श्रुत समाधि, (३) तप समाधि (४) आचार समाधि।१।

श्लोक

विणए सुए अ तवे आयारे निच्च पंडिया।
अभिरामयन्ति अप्पाणं, जे भवंति जिइन्दिया॥२॥

जो साधु स्वात्मा को विनय, श्रुत, तप एवं आचार में लीन रखते हैं और जो जितेन्द्रिय है। वह मुनि नित्य साध्वाचार का पालन करने से पंडित है।२॥

"विनय समाधि"

चउव्विहा खलु विणय-समाहि भवई, तं जहा-अणुसासिज्जंतो सुस्ससई१, सम्मं सम्पडिवज्जइ२, वेयमाराहइ३, न य भवइ अत्तसम्पग्गहिए ४ चउत्थं पयं भवइ एत्थ सिलोगो॥३॥

पेहाइ हियाणु सासणं, सूस्सूसइ तं च पुणो अहिट्ठिए।
न य माण-मएण मज्जई, विणय-समाहि आयट्ठिए॥४॥

विनय समाधि चार प्रकार से हैं। वह इस प्रकार-

(१) गुरू द्वारा अनुशासन का श्रवणेच्छु।

(२) गुरु आज्ञा को सम्यग्ज्ञानपूर्वक स्वीकार करें।।

(३) गुरू आज्ञानुसार कार्य को करके श्रुतज्ञान को सफल करे।

(४) विशुद्ध प्रवृत्ति का अहंकार न करे।

इस अर्थ का स्पष्टीकरण करनेवाला एक श्लोक कहा जाता है।

आत्महितार्थी श्रमण हितशिक्षा की अभिलाषा रखता है उसको सम्यक् प्रकार से जानकर स्वीकार करता है, उस अनुसार साध्वाचार का पालन करता है, एवं पालन करते हुए मैं विनीत साधु हूँ ऐसा गर्व नहीं करता है।३।४।

"श्रुत समाधि"

चउव्विहा खलु सुयसमाहि भवइ, तं जहा-सुयं मे भविस्सइत्ति अज्झाईयव्वं भवइ १, एगग्ग चित्तो भविस्सामित्ति अज्झाईयव्वं भवई २, अप्पाणं ठावइस्सामित्ति अज्झाईयव्वं भवई ३, ठिओ परं ठावइस्सामित्ति अज्झाईयव्वं भवई ४, चउत्थं पयं भवई, भवई य एत्थ सिलोगो। ५।

नाणमेगग्ग-चित्तो य, ठिओ य ठावई परं।
सुयाणि य अहिज्जित्ता, रओ सुय-समाहिए॥ ६॥

श्रुत समाधि चार प्रकार से हैं। वह इस प्रकार:-

(१) मुझे श्रुतज्ञान की प्राप्ति होगी अत: अध्ययन करना चाहिये।
(२) एकाग्र चित्त वाला बनूंगा अत: अध्ययन करना चाहिये।
(३) आत्मा को शुद्ध धर्म में स्थापन करूंगा। अत: अध्ययन करना चाहिए।
(४) शुद्ध धर्म में स्वयं रहकर दूसरों को शुद्ध धर्म में स्थापन करूंगा इस हेतु अध्ययन करना चाहिये।

इस अर्थ को बताने वाला एक श्लोक कहा गया है।

अध्ययन में निरंतर तत्पर रहने से ज्ञान की प्राप्ति होती हैं, उससे चित्त की स्थिरता रहती है, स्वयं स्थिर धर्मात्मा दूसरों को स्थिर करता है और अनेक प्रकार के सिद्धान्तों को रहस्य युक्त जान कर श्रुत समाधि में रक्त बनता है। ५। ६।

"तप समाधि"

चउव्विहा खलु तवसमाहि भवइ, तं जहा-नो इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा १, नो परलोगट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा २, नो कित्ति वण्ण सद्दसिलोगट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा ३, नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा ४, चऊत्थं पयं भवइ य एत्थ सिलोगो॥ ७॥

विविह गुण-तवो-रए य निच्चं, भवइ निरासए निज्जरट्ठिए।
तवसाधुणइ पुराण-पावगं, जुत्तो सया तव-समाहिए॥ ८॥

तप समाधि चार प्रकार से है वह इस प्रकार-

(१) इह लोक में लब्धि आदि की प्राप्ति हेतु तप न करना।
(२) परलोक में देवादि की सुख-सामग्री की प्राप्ति हेतु तप न करना।
(३) सर्व दिशा में व्यापक कीर्ति, एक दिशा में व्यापक (यश) वर्ण, अर्ध दिशा में व्यापक प्रशंसा वह शब्द एवं उसी स्थान में प्रशंसा वह श्लोक, अर्थात् कीर्ति, वर्ण, शब्द एवं श्लोक हेतु तप न करना।
(४) किसी भी प्रकार की इच्छा के बिना एकमेव निर्जरार्थ तप करना। यह चतुर्थ पद है। इन्हीं अर्थों को बतानेवाला श्लोक कहा गया है।

जो साधु विविध प्रकार के गुण युक्त तप धर्म में निरंतर आसक्त रहते हैं, इहलोकादि की आशंसा रहित और केवल एकमेव कर्म निर्जरार्थ तप धर्म का आचरण करता है, उस तप धर्म के द्वारा पूर्वोपार्जित कर्मों का नाश करता है, ऐसा साधु नित्य तपसमाधि से युक्त है एवं नये कर्मों का बंध नहीं करता॥ ७॥ ८॥

"आचार समाधि"

चउव्विहा खलु आयारसमाहि भवइ, तं जहा-नो ईहलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिजा १, नो परलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिजा २, नो कित्ति-वण्ण-सद्द-सिलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिजा ३, नन्नत्थ आरहन्तेहिं हेऊहिं आयारमहिट्ठिजा ४, चउत्थं पयं भवइ, भवइ य एत्थ सिलोगो। ९।

जिणवयण-रए अतिन्तिणे, पडिपुण्णायय-माययट्ठिए।
आयार समाहि-संवुडे, भवई य दन्ते भाव-सन्ध ए॥ १०॥

मूल-उत्तर गुण रूप आचार समाधि चार प्रकार से है। वह इस प्रकार है-

(१) इहलोक में सुख प्राप्ति हेतु आचार पालन न करना।

(२) परलोक में सुख प्राप्ति हेतु आचार पालन न करना।

(३) कीर्ति, वर्ण, शब्द, और श्लोक के लिए आचार पालन न करना।

(४) एकमेव श्री अरिहंत भगवंत द्वारा कहे हुए अनाश्रव पना (मोक्ष) प्राप्त करने हेतु आचार धर्म का पालन करना। यह चतुर्थ पद है। इसी अर्थ को दर्शानेवाला श्लोक कहा है।

आचार धर्म में समाधि रखने से, आश्रव द्वार को रोकनेवाला, जिनागम में आसक्त, अक्लेशी, शान्त, सूत्रादि से परिपूर्ण, अत्यंत उत्कृष्ट मोक्षार्थी, इंद्रिय एवं मन का दमन करनेवाला बनकर आत्मा को मोक्ष के निकट करने वाला बनता है। ९। १०।

"उपसंहार"

अभिगम चउरो समाहिओ, सुविसुद्धो सुसमाहियप्पओ।
विउल-हियं-सुहावहं पुणो, कुव्वई सो पय-खेयमप्पणो॥ ११॥

जाइमरणाओ मुच्चई, इत्थंत्थं च चएई सव्वसो।
सिद्धे वा भवई सासए, देवो वा अप्परए महड्ढिए॥ १२॥ त्तिबेमि

चार प्रकार की समाधि के स्वरूप को पूर्णरूप से जानकर, तीन योग से सुविशुद्ध सतरह प्रकार के संयम पालन में सुसमाहित श्रमण अपने लिए विपुल हितकारी एवं सुखद स्व स्थान (मोक्ष पद) को प्राप्त करता है॥ ११॥

इन समाधियों से युक्त श्रमण जन्म मरण से मुक्त होता है। नरकादि अवस्थाओं को सर्वथा छोड़ देता है। शाश्वत सिद्ध होता है या अल्पविकारवाला महर्द्धिक देव बनता है॥ १२॥

श्री शय्यंभवसूरिजी कहते हैं कि ऐसा मैं तीर्थंकरादि द्वारा कहा हुआ कहता हूँ।

उपयोगी शब्दार्थ : निक्खम्म गृहस्थावास से निकलकर, **हविज्जा** होता है, **वसं** परतंत्रता, **पडियायइ** पान करे, सेवन करे॥१॥ **सुनिसीयं** अतितीक्ष्ण धार युक्त॥२॥ **वहणं** हिंसा, **पए** पकावे।४। **रोइय** रूचि धारणकर **अत्तसमे** स्व समान **मन्नेज्ज** माने **छप्पि काए** छ काय।५। **धुवजोगी** स्थिर योगी, **अहणे** पशु से रहित।६। **निज्जाय-रूव रयअे** स्वर्ण रूपयादि का त्यागी।७। **होही** होगा **अट्ठो** काम के लिए, **सुअे** कल, **परे** परसों **निहे** रखें, **निहावअे** रखावे।८। **छन्दिय** बुलाकर, आमंत्रित कर।९। **दुग्गाहियं** क्लेश युक्त **निहु इन्दिअे** इंद्रियों को शांत रखनेवाला **अविहेडअे** तिरस्कृत न करना, उचित कार्य में अनादर न करना।१०। **गाम कंटअे** इन्द्रियों को दुःख का कारण, **तज्जणाओ** तर्जना **मात्सर्य** वचन, **सप्पहासे** अट्टहास्ययुक्त, **समसुहदुक्खसहे** समभावपूर्वक सुखदुःख सहन करे।११। **भीयअे** भय पावे, **दिअस्स** देखकर, **अभिकंखअे** इच्छा रक्खे।१२। **असइं** सर्वकाल **वोसट्ठचत्तदेहे** रागद्वेष रहित, आभूषण रहित देह युक्त वचन से घायल **अकुट्ठ** तुच्छकार के वचन से घायल, **हअे** दंड से घायल, **लूसिअे** खड्गादि से घायल।१३। **अभिभूय** जीतकर, **विइत्तु** जानकर, **सामणिए** साधु को।१४। **जाइपहाओ** जातिपथ संसारमार्ग से **संजए** वश में रखने वाला, **(अज्झप्परअे)** अध्यात्म में लीन।१५। **उवहिम्मि** उपधि में, **संगावगअे** द्रव्य भाव संग रहित, **अन्नायउंछं** अपरिचित घरों से शुद्ध अल्प वस्त्र लेने वाला **पुल निप्पुलाअे** चारित्र में असारता उत्पन्न करने वाले दोषों से रहित।१६। **अलोल** लोलुपता रहित, **इड्ढिं** ऋद्धि आदि लब्धि को, **अणिहे** माया रहित।१७। **वअेज्जा** कहे।१८। **अज्जपयं** शुद्धधर्म को **कुसीललिंगं** कुशीलता की चेष्टा को, **हासंकुहअे** हास्य करने वाला।२०। **छिन्नित्तु** छेदी ने।२१।

दशम सभिक्षुअध्ययनम्

संबंध :

नवम् अध्ययन में विनय का स्वरूप दर्शाया है। उस विनय धर्म का पालन उत्कृष्टता से मुनि ही कर सकता है। विनय धर्म पालन युक्त, किन-किन आचरणाओं का पालन करने से, आत्महित साधक "भिक्षु" कहा जाता है। उसका स्वरुप "स भिक्खू" नामक दशम् अध्ययन में दर्शाया है।

वांत भोगों का अनासेवी :

निक्खम्माणाइय बुद्धवयणे, निच्चं चित्त समाहिओ हविज्जा।
इत्थीण वसंम् न यावि गच्छे, वन्तं नो पडियायइ जे स भिक्खू॥१॥

तीर्थंकरादि के उपदेश से गृहस्थाश्रम से निकलकर, निर्ग्रंथ प्रवचन में सदा अति प्रसन्नतापूर्वक, चित्त समाधियुक्त बनना चाहिये। चित्त समाधियुक्त रहने हेतु मुनि, सभी असत् कार्यों के बीज रूप स्त्री के वश में न आवे (स्त्री की आधिनता स्वीकार न करे), वांत भोगों को पुनः भोगने की चाहना न करे। वही भिक्षु है॥१॥

"हिंसा से रहित"

पुढविं न खणे न खणावए, सीओदगं न पिए न पियावए।
अगणि-सत्थं जहा सुनिसियं, तं न जले न जलावए जे स भिक्खू॥२॥
अनिलेण न वीए न वीयावए, हरियाणि न छिन्दे न छिन्दावए।
बीयाणि सया विवज्जयन्तो, सचित्तं-नाहारए जे स भिक्खू॥३॥

जो पृथ्वीकाय का खनन् न करे न करावे, सचित्त जल न पीये न पीलावे, सुतीक्ष्णशस्त्रसम षड्जीवनिकाय घातक अग्नि न जलावे, न जलवाये, यानि पृथ्वीकाय आदि की विराधना न करने वाला मुनि है। भिक्षु है॥२॥

जो वस्त्रादि से हवा न करता है, न करवाता है, वनस्पतिकाय का छेदन भेदन न करता है न करवाता है। बीजों के संघट्टे से दूर रहता है और सचित्ताहार का भक्षण नहीं करता। वह भिक्षु है॥३॥

"आहार शुद्धि"

वहणं तसथावराण होइ, पुढवि-तण-कट्ठ-निस्सियाणं।
तम्हा उद्देसियं न भूंजे, नो वि पए न पयावए जे स भिक्खू॥४॥

पृथ्वी, तृण एवं काष्ठादि की निश्रा में रहे हुए त्रस एवं स्थावर जीवों के वध के कारण से साधु के लिए बने हुए उद्देशिकादि आहार जो साधु नहीं खाता है एवं स्वयं आहार न पकाता है, न दूसरों से पकवाता है। वह साधु है।

"श्रद्धापूर्वक आचार पालन"

रोईय-नायपुत्त-वयणे, अत्तसमे मन्नेज छप्पिकाय।
पंच य फासे महव्वयाइ, पंचासव-संवरए जे स भिक्खू॥५॥

चत्तारि वमे सया कसाए, धुवजोगी हविज्ज बुद्धवयणे।
अहणे निज्जाय-रूवरयए, गिहिजोगं परिवज्जए जे स भिक्खू॥६॥
सम्मदिट्ठि सया अमूढे, अत्थि हु नाणे तवे संजमे य।
तवसा धुणई पुराण-पावगं, मण-वय-काय-सुसंवुडे जे स भिक्खू॥७॥

ज्ञातपुत्र श्री वर्धमान स्वामी के वचनों पर रूचि धारण कर अर्थात् श्रद्धापूर्वक जो मुनि छ जीव निकाय को स्वात्म तुल्य मानता है, पांच महाव्रतों का पालन करता है, और पंचाश्रव को रोकता है। वह भिक्षु है॥५॥

जो मुनि आगम वचनों से चार कषायों का नित्य त्याग करता है, मन- वचन-काया के योगों को स्थिर रखता है, पशु एवं स्वर्ण, रुपयादि का त्याग करता है और गृहस्थों से परिचय संबंध नहीं रखता। वह भिक्षु है॥६॥

जो समकित दृष्टि और अमूढ (चित्त में चंचलता रहित) है। वह मुनि ऐसा मानता है कि "हेयोपादेय दर्शक ज्ञान है, कर्म मल को धोने हेतु जल समान तप है, आते कर्मो को रोकने वाला संयम है" ऐसे दृढभाव से तप द्वारा पूर्व के पाप कर्मों का नाश करता है। मन-वचन-काया को संवर करने वाला अर्थात् तीन गुप्तियों से गुप्त एवं पांच समितियों से युक्त है। वह भिक्षु है॥७॥

"आहार शुद्धि"

तहेव असणं पाणगं वा, विविहं खाइम- साइमं लभित्ता।
हो ही अट्ठो सुए परे वा, तं न निहे निहावए जे स भिक्खू॥८॥
तहेव असणं पाणगं वा, विविहं खाइम-साइमं लभित्ता।
छन्दिय साहम्मिआण भुंजे, भोच्चा सज्झाय- रए य जे स भिक्खू॥९॥

और विविध प्रकार के, चारों प्रकार के निर्दोष आहार को प्राप्त कर, यह मुझे कल-परसों काम आएगा ऐसा सोचकर मुनि किसी प्रकार का आहार रातवासी (सन्निधि) न रखें, न रखावे। वह भिक्षु है।

उसी प्रकार विविध चारों प्रकार के आहार को प्राप्त कर स्वधर्मी मुनि भगवंतों को निमंत्रित कर आहार करता है और करने के बाद स्वाध्याय ध्यान में रहता है। वह भिक्षु है॥९॥

"योग शुद्धि"

न य वुग्गहियं कहं कहेज्जा, न य कुप्पे निहु इन्दिए पसन्ते।
संजमे धुवं जोगेण जुत्ते, उवसन्ते अविहेडए जे स भिक्खू॥१०॥

जो मुनि कलहकारिणी कथा नहीं कहता, सद्वाद कथा में दूसरों पर कोप नहीं करता, इंद्रियां शांत रखता है, रागादि से रहित, विशेष प्रकार से शांत रहता है, सयंम में निरंतर तीनों योगों को प्रवृत्त रखता है, स्थिर रखता है, उपशांत रहता है। एवं उचित कार्य का अनादर नहीं करता (किसी का तिरस्कार नहीं करता). वह भिक्षु है।

"परिसह सहन"

जो सहइ हु गाम- कंटए, अक्कोस- पहार तज्जणाओ य।
भय-भेरव-सद्द-सप्पहासे, सम सुह -दुक्ख -सहे य जे स भिक्खू॥ ११॥
पडिमं पडिवज्जिया मसाणे, नो भीयए भय भेई दिअस्स।
विविह गुण तवो- रए य निच्चं, न सरीरं चाभिकंखइ जे स भिक्खू॥ १२॥
असइं वोसट्ठ-चत्त-देहे, अकुट्ठे वहए व लुसिएवा।
पुढवि-समे मुणी हविज्जा, अनियाणे अकोउहल्ले जे स भिक्खू॥ १३॥
अभिभूय काएण परीसहाइं, समुद्धरे जाइ-पहाओ अप्पयं।
विईयत्तु जाइ-मरणं महब्भयं, तवे रए सामणिए जे स भिक्खू॥ १४॥

जो मुनि इंद्रियों को दुःख का कारण होने से, लोह कंटक- सम आक्रोश, प्रहार तर्जना, ताड़नादि को सहन करता है, अत्यंत रौद्र, भयानक, अट्टहास्य आदि शब्द को, देवादि के उपसर्ग को/सुख - दुःख को समभावपूर्वक सहन करता है। वह (मुनि) भिक्षु है॥ ११॥

जो मुनि स्मशान में पडिमा/ प्रतिमा स्वीकार कर, रौद्र भय के हेतु भूत वैताल आदि के शब्द, रुपादि को देख कर, भयभीत नहीं होता और विविध प्रकार के मूलगुण और अनशनादि तप में आसक्त होकर शरीर पर भी ममत्व भाव नहीं रखता। वह भिक्षु है॥ १२॥

जो मुनि राग द्वेष रहित, आभूषण, विभूषा रहित निरंतर देह का व्युत्सर्ग और त्याग करता है, वचन से आक्रोश से दंडादि से पीटे, खड्गादि से काटे तो भी पृथ्वी के समान सभी दुःख सहन करता है, संयम के भावी फल हेतु नियाणारहित, एवं कौतुहल रहित है। वह साधु है॥ १३॥

जो मुनि काया से परिषह का पराजय कर, संसार मार्ग से स्वात्मा का समुध्दार करता है, संसार मार्ग के मूलकारण रुप महाभय को जानकर साधुत्व के योग्य, तपधर्म में प्रयत्न करता है, वह भिक्षु है॥ १४॥

"विविध गुणों से संयुक्त"

हत्थ-संजए, वाय संजए संजइन्दिए।
अज्झप्परए सुसमहियप्पा, सुत्तत्थं च वियाणइ जे सभिक्खू॥ १५॥

जो साधु हाथों से, पैरों से, वचन से, एवं इन्द्रियों से संयत है, अध्यात्मभाव में लीन रहता है, ध्यान कारक गुणों में आत्मा को सुस्थित करता है, और सुत्रार्थ को यथार्थ जानता है। वह भिक्षु है॥ १५॥

उवहिम्मि अमुच्छिए अगिद्धे, अन्नाय उंछं पुल-निप्पुलाए।
कयविक्कय न सन्निहि ओविरए, सव्व-संगावगए य जे स भिक्खू॥ १६॥

जो साधु उपधि में अमूर्च्छित है, आसक्ति रहित है। अपरिचित घरों से शुद्ध आवश्यक अल्प वस्त्र लेता है, संयम को निःसार करनेवाले दोषों से रहित है क्रय- विक्रय और संग्रह से रहित है, द्रव्य भाव संग का त्यागी है, वह भिक्षु है॥ १७॥

अलोल भिक्खू न रसेसु गिद्धे, उंछं जरे जीविय नाभिकंखे।
इड्ढिं च सक्कारण -पूयणं च, चए ठियप्पा अणिहे जे स भिक्खू॥ १७॥

जो साधु अलोलुप है, रसगृद्धि से रहित है, अपरिचित घरों से आहार लेनेवाला है, असंयमित जीविन की आकांक्षा से रहित है, लब्धिरुप ऋद्धि की पूजा , सत्कार की इच्छा से रहित है वह भिक्षु है॥ १७॥

न परं वएज्जासि 'अयंकुसीले' जेणन्न कुपेज्ज न तं वएज्जा।
जाणिय पत्तेयं पुण्ण- पावं, अत्ताणं न समुक्कसे जे स भिक्खू॥ १८॥

प्रत्येक आत्मा के पुण्य - पाप, का उदय पृथक्/ पृथक् है ऐसा जानकर यह कुशील है, दुराचारी है, ऐसा न कहे, जिस वचन से दूसरा कुपित हो, ऐसा वचन भी न कहे, स्वयं में गुण हो तो भी उत्कर्ष, गर्व न करे, वह भिक्षु है॥१८॥

न जाई मत्ते न य रुवमत्ते, न लाभमत्ते न सुएण मत्ते।
मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता, धम्मज्झाण-रए जे स भिक्खू॥ १९॥

जो साधु जाति का, रुप का, लाभ का, श्रुत का मद नहीं करता और भी सभी मदों का त्याग कर, धर्म ध्यान में तत्पर रहता है। वह भिक्षु है॥.१९॥

पवेयए अज्ज पयं महामुणी, धम्मे ठिओ ठावयइ परंपि।
विक्खम्म वज्जेज्ज कुसील लिंगं, न यावि हासं कुहए जे स भिक्खू॥ २०॥

जो महामुनि परोपकार हेतु शुद्ध धर्म का उपदेश देते हैं और गृहस्थाश्रम से निकलकर आरंभादि कुशीलता की चेष्टा एवं हास्यकारी चेष्टा नहीं करतें, वे साधु कहे जाते हैं॥ २०॥

तं देहवासं असुइं असासयं, सया चए निच्च- हियट्ठियप्पा।
छिन्दित्तु जाई- मरणस्स बन्धणं, उवेइ भिक्खु अपुणागमं गंइ। त्तिबेमि॥ २१॥

मोक्ष के साधन भूत, सम्यगदर्शनादि में स्थित साधु, अशुचि से भरे हुए अशाश्वत देहावास का त्याग कर, जन्म मरण के बन्धनों को छेद कर, पुनर्जन्म रहित गति को प्राप्त करता है॥ **२१**॥

श्री शयंभवसूरीश्वरजी म. कहते हैं कि मैं तीर्थंकर गणधरादि का कहा हुआ कहता हूँ।

"श्री दशवैकालिक अध्ययन की प्रथम चूलिका"

उपयोगी शब्दार्थ

पव्वइअेणं प्रवर्जित, **ओहाणुप्पेहिणा** संयम का त्याग करने की इच्छावाला, **रस्सि** लगाम, **पोय** पोत, **संपडिलेहिअव्वाइं** विचार करने योग्य।१। **लहुसगा** असार, **इत्तरिआ** क्षणिक, **भूज्जो** बार-बार, **सायबहुला** मायाबहुल, **अवट्ठाइ** रहनेवाला, **ओमजणपुरक्कारे** नीच जन को भी मान सन्मान देना पड़े, **पडिआयणं** वमन पिना, **अहरगइवासोवसंपया** नीच गति में जाने रूप कर्म बंधन, **सोवक्के** से क्लेश रहित, **कुसग्ग** कुश के अग्रभाग पर, **दुच्चिन्नाणं** दुष्टकर्म, **वेइत्ता** भोगकर, **झोसइत्ता** जलाकर। **आयइं** भविष्यकाल, **अवबुज्झइ** जानता है।१। **ओहाविओ** भ्रष्ट होकर, **छमं** पृथ्वी पर।२। **पूइमो** पूजने योग्य।३। **माणिमो** मानने योग्य **सिट्ठिव्व**, श्रीमंत जैसा **कब्बडे** गाँव में, **छूढो** गिरा हुआ।५। **समइक्कंत** जाने के बाद, **गलं** गल, लोह कांटे पर का मांस।६। **कुतत्तीहिं** दुष्ट चिंताओं से।७। **परीकिन्नो** खूंचा हुआ **मोह संताण संतओ** कर्म प्रवाह से व्याप्त बना हुआ ।८। **रयाणं** रक्त प्रीति रखनेवाला।१०। **अवेयं** रहित **जन्नग्गि** यज्ञ की अग्नि **दुव्विहिअं** दुष्ट व्यापार करने वाला **दाढुव्वियं** जहर युक्त दाढ से रहित सर्प।१२। **दुन्नामधिज्जं** निंदनीय नाम **पिहुजणंमि** नीच लोक में **चुअस्स** भ्रष्ट बने हुए को **संभिन्नवित्तस्स** चारित्र को खंडित करनेवाली।१३। **पसज्झ चेअसा** स्वच्छंद मन से **कट्टु** करके **अणहिज्झिअं** धारणा बिना की, अनिष्ट दुःखपूर्ण।१४। **दुहोवणी अस्स** दुःख द्वारा प्राप्त **किलेसवत्तिणो** एकांत क्लेशयुक्त।१५। **अविस्सइ** जावे **जीविअ पज्जवेण** आयुष्य के अंत से।१६। **नो पइलंति** चलित न कर सके **उविंतवाया** तुफानी पवन **संपस्सिअ** विचारकर **अहिट्ठिज्जासि** आश्रय करे।१८।।

श्री दशवैकालिकसूत्र प्रथम चूलिका "रतिवाक्या"

प्रवर्जित पतन से कैसे बचे।?।

इहखलु भो पव्वइ एणं उप्पन्न दुक्खेणं संजमे अरइ समावन्न-चित्तेणं ओहाणुप्पेहिणा अणोहाइएणं चेव हयरस्सि-गयंकुस-पोय-पडागाभूआइं ईमाइं अट्ठारस ठाणाई सम्मं संपडिलेहि अव्वाइं भवंति।

हे शिष्यों! प्रवर्जित साधु शारीरिक या मानसिक दुःख उत्पन्न होने पर संयम पालन में उद्वेग अरति के कारण चित्त उद्विग्नता युक्त हो गया है। अतः संयम को छोड़ने की इच्छावाला बन गया है, पर संयम का त्याग नहीं किया है। उस प्रवर्जित मुनि को निम्न अठारह स्थानों को भलीभांति समझना चाहिये।

ये अठारह स्थान उन्मार्ग से सन्मार्ग में लाने हेतु उसी प्रकार उपयोगी है जिस प्रकार घोड़े के लिए लगाम, हाथी के लिए अंकुश, नौका के लिए ध्वजा/पताका आवश्यक है।

तं जहा- (१) हं भो दुस्समाए दुप्पजीवी (१) लहुसगा इत्तरिआ गिहीणं कामभोगा (२) भुज्जो अ साइबहुला मणुस्सा (३) इमे अ मे दुक्खे न चिरकालोवट्ठाइ भविस्सइ (४) ओमजण पुरक्कारे (५) वंतस्स य पडिआयणं (६) अहरगइ वासोवसंपया (७) दुल्लहे खलु भो गिहीणं धम्मे गिहिवासमज्झे वसंताणं (८) आयं के से वहाय होइ (९) संकप्पे से वहाय होइ (१०) सोवक्केसे गिहवासे,निरुवक्कसे परिआए (११) बंधे गिहवासे, मुक्खे

परिआए (१२) सावज्जे गिहवासे अणवज्जे परिआए (१३) बहु साहारणा कामभोगा (१४) पत्तेअं पुन्न पावं (१५) अणिच्चे खलु भो मणुआण जीवीए कुसग्ग जल बिंदु चंचले (१६) बहुं च खलु भो पावं कम्मं पगडं (१७) पावाणं च खलु भो कहाणं कम्माणं पुव्विं दुच्चिन्नाणं दुप्पडिकंताणं वेइत्ता मुक्खो नत्थि अवेइत्ता तवसा वा झोसइत्ता (१८) अट्ठारसमं पयं भवई भवई अ ईत्थ सिलोगो॥

वे अठारह स्थान इस प्रकार है

(१) ओह! इस दुःषम काल के प्रभाव से प्राणी दुःख से जीवन व्यतीत करते हैं तो मुझे विडंबना दायक गृहस्थाश्रम से क्या प्रयोजन? (२) गृहस्थाश्रम के काम भोग असार, अल्पकालस्थायी,मधुलिप्त तलवार की धार जैसे होने से, मुझे इसका क्या प्रयोजन? (३) गृहस्थाश्रम के मानव, माया की प्रबलतावाले होने से विश्वासपात्र नहीं है, विश्वास पात्र न होने से वहां सुख कैसा? (४) साध्वावस्था का शारीरिक मानसिक दुःख चिरस्थाई तो है नहीं तो फिर गृहस्थाश्रम का क्या प्रयोजन? (५) राजा महाराजाओं से सन्मानित मुनि को दीक्षा छोड़ने पर नीच वर्ग के लोगों का भी सन्मान करना पड़ेगा।ऐसे गृहस्थाश्रम का क्या प्रयोजन? (६) त्यागे हुए भोगों को ग्रहण करने पर वमन पदार्थ खाने वाले श्वानादि समान, मुझे बनना पड़ेगा। ऐसे गृहस्थाश्रम का क्या प्रयोजन? (७) संयम जीवन को छोड़ना अर्थात् नरकादि गतिओं में निवास योग कर्म बन्धन करना। ऐसे दुःखदायक गृहस्थाश्रम का क्या प्रयोजन? (८) ओह! पुत्र कलत्रादि के मोहपाश से बद्ध गृहस्थ को धर्म का स्पर्श निश्चय से दुर्लभ है। ऐसे गृहस्थाश्रम का क्या प्रयोजन? (९) गृहस्थ को सहायक रूप में धर्मबंधु न होने से विशुचिकादि रोग द्रव्यभाव प्राणों को नष्ट कर देता है।ऐसे गृहस्थाश्रम का क्या प्रयोजन? (१०) संकल्प विकल्प की उत्पत्ति सतत होते रहने से मानसिक रोग गृहस्थ के नाश के लिए होता है।ऐसे गृहस्थाश्रम से क्या प्रयोजन?(११) गृहवास आजीविकादि की प्रवृत्ति के कारण क्लेश सहित है एवं दीक्षा पर्याय क्लेश रहित है। (१२) गृहवास के अनुष्ठान अशुभ कर्मबंधन कारक है एवं व्रत पर्याय कर्म क्षय का कारण है। (१३) गृहवास में पांचों आश्रवों का आसेवन होने से सावद्य पाप युक्त है मुनि पर्याय आश्रवरहित होने से अनवद्य पापरहित है। (१४) गृहस्थ के काम भोग सर्वसाधारण है निच जन को भी काम भोग सुलभ है ऐसे भोगों के लिए चारित्रावस्था का त्याग क्यों करूं? (१५) पाप, पुण्य का फल प्रत्येक आत्मा को, करनेवाले को भुगतना पड़ता है तो गृहवास में अनेक आत्माओं के लिए अकेला पाप कर उसके कटु फल मैं क्यों भोगुं? (१६) ओह! मानव का आयुष्य अनित्य है कुश के अग्रभाग पर स्थित जल-बिन्दु सम है तो सोपक्रम आयु से मैं आराधना का फल क्यों छोडुं? (१७) ओह! मैंने पूर्व भवों में अति संक्लेश फलदाता चारित्रावरणीय कर्म को बांधा हुआ है अतःचारित्र छोड़ने की नीच बुद्धि उत्पन्न हुई है अति अशुभ कर्म उत्पादक ऐसे गृहस्थाश्रम का क्या प्रयोजन? (१८) ओह! दुष्ट चारित्र एवं दुष्ट पराक्रम के कारण पूर्व में अशुभ कर्म जो बांधे हैं उनको भोगे बिना मोक्ष नहीं होता। वे भोगे बिना या तपधर्म द्वारा उनका क्षय किये बिना मोक्ष नहीं होता। अतः तपश्चर्यादि अनुष्ठान कल्याण रूप है।गृहस्थाश्रम को स्वीकार न करना यही कल्याणरूप है।यह अठारवाँस्थान है।इन अर्थों का प्रतिपादन करने वाले श्लोक कहे जाते हैं।

"भविष्य काल का विचार"

जया य चयई धम्मं, अणज्जो भोगकारणा।
से तत्थ मुच्छिए बाले, आयइं नाव बुज्झई॥१॥

अनार्यो जैसी चेष्टा करनेवाला मुनि भोगार्थ साधु-धर्म का त्याग करता है तब वह विषयों में मूर्च्छित अज्ञानी-बाल भविष्य काल को अच्छी प्रकार नहीं समझता/नहीं देखता/नहीं जानता/

"पश्चात्ताप का कारण"

जया ओहाविओ होइ, इंदो वा पडिओ छमं।
सव्वधम्म-परिब्भट्ठो, स पच्छा परितप्पई॥२॥

जैसे प्रवज्या छोड़कर गृहस्थ बना हुआ व्यक्ति सभी धर्मों से परिभ्रष्ट होकर बादमें पश्चात्ताप करता हैं जैसे इन्द्र देवलोक के वैभव से च्युत होकर भूमि पर खड़ा परिताप पाता है॥२॥

जया अ वंदिमो होइ, पच्छा होइ अवंदिमो।
देवया व चुआ ठाणा स पच्छा परितप्पई॥३॥

श्रमण पर्याय में राजादि से वंदनीय होकर जब दीक्षा छोड़ देता है तब अवंदनीय होकर बाद में परिताप करता है। जैसे स्वस्थान से च्युत देवता।

जया अ पूइमो होइ, पच्छा होइ अपूइमो।
राया व रज्ज-पवब्भट्ठो स पच्छा परितप्पई॥४॥

श्रमण पर्याय में पूज्य बनकर गृहस्थावास में अपूज्य बनकर वैसे परिताप करता है जैसे राज्यभ्रष्ट राजा।

जया अ माणिमो होइ, पच्छा होइ अमाणिमो।
सिट्ठिव्व कब्बडे छूढो, स पच्छा परितप्पई॥५॥

श्रमण पर्याय में माननीय बनकर गृहस्थ कर्म में अमाननीय बनता है। वह परिताप पाता है, नगरशेठ पद से च्युत छोटे कस्बे मे रखे गये-नगरशेठ के समान।

जया अ थेर ओ होई, समइक्कंत-जुव्वणो।
मच्छुव्व गलं गिलित्ता, स पच्छा परितप्पई॥६॥

लोह के कांटे पर रखे हुए मांस को खाने की इच्छा से जाल में पड़ा हुआ मत्स्य पश्चात्ताप करता है वैसे ही दीक्षा त्यागी मुनि युवावस्था से वृद्धावस्था को प्राप्त करता है तब कर्म के विपाक को भोगते हुए पश्चाताप करता है॥६॥

जया अ कु-कुडुंबस्स, कुतत्तीहिं विहम्मई।
हत्थी व बंधणे बद्धो, स पच्छा परितप्पई॥७॥

जैसे बंधन से बंधा हाथी पश्चाताप करता है वैसे दीक्षा को छोड़ने के बाद कुटुंब की संताप कराने वाली चिंता से पश्चाताप करता है॥७॥

पुत्त-दार-परीकिन्नो, मोह संताण संतओ।
पंकासन्नो जहानागो, स पच्छा परितप्पई॥८॥

जैसे पंक में फंसा हुआ हाथी पश्चाताप करता है वैसे श्रमण पर्याय छोड़ने के बाद पुत्र, स्त्री आदि के प्रपंच में फंसा हुआ कर्म प्रवाह से व्याप्त बनकर पश्चात्ताप करता है॥ ८॥

अज्ज आहं गणी हुंतो, भाविअप्पा बहुस्सुओ।
जइ हं रमंतो परिआए, सामन्ने जिणदेसिए॥ ९॥

कोई बुद्धिमान आत्मा इस प्रकार पश्चाताप करता है, कि " जो मैं जिन कथित श्रमण पर्याय में स्थिर रहा होता तो भावितात्मा, बहुश्रुत होकर आज मैं आचार्य पद को प्राप्त किया होता॥ ९॥'

देवलोग-समाणो अ परिआओ महेसिणं।
रयाणं अरयाणं च महानरय-सारिसो॥ १०॥

दीक्षा पर्याय में आसक्त जिन महात्माओं को यह चारित्र पर्याय देवलोक समान लगता है वही, दिक्षा पर्याय में अप्रीति रखने वाले विषयेच्छु-जैन वेषविडंबकों को पामरजन को महानरक समान लगता है।१०।

अमरोवमं जाणिअ सुक्खमुत्तमं, रयाण परिआइ तहाऽरयाणं।
निरओवमं जाणिअ दुक्खमुत्तमं, रमिज्ज तम्हा परिआइ पंडिए॥ ११॥

श्रमण पर्याय में रक्त आत्मा को देव समान उत्तम सुख जानकर और श्रमण पर्याय में अप्रीति धारक आत्मा को नरक समान भयंकर दु:ख जानकर पंडित पुरूषों को दीक्षा पर्याय में आसक्त रहना चाहिये।

"धर्म भ्रष्ट की अवहेलना"

धम्माउ भट्ठं सिरिओ अवेयं, जन्नग्गि विज्झाअ-मिवप्पतेअं।
हीलंति णं दुव्विहिअं कुसीला, दाढुद्धिअं घोर विसं व नागं॥ १२॥

चारित्र धर्म से भ्रष्ट, तपरूप लक्ष्मी से रहित, मुनि अयोग्य आचरण के कारण यज्ञाग्नि के सम निस्तेज होकर राख सम कदर्थना प्राप्त करता है। सहचारी उसकी अवहेलना करते हैं। दाढे उखाड़ लेने के बाद घोर विष धर सर्प की अवहेललना लोग करते हैं। वैसे ही दीक्षा से भ्रष्ट व्यक्ति की लोग अवहेलना करते हैं।

इहेवऽधम्मो अयसो अकित्ती, दुन्नामधिज्जं च पिहुज्जणंमि।
चुअस्स धम्माउ अहम्म सेविणो, सभिन्न वित्तस्स य हिट्ठओ गइ॥ १३॥

धर्म भ्रष्ट आत्मा को इस लोक में लोग अधर्मी शब्द से संबोधित करते हैं, सामान्य नीच वर्ग में भी उसकी अपयश, अपकीर्ति एवं बदनामी के द्वारा अवहेलना होती है। स्त्री परिवारादि निमित्ते छकाय हिंसक बनकर अधर्म सेवी एवं चारित्र के खंडन से क्लिष्ट अशुभ कर्मों का बंध कर नरकादि गतियों में चला जाता हैं।

भुंजित्तु भोगाइं पसज्झ चेअसा, तहाविहं कट्टु असंजमं बहुं।
गइं च गच्छे अणहिज्झिअं दुहं, बोही अ से नो सुलहा पुणो पुणो॥ १४॥

चारित्र से भ्रष्ट स्वच्छंद चित्त से भौतिक भोगों को भोगकर अज्ञ जनोचित प्रचुर असंयमाचरणकर आयु पूर्ण कर स्वभाव से ही असुंदर दुःखजनक अनिष्ट गति में जाता है। उसे बार-बार जन्म मरण करने पर भी बोधी/सम्यक्त्व की प्राप्ति सुलभ नहीं होती वह दुर्लभ बोधी होता है। उसको प्रवचन की विराधना करने के कारण दुर्लभ बोधीपना प्राप्त होता है।

"विशेष हित शिक्षा"

इमस्स ता नेरईअस्स जंतुणो, दुहोवणीअस्स किलेसवत्तिणो।
पलिओवमं झिज्झइ सागरोवमं, किमंग पुण मज्झइमं मणोदुहं॥ १५॥

हे जीव! नरकगति के नारकी जीव का दुःख प्रचुर एवं एकांत क्लेश युक्त पल्योपम एवं सागरोपम का आयुष्य भी पूर्ण हो जाता है तो संयम में मानसिक दुःख मुझे कितने समय रहेगा कदाचित् शारीरिक दुःख उत्पन्न हुआ है तो वह भी कितने काल तक रहेगा? ऐसा विचार कर दीक्षा को छोड़ने का विचार न करें॥ १५॥

न मे चिरं दुक्खमिणं भविस्सइ, असासया भोगपिवास जं तुणो।
न चे सरीरेण इमेणऽविस्सई, अविस्सई जीविअ पज्जवेण मे॥ १६॥

चारित्रावस्था में मानसिक शारीरिक दुःख चिरस्थाई नहीं रहेगा, एवं जीवों की भोग पिपासा अशाश्वत है, कदाचित् इस जन्म में भोग पिपासा न जाय तो भी मरण मृत्यु के साथ तो अवश्य जायेगी अतः मुझे चारित्र छोड़ने का विचार छोड़ देना चाहिये।

जस्सेवमप्पा उ हविज्ज निच्छिओ, चइज्ज देहं न हु धम्मसासणं।
तं तारिसं नो पइलंति इंदिआ, उंवितवाया व सुदंसणं गिरिं॥ १७॥

जिस साधु ने ऐसा दृढ विचार कर निश्चित किया है कि देह का त्याग कर देना पर जिनाज्ञा का त्याग न करना। उस आत्मा को इंद्रियो के लुभावने विषय विकार अंश मात्र भी संयम स्थान से चलित नहीं कर सकते। दृष्टांत के रूप में प्रलय काल का तुफानी पवन क्या मेरू पर्वत को कंपायमान कर सकता है? नहीं। वैसे निश्चित दृढ विचारवान् आत्मा को विषय विकार अंशमात्र चलित नहीं कर सकते॥ १७॥

"उपसंहार"

इच्चेव संपस्सिम बुद्धिमं नरो, आयं उवायं विविहं विआणिआ।
काएण वाया अदु माणसेणं, तिगुत्ति गुत्तो जिणवयण-महिट्ठिज्जासि॥ १८॥त्ति बेमि॥

यथायोग्य ज्ञानादि का लाभ एवं विनयादि विविध प्रकार के उपायों का बुद्धिमान् साधु को सम्यग् प्रकार से विचार कर तीन गुप्तिओं से गुप्त मन-वचन-काया से गुप्त होकर जिनवाणी का आश्रय लेना अर्थात् जिनाज्ञानुसार चारित्र का पालन करना॥ १८॥

तीर्थंकरादि द्वारा कहा हुआ मैं कहता हूँ।

श्री दशवैकालिक अध्ययन की द्वितीय चूलिका

विविक्त चर्या

उपयोगी शब्दार्थ : चूलिअं चूलिका को, **पवक्खामि** कहेंगे। १। **अणुसोअ-पट्ठिअ** विषय प्रवाह के वेग में अनुकुल, **पडिसोय** विषय प्रवाह के विपरित प्रतिश्रोत, **लद्धलक्खेणं** लब्ध लक्ष्य, **दायव्वो** देना, **होउकामेणं** मुक्ति की इच्छावाले। २। **आसवो** दीक्षारूप आश्रम, **उत्तारो** उतार। ३। **दट्ठवा** जानने योग्य। ४। **अनिएअ** अनियत, **पइरिक्कया** अेकान्तवास। ५। **आइन्न** आकीर्ण राजकुलादि, **ओमाण** अपमान, **विवज्जणा** वर्जन, **ओसन्न** प्राय: करके, **दिट्ठहड** देखकर लाया हुआ, **जइज्जा** यत्न करे। ६। **पयओ** प्रयत्न करनेवाला। ६। **पडिन्नविज्जा** प्रतिज्ञा करावे, **कहिं** कदाचित्, किसी भी। ८। **असज्जमाणो** आसक्ति रहित। १०। **संवच्छरं** वर्षाऋतु, **आणवेइ** आज्ञा करे। ११। **पुव्वरत्त** प्रथम प्रहर, **अवररत्त** अंतिम प्रहर, **सक्कणिज्जं** शक्य हो वह। १२। **खलिअं** प्रमाद, **अणुपासमाणो** विचारनेवाला, देखनेवाला। १३। **दुप्पउत्तं** अयोग्य रीति से योग की प्रवृत्ति की हो, **पडिसाहरिज्जा** स्वस्थान पर लावे, **आइन्नओ** जातिवंत, **खलीणं** लगाम। १४। **पडिबुद्ध जीवी** प्रमाद रहित। १५। **उवेइ** प्राप्त करता है, पाता है। १६।

संबंध :

प्रथम चूलिका में संयम मार्ग में शीथिल बनकर संयम छोड़ने के भाव करनेवाले आत्मा को स्थिर करने हेतु मार्गदर्शन दिया। अब इस चूलिका में संयम में स्थिर साधु की स्थिरता हेतु विहार संबंधी विवरण दर्शाया है। यहां विहार का अर्थ दैनिक चर्या है। दिनभर अर्थात् जीवन भर के आचार पालन के स्वरूप को दर्शाया है।

श्री दशवैकालिक द्वितीय चूलिका

"विविक्त चर्या"

चूलिअं तु पवक्खामि, सुअं केवलि-भासिअं।
जं सुणित्तु सु पुण्णाणं, धम्मे उप्पज्जए मई॥ १॥

मैं उस चूलिका की प्ररूपणा करूंगा जो चूलिका श्रुतज्ञान है केवल ज्ञानी भगवंतों ने कही हुई है, जिसे श्रवणकर पुण्यवान् आत्माओं को अचिन्त्य चिंतामणी रूप चारित्र धर्म में श्रद्धा उत्पन्न होती है। १।

अणुसोअ-पट्ठिअ-बहुजणंसि, पडिसोअ-लद्ध-लक्खेणं।
पडिसोअमेव अप्पा, दायव्वो होउ-कामेणं॥ २॥

नदी के पूर प्रवाह में काष्ठ के समान विषय; कुमार्ग द्रव्य, क्रिया के अनुकूल प्रवृत्तिशील अनेक लोग संसार रूप समुद्र की ओर गति कर रहे हैं। पर जो मुक्त होने की इच्छा वाला है, जिसे प्रति स्त्रोत की ओर गति करने का लक्ष्य प्राप्त हो गया है, जो विषय भोगों से विरक्त बन संयम की आराधना करना चाहता है उसे अपनी आत्मा को विषय, प्रवाह से विपरित मार्ग, संयम मार्ग का लक्ष्य रखकर स्वात्मा को प्रवृत्त करना चाहिये॥ २॥

अणुसोअसुहो लोओ पडिसोओ आसवो सुविहिआणं।
अणुसोओ संसारो, पडिसोओ तस्स उतारो॥ ३॥

बहुलकर्मी जन साधारण की विषय भोगों की ओर प्रवृत्ति सुखकारी है अर्थात् अनुकुल प्रवृत्ति सुखकारी है पर नदी के प्रवाह में सामने तैरना अत्यंत कठिन है वैसे विषयासक्त लोगों को इंद्रिय जयादि रूप या दीक्षा पालन रूप आश्रम प्रतिश्रोत समान कठिन है। विषय में प्रवृत्ति करने रूप अनुश्रोत में चलने से संसार की वृद्धि होती है उसका त्याग कर प्रतिश्रोत में प्रवृत्ति करने से संसार से पार पाया जाता है॥ ३॥

तम्हा आयार-परक्कमेणं, संवर-समाहि-बहुलेणं।
चरिआ गुणाअ नियमाअ, हुंति साहूण दट्ठवा॥ ४॥

इसी कारण से ज्ञानाचारादि रूप आचार में प्रयत्न करनेवाले और इंद्रियादि विषयों में संवर करने वाले सभी प्रकार से आकुलता रहित मुनि भगवंतों को एक स्थान पर निरंतर न रहने रुप चर्या, मूल गुण, उत्तर गुण, रूप गुण और पिंडविशुद्धि आदि नियमों का पालन करने हेतु उन पर दृष्टिपात करना चाहिये। उन्हें समझना चाहिये। ४।

अनिएअ-वासो समुआण-चरिआ, अन्नाय-उंछं पइरिक्कया अ।
अप्पोवही कलह विवज्जाणअ, विहार-चरिआ इसिणं पसत्था॥ ५॥

अनियतवास (एक स्थान पर मर्यादा उपरांत अधिक न रहना), अनेक स्थानों से याचना पूर्वक भिक्षाग्रहण करना, अज्ञात कुलों से भिक्षा लेना, निर्जन-एकान्त स्थल में रहना, निर्दोष उपकरण लेना, अल्पोपधि रखना, क्लेश का त्याग करना। इस प्रकार मुनियों की विहार चर्या प्रशस्त (प्रशंसा योग्य) है। वह स्थिरतापूर्वक आज्ञा पालन द्वारा भावचारित्र का साधन होने से पवित्र है।

"आहार शुद्धि"

आइन्न-ओमाण-विवज्जणा अ, ओसन्न-दिट्ठाहड-भत्तपाणे।
संसट्ठकप्पेण चारिज्ज भिक्खू, तज्जाय-संसट्ठ जई जईज्जा॥ ६॥

मुनि राजकुल में (आकीर्ण) एवं जिमनवार में (अवमान) गोचरी हेतु न जावे। जहां जाने से स्वपक्ष से या पर पक्ष से अपमान होता हो वहां भी न जावे। प्रायःदृष्टिगत स्थान से लाया हुआ आहार ले। अचित्त आहारादि से खरंटित भाजन, कडछी, हाथ आदि से आहार ले वह भी स्वजाति वाले आहार से खरंटित भाजन, कड़छी हाथ आदि से आहार लेने का यत्न करें। ६।

अमज्ज-मंसासि अमच्छरीआ, अभिक्खणं निव्विगइं गया अ।
अभिक्खणं काउस्सग्गकारी, सज्झाय जोगे पयओ हविज्जा॥ ७॥

मुनि मदिरा, मांस का भक्षण न करें, मात्सर्यतारहित बने, बार-बार दुध आदि विगईयों का त्याग करें, बार-बार सौ कदम के ऊपर जाकर आने के बाद काउस्सग्ग करे, (इरियावही प्रतिक्रमण करे) और वाचना आदि स्वाध्याय में, वैयावच्च में और मुनियों को आयंबिलादि तपधर्म में अतिशय विशेष प्रयत्न करना चाहिये।

"ममत्व त्याग"

न पडिन्न विज्जा सयणासणाइं, सिज्जं निसिज्जं तह भत्तपाणं।
गामे कुले वा नगरे व देसे, ममत्तभावं न कहिं पि कुज्जा॥ ८॥

मास कल्पादि पूर्ण होने के बाद विहार करते समय श्रावकों से प्रतिज्ञा न करावें की शयन, आसन, शय्या (वसति) निषद्या, सज्झाय करने की भूमि और आहार, पानी हम जब दूसरी बार आऐं,

तब हमें ही देना। इस प्रकार प्रतिज्ञा करवाने से ममत्व भाव की वृद्धि होती है। साधु ग्राम, नगर, कुल, देश आदि में ममत्व भाव न करें। दुःख के कारणभूत ममत्व भाव हैं।

"गृहस्थ परिचय का त्याग"

गिहिणो वेआ वडिअं न कुज्जा, अभिवायण-वंदण-पूअणं वा।
असंकिलिट्ठेहिं समंवसिज्जा, मुणीचित्तरस्स जओ न हाणी॥ ९॥

साधु गृहस्थ की वैयावच्च न करें। वचन से नमस्कार, काया से वंदन, प्रणाम और वस्त्रादि द्वारा पूजा न करें। ऐसा करने से गृहस्थों से परिचय बढ़ने से चारित्र मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है। दोनों का इससे अकल्याण होता है। इसी कारण से चारित्र की हानि न हो ऐसे असंक्लिष्ट परिणामवाले साधुओं के साथ रहना।"

"संग किसका"

न या लभेज्जा निउणं सहायं, गुणाहिअं वा गुणओ समं वा।
इक्को वि पावाइं विवज्जयंतो, विहरिज्ज कामेसु असज्जमाणो॥ १०॥

स्वयं से ज्ञानादि गुणों में अधिक या स्व समान गुण युक्त मुनि के साथ या गुण हीन होने पर भी जात्यकंचन समान-विनीत-निपुण-सहायक साधु जो न मिले तो संहनन आदि व्यवस्थित हो तो पाप के कारणभूत असद् अनुष्ठानों का त्याग करके, कामादि में आसक्त न होकर अकेले विहार करें। पर, पासत्थादि पाप मित्रों के साथ में न रहें। १०॥

"कहां कितना रहना?"

संवच्छरं वा वि परं पमाणं, बीअं च वासं न तहिं वसिज्जा।
सुत्तस्स मग्गेण चरिज्ज भिक्खू, सुत्तस्स अत्थो जह आणवेई॥ ११॥

मुनि ने जिस स्थान पर चातुर्मास किया है और शेष काल में एक महिना जहां रहा हैं वहां दूसरा चातुर्मास एवं दूसरा मास कल्प न करें। दूसरे तीसरे चातुर्मास या मासकल्प के बाद वहां रहा जा सकता है। भिक्षु सूत्रोक्त मार्ग से विहार करें। सूत्र का अर्थ जिस प्रकार आज्ञा दे अर्थात् जिनाज्ञानुसार विहार करें। गाढ कारण से कालमर्यादा से अधिक रहना पड़े तो भी स्थान बदलकर आज्ञा का पालन करें। कमरे का कोना बदलकर भी आज्ञा का पालन करें॥ ११॥

"साधु का आलोचन"

जो पुव्वरत्तावररत्तकाले, संपिक्खए अप्पग-मप्पगेणं।
किं मे कडं किंच मे किच्चसेसं, किं सक्कणिज्जं न समायरामि॥ १२॥

साधु रात्रि के प्रथम प्रहर में और अंतिम प्रहर में स्वात्मा से स्वात्मा का आलोचन करें, विचार करें कि = मैंने क्या-क्या किया? मेरे करने योग्य कार्यों में से कौन से कार्य प्रमाद वश नहीं कर रहा हूँ? इस प्रकार गहराई से सोचें विचारें फिर उस अनुसार शक्ति को छुपाये बिना आचरण करें। १२॥

"दोष मुक्ति का उपाय"

किं मे परो पासइ किं च अप्पा, किं वाहं खलिअं न विवज्जयामि।
इच्चेव सम्मं अणुपासमाणो, अणागयं नो पडिबंध कुज्जा। १३॥

क्या मेरे द्वारा हो रही क्रिया की स्खलना को स्वपक्षी (साधु) पर पक्षी (गृहस्थादि) देखते हैं? या चारित्र की स्खलना को मैं स्वयं देखता हूँ? (मेरी भलू को मैं देखता हूँ) चारित्र की स्खलना को मैं देखते हुए, जानते हुए भी स्खलना का त्याग क्यों नहीं करता? इस प्रकार जो साधु भलीभांति विचार करता है तो वह साधु भावी काल में असंयम प्रवृत्ति नहीं करेगा।

जत्थेव पासे कइ दुप्पउत्तं, काएण वाया अदु माणसेणं।
तत्थेव धीरो पडिसाहरिज्जा, आइन्नओ खिप्पमिव खलीणं। १४।

जब-जब जहां कहीं भी मन-वचन-काया की दुष्प्रवृत्ति दिखाई दे, वहीं धीर बुद्धिमान् साधु संभल जाय, जागृत बन जाय, भूल को सुधार ले। उस पर दृष्टांत कहते हैं कि जैसे जातिमान् अश्व लगाम को खिंची जानकर, नियमित गति में आ जाता है। सम्भल जाता है। साधु दुष्प्रवृत्ति का त्याग कर, सम्यग् आचार को स्वीकार करें। १४।

''प्रतिबुद्ध जीवी''

जस्सेरिसा जोग जिइंदिअस्स, धिईमओ सप्पुरिसस्स निच्चं।
तमाहु लोए पडिबुद्ध जीवी, सो जीअई संजम-जीविएणं। १५॥

जितेन्द्रिय, संयम में धीर सत्पुरुष ऐसे साधुओं के स्वहित चिंतन की, देखने की प्रवृत्ति युक्त मन, वचन, काया के योग निरंतर प्रवृत्तमान है। ऐसे मुनि भगवंतों को ''लोक में ''प्रतिबुद्ध जीवी'' कहा जाता है। ऐसे गुण युक्त साधु विचारवंत होने से संयम प्रधान जीवन जीते है। १५॥

''अंतिम अणमोल उपदेश''

अप्पा खलु सययं रक्खिअव्वो, सव्विंदिएहिं सुसमाहिएहिं।
अरक्खिओ जाइपहं उवेइ, सुरक्खिओ सव्वदुहाण मुच्चई।

सूत्रकार श्री कह रहे हैं कि- सभी इंद्रियों के विषय व्यापारों से निवृत्त होकर परलोक के अनिष्टकारी कष्टों से निरंतर स्वात्मा का रक्षण करना चाहिये। जो तुम इन्द्रियों के विषय व्यापारों से आत्मा की सुरक्षा नहीं करोगे तो भवोभव (जातिपथ) संसार में परिभ्रमण करना पड़ेगा। जो अप्रमत्तता पूर्वक आत्मा का रक्षण करोगे तो शारीरिक मानसिक सभी दुःखों से दुःख मात्र से मुक्त हो जाओगे।

यह उपदेश तीर्थंकरादि के कथनानुसार सूत्रकार श्री कहते हैं।

शुद्धिपत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१२	व्दारा	द्वारा
५	८	उक्किट्ठं मंगल	उस्किट्ठं उत्कृष्ट मंगल है
७	२४	समणं	सामण्णं
८	२८	एव	एवं
१०	२०	व्दारा	द्वारा
१०	२३/२५	इच्छासि	इच्छसि
१३	११	सिज्जयरपिडं	सिज्जायरपिडं
१८	२६	कोसवेणं	कासवेणं
२०	२०	आंगुला	अंगुला
२३	११	वादर	बादर
२६	६	अप्पणं	अप्पाणं
२७	६	निदांमि	निंदामि
२७	११	असण	असणं
३०	३१	उंज्जंतंपवि	उंज्जंतं वा
३२	२७	वीयपइट्ठेसु	बीय पइट्ठेसु
३२	२७	रुढे पइट्ठेसु	रुढ पइट्ठेसु
३२	३३	वोसिरोमि	वोसिरामि
३३	२९	नोण	नो णं
३५	२७	पायवं	पावयं
३५	३०	को	की
३७	१७	पठमं	पढमं
३९	२३	अभ्यन्तार	अभ्यतर
४०	७	सव्वत्तंग	सव्वत्तगं
४१		व्दद्वि्	द्ध द्वि्ध
४१	२०	जिज्ञासा	जिनाज्ञा
४२	१३/१५	सामणं	सामण्णं
४३	३२	घोडे	तोडे
४५	५	निवीहार्थ	निर्वाहार्थ
४६	१६	जगुमायाओ	जुगमायाओ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४८	६	कलहुं	कलहं
४९	१	मामग	मामगं
५२	२९	भत्तापाणं	भत्तपाणं
५३	१६	जाविज्ज	जाणिज्ज
५६	९	कह दे	कह दे/यह आहार हमे नही कल्पता
५६	२	तादिसं	तारिसं
६५	१९	करबा	करनी
६६	१४	मनवानेवाला	मनवानेवाला वचन चोर
६७	१६	आद्याओ	आघाओ
६९	४	आलावा	अलावा
६९	२६	सयंम	संयम
७०	१७	अविस्साओ	अविस्सासो
७१	१०	संसारवृर्द्धक	संसारवर्द्धक
७१	६	वाणिज्जो	वज्जिणो
७१	१४	सयंम	संयम
७५	११	कबंल	कंबल
७६	२५	त्याग होता है	त्याग करता है वह
७८	२७	विअडेणुप्पंलावए	विअडेणुप्पलावए
८५	३०	वयाणि	वणाणि
८९	२८	क्या	कया
९७	१९	देते	दंते
११२	२२	हेअर्हि	हेउहिं
११५	७	साहऽसाह	साहूऽसाहू
१२३	१९		
१२३	२०	गंइ	गइ
१२३	२१	सम्यग	सम्यग्
१२७	२२	अवहेललना	अवहेलना
१२९	६	अबिएअ	अनिअए
१३०	१२	अनिएअ	अनिअए
१३१	२६	पुण्वस्तावरस्तकाले	पुण्वस्तावस्तकाले
१३२	२	भलू	भूल

मुनिराज श्री जयानंदविजयजी म. सा. द्वारा लिखित – पुस्तके –

१. आत्म स्वरूप (हिन्दी) ..... (चारगति के जीवों का स्वरूप)
* २. मुक्ति पथ के साथी (हिन्दी) ..... (तत्वत्रयी का स्वरूप)
* ३. स्वात्म निंदा पच्चीशी (हिन्दी - गुजराती) ..... (आत्म निंदा)
* ४. मुनि जीवन नी वातो (गुजराती) ..... (साध्वाचार विषयक)
* ५. हित चिंता के मोती (हिन्दी) ..... (साध्वाचार विषयक)
६. मुक्ति महेल नो राजमार्ग - (गुजराती) ..... (दान, शील, तप, भाव विवेचन)
७. मुक्ति का मंगल प्रारंभ (हिन्दी) ..... (नियमावली तृतिया आवृति)
* ८. गागर में सागर (हिन्दी) ..... (संख्या पर संग्रह)
९. पथ प्रदर्शक (हिन्दी) ..... (सुदेव सुगुरू स्वरुप)
१०. प्रगति का प्रथम सोपान (हिन्दी) ..... (मार्गानुसारी गुण स्वरूप)
११. मुक्ति का मंगलद्वार (हिन्दी) ..... (नौ तत्त्व स्वरूप)
१२. चिंतन की रश्मियाँ (हिन्दी) ..... (नमस्कार महामंत्र पर चिंतन)
* १३. जिज्ञासा पूर्ति (गुजराती) ..... (शंका समाधान)
१४. मुनि जीवन नो मार्ग (गुजराती) ..... (साध्वाचार विषयक)
१५. प्रभु दरिशन सुख संपदा (हिन्दी) ..... (जिन दर्शन पूजन विधि)
१६. भक्तामर स्तोत्र गुरू गुण इक्कीसा स्वात्म निंदा पच्चीशी सह (हिन्दी/गुजराती)
१७. समाधान की राह पर (हिन्दी) ..... (श्रावकोपयोगी प्रश्नोत्तर)
१८. समाधान की ज्योत (हिन्दी) ..... (साध्वाचारोपयोगी प्रश्नोत्तर)
१९. समाधानें की रश्मियाँ (हिन्दी) ..... (श्रावकोपयोगी प्रश्नोत्तर)
२०. स्वयंवर मंडप बना दीक्षा मंडप (हिन्दी) ..... (कहानियाँ)
२१. सम्यग् दर्शन (हिन्दी) ..... (सम्यग्दर्शन पर लेख चिंतन)
२२. नमस्कार महामंत्र (हिन्दी) ..... (नवकार मंत्र पर विवेचन)
२३. मुक्ति नगरमां प्रवेश ..... (पुदगल वोसिरावनी विधि)
२४. मुक्ति महल का राजमार्ग (हिन्दी) ..... (दान शील तप भाव पर)
२५. काम विजेता वही जग विजेता (हिन्दी) ..... (विवेचन)
२६. प्राथमिक ज्ञान माला (हिन्दी) ..... (बालकोपयोगी)
२७. श्रमणोपासक (हिन्दी) ..... (द्वादशव्रत कथा सहित)
२८. समाधान की किरणें (हिन्दी) ..... (साध्वाचार प्रश्नोत्तरी)
२९. भवचक्र की विचित्रता (हिन्दी) ..... (कहानियां)
३०. तीर्थ यात्रा (हिन्दी) ..... (विवेचन पूर्वक कथा)
३१. विडंबनादायक विधवा विवाह (हिन्दी)

* ऐसे निशान वाली पुस्तके अप्राप्य है।

मुनिराज श्री जयानंदविजयजी म. सा. द्वारा सम्पादित - पुस्तके -

१. दो प्रतिक्रमण सार्थ (हिन्दी) ..... (तृतीय आवृत्ति)
२. देववंदन सूत्र सार्थ (हिन्दी) ..... (संपादन)
३. भक्तो के उद्‌गार (हिन्दी) ..... (स्तवनादि संग्रह)
४. प्रकरण चतुष्टय (हिन्दी) ..... (संपादन)
५. भव्यात्माओं का भोजन (हिन्दी) ..... (सज्झाय संग्रह)
६. सूरि राजेन्द्र वाणी (गच्छाचार पयन्ना के मोती) हिन्दी ..... (संकलन)
७. विंशति स्थानक तप विधि (हिन्दी) ..... (संपादन)
८. श्री चंपकमाला श्री जगडुशाह श्री कयवन्ना शेठ)
श्री अघटकुमार चरित्र संस्कृत ..... (श्री यतीन्द्रसूरी प्रसादी कृत)
९. स्नात्र पूजा (हिन्दी)
१०. साधु प्रतिक्रमण सार्थ (हिन्दी)
११. श्री दशवैकालिक सूत्र सार्थ (हिन्दी)
१२. गच्छाचार पयन्ना (हिन्दी) ..... (श्री राजेन्द्रसूरी प्रसादी कृत)
१३. श्री द्वादश चक्रवर्ती चरित्र ..... (संस्कृत संकलन)
१४. वाचक यश : वाणी ..... (स्तवन संग्रह)
१५. नवपद देवचंदन विधि (हिन्दी) ..... (नवपद आराधना)
१६. श्रावक को क्या करना चाहिए (हिन्दी) ..... (संपादन श्रावक व्रत)
* १७. आदर्श जीवन की चाबियां (हिन्दी) ..... (संपादन श्रावक व्रत)
१८. तपावली संपादन
१९. श्री चम्पकमाला चरित्र भाषांतर (हिन्दी)
२०. भक्तामर स्तोत्र. (कथायुक्त) (हिन्दी)
२१. समाधान प्रदीप (हिन्दी)
२२. श्री पार्श्वनाथ स्तवनावली (हिन्दी)
२३. श्री रत्नाकर पच्चीशी (हिन्दी)
२४. दो प्रतिक्रमण मूल (हिन्दी) ..... (द्वितीय आवृति)

* **ऐसे निशान वाली पुस्तके अप्राप्य है।**